शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र

आधुनिक हिंदी काव्य

नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार पुनर्रचित पाठ्यक्रम

(शैक्षिक वर्ष 2023-24 से)

एम. ए. भाग–2

हिंदी : अनिवार्य बीजपत्र 9 और 13

सत्र 3 और 4

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2024
एम.ए. भाग 2 (हिंदी : आधुनिक हिंदी काव्य)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 150

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-93-89345-93-3

★ दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी-
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ सलाहकार समिति ■

प्रो. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) पी. एस. पाटील
प्र-कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) प्रकाश पवार
राज्यशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. विद्याशंकर
कुलगुरू, केएसओयू
मुक्तगंगोत्री, म्हैसूर, कर्नाटक-५७० ००६

प्रो. राजेंद्र कांकरिया
जी-२/१२१, इंदिरा पार्क,
चिंचवडगांव, पुणे-४११ ०३३

प्रो. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

डॉ. संजय रत्नपारखी
डी-१६, शिक्षक वसाहत, विद्यानगरी, मुंबई विश्वविद्यालय,
सांताक्रुझ (पु.) मुंबई-४०० ०९८

प्रो. (डॉ.) कविता ओझा
संगणकशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) चेतन आवटी
तंत्रज्ञान अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एम. एस. देशमुख
अधिष्ठाता, मानव्य विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. एस. महाजन
अधिष्ठाता, वाणिज्य व व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) श्रीमती एस. एच. ठकार
प्रभारी अधिष्ठाता, विज्ञान व तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्या (डॉ.) श्रीमती एम. व्ही. गुळवणी
प्रभारी अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. ए. एन. जाधव
संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्रीमती सुहासिनी सरदार पाटील
वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) डी. के. मोरे (सदस्य सचिव)
संचालक, दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ हिंदी अध्ययन मंडल ■

अध्यक्ष

प्रो. डॉ. साताप्पा शामराव सावंत
विलिंग्डन महाविद्यालय, सांगली

सदस्य

- **प्रो. डॉ. नितीन चंद्रकांत धवडे**
  मुधोजी महाविद्यालय, फलटण, जि. सातारा
- **डॉ. मनिषा बाळासाहेब जाधव**
  कला व वाणिज्य महाविद्यालय, ११७, शुक्रवार पेठ, सातारा-४१५ ००२.
- **प्रो. डॉ. वर्षाराणी निवृत्ती सहदेव**
  श्री विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठवडगाव, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. हणमंत महादेव सोहनी**
  सदाशिवराव मंडलीक महाविद्यालय, मुरगुड, ता. कागल, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. अशोक विठोबा बाचूळकर**
  आजरा महाविद्यालय, आजरा, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. भास्कर उमराव भवर**
  कर्मवीर हिरे आर्टस, सायन्स, कॉमर्स ॲण्ड एज्युकेशन कॉलेज, गारगोटी, ता. भुदरगड, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. संग्राम यशवंत शिंदे**
  आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा, ता. जावळी, जि. सातारा
- **प्रो. डॉ. अनिल मारुती साळुंखे**
  यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, करमाळा, जि. सोलापुर-४१३२०३
- **डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण**
  श्रीमती जी.के.जी. कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपुर, ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत**
  डॉ. एन. डी. पाटील महाविद्यालय, मलकापुर, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात**
  आदर्श कॉलेज, विटा, जि. सांगली
- **डॉ. परशराम रामजी रगडे**
  शंकरराव जगताप आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, वाघोली, ता. कोरेगाव, जि. सातारा

अपनी बात

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की दूरशिक्षा योजना के अंतर्गत स्नातकोत्तर हिंदी विषय के छात्रों के लिए निर्मित अध्ययन सामग्री, नियमित रुप से प्रवेश न ले पाने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने के संकल्प का सुफल है। इसमें एक ओर विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता दिखाई देती है, तो दूसरी ओर शिक्षा से वंचित छात्रों को सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता स्नातक स्तर तक की अध्ययन सामग्री से दूरशिक्षा योजना के छात्र जिस तरह लाभान्वित हुए हैं, उसी तरह स्नातकोत्तर स्तर के छात्र भी प्रस्तुत स्वयं-अध्ययन सामग्री से लाभान्वित होंगे, यह विश्वास है।

दूरशिक्षा के छात्रों का महाविद्यालयों तथा अध्यापकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कोई संबंध नहीं आता। उनकी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्ययन सामग्री को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार पुनर्रचित पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरुप तथा अंक-वितरण को ध्यान में रखकर अध्ययन-सामग्री को आवश्यकतानुसार विस्तृत तथा सूक्ष्म रुप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमें आशा ही नहीं, बल्कि विश्वास भी हैं कि प्रस्तुत अध्ययन सामग्री स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

प्रस्तुत सामग्री सामूहिक प्रयास का फल है। शिवाजी विश्वविद्यालय के मा. कुलपति, कुलसचिव, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय विकास मंडल के संचालक, दूरशिक्षा विभाग के संचालक एवं उनके सभी सहयोगी, तथा इकाई लेखक आदि के सक्रिय सहयोग के लिए हार्दिक धन्यवाद।

■ **सम्पादक** ■

प्रो. डॉ. सुनील बापू बनसोडे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर,
ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर

प्रो. डॉ. एन. आय. शेख
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्री. विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठवडगांव,
ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर

आधुनिक हिंदी काव्य
एम. ए. भाग–2
हिंदी : अनिवार्य बीजपत्र–9 और 13

इकाई लेखक

लेखकाचे नाव	घटक क्रमांक	
	सत्र–3	सत्र–4
★ **डॉ. अशोक मरळे** मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय, उरुण इस्लामपुर, ता. वाळवा, जि. सांगली	1	1
★ **प्रो. डॉ. सुनील बापू बनसोडे** जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर तार. शिरोळ, जि. कोल्हापुर	2, 3	-
★ **प्रो. डॉ. विजय महादेव गाडे** बाबासाहेब चितळे महाविद्यालय, भिलवडी, ता. पलूस, जि. सांगली	4	3
★ **प्रो. डॉ. एन. आय. शेख** श्री विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठवडगांव, ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर	-	2
★ **डॉ. विजय सदामते** हिंदी अधिविभाग, शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापुर	-	4

■ **सम्पादक** ■

प्रो. डॉ. सुनील बापू बनसोडे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर,
ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर

प्रो. डॉ. एन. आय. शेख
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्री. विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठवडगांव,
ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर

अनुक्रमणिका

इकाई		पृष्ठ
	सत्र–3 अनिवार्य बीजपत्र–IX	
1.	कामायनी (चिंता, श्रद्धा एवं इडा सर्ग) – जयशंकर प्रसाद	1
2.	कुरूक्षेत्र – रामधारी सिंह 'दिनकर'	42
3.	1. कुकुरमुत्ता – सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	68
	2. सरोजस्मृति – सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	99
4.	यशोधरा – मैथिलीशरण गुप्त	116
	सत्र–4 अनिवार्य बीजपत्र–XIII	
1.	चाँद का मुँह टेढा है, ब्रह्मराक्षस, अंधेरे में – गजानन माधव मुक्तिबोध	163
2.	'संसद से सडक तक', 'कल सुनना मुझे' नक्सलबाड़ी, मोचीराम, अकाल दर्शन, रोटी और संसद – धूमिल	195
3.	'नए युग में शत्रु' (नये युग में शत्रु, यथार्थ इन दिनों, हमारे शासक, यह नंबर मौजूद नहीं, भूमंडलीकरण, माँ की स्मृति, कॉलगर्ल, शरीर, आदिवासी, पैसा) (दस कविताएँ) – मंगलेश डबराल	218
4.	बस्स! बहु हो चुका – ओमप्रकाश वाल्मीकि (शायद आप जानते हैं, मुट्ठीभर चावल, बाहर जाएंगे एक दिन, घृणा तुम्हे मार सकती है, पण्डित का चेहरा, घृणा और प्रेम कहाँ से शुरू होता हैं, कभी सोचा था, कविता सिर्फ कविता होती है, आदिम रुप, बस्स! बहुत हो चुका)	259

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे-

(1) इकाई में क्या दिया गया है।

(2) आपसे क्या अपेक्षित है।

(3) विशेष इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं-अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं-अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

इकाई 1

कामयनी (चिंता, श्रद्‌धा एवं इडा सर्ग)

– जयशंकर प्रसाद

अनुक्रम –

1.1 उद्‌देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवेचन

1.3.1 जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय

1.3.2 'कामायनी' का परिचय (चिंता, श्रद्धा, इडा सर्ग)

1.3.3 विवेच्य सर्ग का आशय

1.3.3.1 'चिंता' सर्ग का आशय

1.3.3.2 'श्रद्धा' सर्ग का आशय

1.3.3.3 'इडा' सर्ग का आशय

1.3.4 'कामायनी' : प्रमुख पात्र

1.3.5 'कामायनी' की ऐतिहासिकता

1.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयंअध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्‌देश्य :

इस इकाई को पढने के बाद आप -

1) छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो जाएंगे।

2) कामायनी के कथानक और चिंता, श्रद्धा एवं इडा सर्ग से परिचित हो जाएंगे।

3) छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों के आधारपर कामायनी का विवेचन पाएंगे।

4) कामायनी के महाकाव्यत्व से परिचित हो जाएंगे।

5) कामायनी के कला पक्ष को समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना :

आजतक के हिंदी साहित्य के महानतम कवियों में जयशंकर प्रसाद जी का नाम शीर्षस्थ है। उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खडीबोली काव्य में माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई। जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति उनके काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जयशंकर प्रसाद जी का 'कामायनी' आधुनिक छायावादी युग का सर्वोत्तम और प्रतिनिधि हिंदी महाकाव्य है। 'कामायनी' हिंदी जगत् की अमूल्य धरोहर है। प्रसाद जी की यह अंतिम काव्य रचना 1936 ई. में प्रकाशित हुई है।

कला की दृष्टि से कामायनी छायावादी काव्यकला का सर्वोत्तम प्रतीक माना जा सकता है। चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, इर्ष्या, इडा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनंद इन पंद्रह सर्गो में कामायनी की कथावस्तु विभाजित है। पंद्रह सर्गो के इस महाकाव्य में मानव मन की विविध अंर्तवृत्तियों का क्रमिक उन्मीलन इस कौशल से किया गया है कि मानव सृष्टि के आदि से अब तक के जीवन के मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास का इतिहास भी स्पष्ट हो जाता है। चित्तवृत्तियों का पात्र के रूप में अवतरण इस महाकाव्य की विशेषता है और इस दृष्टि से लज्जा, सौंदर्य, श्रद्धा और इडा का मानव रूप में अवतरण हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है।

1.3 विषय-विवेचन :

1.3.1 जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय :

जयशंकर प्रसाद जी का जन्म सन् 1886 ई. में काशी के एक संपन्न 'सुंघनी साहु' परिवार में हुआ। प्रसाद जी देवीप्रसाद साहु जी के छोटे पुत्र थे। प्रसाद जी के कई भाई-बहनों की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। अपने भाई-बहनों में सबसे छोटे होने के कारण प्रसाद जी को माता-पिता का प्यार-दुलार प्राप्त हुआ। प्रसाद जी की स्कूली शिक्षा अल्पकालीन रही। १२ वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु, पारिवारिक गृह-कलह, जीवनगत संघर्ष, परिवार के प्रमुख सदस्यों की मृत्यु आदि ने प्रसाद जी को पाठशालीय शिक्षा समाप्त करने

हेतु बाध्य कर दिया। इसलिए वे बहुत समय तक किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय में अध्ययन न कर सके। आठवीं कक्षा के बाद ही उन्हें अपनी स्कूली शिक्षा समाप्त कर देनी पडी। लेकिन बडे भाई श्री. शंभुरत्न जी ने उनकी शिक्षा-व्यवस्था घर पर ही कर दी और वे घर पर ही रहकर हिंदी, संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी का अध्ययन करने लगे।

सत्रह वर्ष की अवस्था में भाई शंभुरत्न की मृत्यु के बाद एक साथ ही व्यवसाय और परिवार की जिम्मेदारी उनपर आ गई। उजडी हुई गृहस्थी की चिंता उन्हें सताने लगी। लेकिन युवक प्रसाद ने अत्यंत कौशल के साथ अपने दायित्व का निर्वाह किया। उनके जीवन के इन सारे सुख-दुखों का चित्रण उनके काव्य में दिखाई देता है।

जयशंकर प्रसाद जी ने तीन विवाह किए थे। प्रथम पत्नी की मृत्यु क्षय रोग से तथा दृवितीय पत्नी का प्रसूति के समय देहावसान हो गया था। तीसरी पत्नी से उन्हें शंकर नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। जीवन के अंतिम दिनों में जयशंकर प्रसाद जी उदर रोग से ग्रस्त हो गए थे और इसी रोग से 15 नवम्बर, सन 1937 : ई. को इस बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति का देहांत हो गया।

जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्व :

जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। वे मंझोले कद के थे। उनका वर्ण गौर और मुख गोल था। उनकी हँसी बड़ी स्वाभाविक और मधुर थी। जवानी में वे ढाका की मलमल का कुरता और बढ़िया धोती पहनते थे। परंतु बाद में खर का उपयोग करने लगे थे। भारत का प्राचीन इतिहास का अध्ययन जयशंकर प्रसाद का प्रिय विषय था। वे केवल ऐतिहासिक घटनाओं के बाह्य या तथ्यात्मक रूप से ही संतुष्ट होने वाले प्राणी नहीं थे, बल्कि उन घटनाओं के भीतर प्रविष्ट होकर तत्त्व चिंतन से उनके मर्म का उद्घाटन करने में लगे रहते थे। यही कारण है कि उनके ऐतिहासिक नाटक अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है। उनके कथानकों का आधार सांस्कृतिक संघर्ष है।

जयशंकर प्रसाद संस्कृति, सभ्यता, धर्म, दर्शन और नीति के माध्यम से इतिहास का मूल्यांकन करते थे। उनका ऐतिहासिक और शास्त्रीय ज्ञान असाधारण था। यह एक आश्चर्य की बात थी कि वे दार्शनिक चिंतन और ऐतिहासिक अध्ययन मनन के लिए कम अवकाश निकाल पाते थे।

उनकी दिनचर्या में अध्ययन और साहित्य. साधना का प्रथम और प्रमुख स्थान प्राप्त था। ब्रह्म मुहूर्त में उठकर साहित्य सर्जन में लीन हो जाना उनका अभ्यास ही हो गया था। जब अध्ययन और साहित्य सृजन हो जाता था, तब वे बेनिया बाग में टहलने के लिए निकल पड़ते थे। वहाँ भी साहित्यिक मित्रों के साथ वार्तालाप किया करते थे। जयशंकर प्रसाद अन्तर्मुखी व्यक्ति थे।

जयशंकर प्रसाद की प्रमुख रचनाएँ :

काव्य : कामायनी, आँसू, झरना, लहर, महाराणा का महत्त्व, प्रेम पथिक, कानन कुसुम, चित्राधार, करुणालय।

नाटक : राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नाग यज्ञ, कामना, स्कन्दगुप्त, एक घूंट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, कल्याणी-परिणय, सज्जन।

उपन्यास : कंकाल, तितली, इरावती.

कहानी : आकाशदीप, इंद्रजाल, प्रतिध्वनि, आँधी, छाया।

निबंध और आलोचना : काव्य कला तथा अन्य निबंध में इनके आलोचनात्मक निबंध संग्रहीत हैं।

चम्पू : जयशंकर प्रसाद ने चम्पू काव्य की भी रचना की है। इनकी इस प्रकार की रचना का नाम है- उर्वशी। इसके साथ ही इन्होंनें एक काव्य कहानी भी लिखी है जो प्रेम राज्य के नाम से प्रसिद्ध है।

जयशंकर प्रसाद जी की रचनाओं के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उन्होंने तत्कालीन युग में प्रचलित गद्य एवं पद्य साहित्य की समस्त विद्याओं में लिखा तथा साहित्य के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1.3.2 'कामायनी' का परिचय :

'कामायनी' जयशंकर प्रसाद जी की श्रेष्ठ कृति है। कामायनी में मनु और श्रद्धा की कहानी है जिसका सारा इतिवृत्त मनु और श्रद्धा के मिलन-वियोग, पुनर्मिलन, पुनर्वियोग, मनु और इडा का मिलन, सारस्वतनगर का निर्माण, जनविद्रोह, रहस्य-भेद और आनंद की प्राप्ति आदि घटनाओं से जुडा हुआ है। 'कामायनी' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें अतीत के धरातल पर वर्तमान युग की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

'कामायनी' का प्रमुख कार्य भाववृत्ति, कर्मवृत्ति तथा ज्ञानवृत्ति के सामंजस्य द्वारा अखण्ड आनंद की अनुभूति को प्राप्त करना है। मनु में पुरूष सुलभ मनन-शीलता, स्वार्थपरता और कामुकता विद्यमान है। श्रद्धा नारीत्व की सजीव और साकार मूर्ति है। वैसे कामायनी के कथानक की रचना मनु को केंद्र में रखकर की गई है किंतु कथा त्याग, समर्पण एवं ममता की प्रतिमूर्ति श्रद्धा में समाहित हो गई है। मनु के धिक्कार दिए जाने पर भी श्रद्धा ममतामयी बनकर मनु को सही राह दिखाती है और आनंदप्राप्ति में सहयोग देती है।

देव संस्कृति के विनाश से लेकर पूर्ण आनंद प्राप्त मानव संस्कृति के संस्थापन की कहानी कामायनी महाकाव्य में चित्रित हुई है। जयशंकर प्रसाद जी ने कामायनी का निर्माण विविध ग्रंथों, पुराण, शतपथ ब्राह्मण, उपनिषद आदि में बिखरी हुई सामग्री को इकट्ठा कर किया है। कामायनी मुख्य रूप से मनु, श्रद्धा और इडा की कहानी है। इस कथानक में मानव मन की विविध वृत्तियाँ जैसे चिंता, आशा, काम, लज्जा, आनंद आदि का संयोजन कर अत्यंत कुशलता के साथ उसका मनोवैज्ञानिक रूप प्रस्तुत किया है।

जलप्रलय के बाद मनु का श्रद्धा से मिलन हो जाता है। श्रद्धा गर्भवती बनने पर उसे अकेली छोडकर मनु भाग जाता है। मनु का इडा से मिलन होता है। सारस्वतवासी विद्रोह करने पर मनु आहत हो जाता है,

जिसे पुन:श्च श्रद्धा आकर संभालती है। अंत में श्रद्धा के सहयोग से शिवतांडव नृत्य का साक्षात्कार और आनंद की प्राप्ति हो जाती है।

कामायनी के प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसमें वर्णित मुख्य विषय और मानवी वृत्तियों के आधारपर किया है। कामायनी में कुल पंद्रह सर्ग हैं। उन सर्गो के नाम हैं-चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इडा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनंद। 'कामायनी' का कथानक पंद्रह सर्गो में बद्ध है जिसमें मनु, श्रद्धा और इडा तीन प्रमुख चरित्र हैं। मनु मानव मन के, श्रद्धा हृदय और इडा बुद्धि का प्रतीक है। 'चिंता', 'श्रद्धा' और 'इडा' कामायनी के महत्वपूर्ण सर्ग हैं जिनका परिचय निम्नानुसार हैं-

चिंता सर्ग का परिचय :

जल-प्रलय के बाद मनु अपनी नाव महावट से बाँधकर चिंताग्रस्त अवस्था में हिमालय की उत्तुंग चोटी शिला की शीतल छाया में बैठे हुए हैं। वह सोचते हैं कि आखिर देव जाति का विनाश क्यों हुआ? चिंतन करने के बाद वे इस नतीजे पर पहुँच जाते हैं कि सुरासुंदरी का अति उपभोग और दंभ के कारण ही देव जाति का विनाश हुआ। विलासिता में अत्याधिक डूबने के कारण वे दुर्जेय प्रकृति पर जय प्राप्त नहीं कर सके। वैसे देखा जाए तो वैभव-विलास एवं समृद्धि की दृष्टि से देव जाति चरमोत्कर्ष पर पहुँची थी लेकिन विलासिता की अति हो जाने से उनका दंभ ही उनके विनाश का मूल कारण बना।

मनु देव जाति के विनाश के बारे में जितना अधिक चिंतन-मनन करते हैं, उनका मन उतना ही अधिक चिंताग्रस्त बनता है। उनके आँखों के सामने देवों की कामोपासना और विलासिता साकार हो उठती है। देवों के उच्छृंखल जीवन के कारण सृष्टि-चक्र विश्रृंखलित होकर जलप्रलय हुआ जिसमें सबकुछ नष्ट हो गया। देव विलासिता में इतने उन्मत हो गए थे कि यज्ञों में अगणित पशुओं की बलि दी जाने लगी। असी नृशंस हत्याकांड के कारण प्रलयकारी वर्षा हुई जिसमें समस्त देव जाति नष्ट हुई।

मनु को ऐसा लगता है कि अमरता के स्थानपर मृत्यु ही सत्य है और जीवन उसका एक छोटासा अंश मात्र है। इस क्षणभंगुर और नश्वर जीवनपर गर्व करना सर्वथा मिथ्या है। मनु देव जाति के विनाश के विषय में इसी प्रकार चिंतन-मनन में निमग्न थे उसी समय जल-प्लावन का पानी धीरे-धीरे भाप बनकर उडता जा रहा था। सूर्य-मंडल फिर से जगमगाने के कारण प्रलयकालीन रात्रि समाप्त होती जा रही थी और उसके स्थान सुनहरा प्रभात हो रहा था। इस प्रकार प्रस्तुत सर्ग में जल प्लावन की घटना और देव जाति के विनाश को लेकर चिंतामुक्त होकर मनु का हिमालय की ऊँची चोटी पर बैठ जाना, विनाश के बारे में सोचना, धीरे-धीरे काल-रात्रि का स्थान सुनहरा प्रभात द्वारा ग्रहण करना, विनाश के बाद नव-निर्माण आदि घटनाओं का वर्णन किया गया है।

श्रद्धा सर्ग का परिचय :

जल-प्लावन और देवजाति के विनाश को देखकर मनु चिंतित है किंतु धीरे-धीरे प्राकृतिक परिवर्तन के साथ ही मनु के मन में आशा का संचार होता है। वह अकेलेपन से उब जाते हैं तभी अचानक हिमालय क्षेत्र

में विचरण करने आई श्रद्धा से मनु की भेंट हो जाती है। मनु को देखकर श्रद्धा उसके समीप जाकर पूछती है कि, हे मनुष्य, तुम कौन हो जो इस निर्जन वन में उद्विग्न होकर घूम रहे हो। तुम मेरे लिए अपरिचित हो लेकिन तुम्हें देखकर ऐसा लगता है कि तुम मेरे लिए एक रहस्यमय प्राणी हो। श्रद्धा का स्वर सुनते ही मनु को ऐसे लगा जैसे कोई भ्रमरी मधुर गुंजन कर रही हो। मनु पागल सा श्रद्धा का मुख चंद्रमा निहारने लगा। श्रद्धा ने अपने कोमल शरीर पर नील रोमवाले मेषों का चर्म धारण किया था। उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानो नीले मेघों के बीच गुलाबी रंग का बिजली का फूल खिल गया हो। उसके घुंघराले बाल कंधों तक आकर मुख चंद्रमा को घेरे हुए थे।

श्रद्धा के अप्रतिम सौंदर्य से मनु विस्मय-विमुग्ध हो उठते हैं। श्रद्धा का मधुर स्वर सुनकर मनु को ऐसा लगता है मानो उसे श्रद्धा ने नया जीवन प्रदान किया हो। वे अत्यंत विनम्रता से श्रद्धा से कहते हैं, मैं एक अभागा व्यक्ति, जीवन के लक्ष्य से दूर, पहेली से व्यस्त जीवन की समस्या को सुलझाने के उधेडबुन में विस्मृति के मार्गपर अनजान बनकर चल रहा हूँ। मैंने स्वयं अपनी आँखों के सामने सृष्टि-प्रलय और देवजाति के विनाश को प्रत्यक्ष देखा है। अब मैं यह मान चुका हूँ कि जीवन का अंत सदैव घोर और निराशा में ही होता है। श्रद्धा और मनु की प्रथम भेंट होने के बाद श्रद्धा मनु को सात्वंना देती हुई कहती है कि तुम इतने थके-हारे क्यों हो? क्या तुम्हारे हृदय में कोई जिजीविषा नहीं बची है? भले ही तुम्हारा अतीत दु:खपूर्ण रहा हो लेकिन भविष्य तो स्वर्णिम हो सकता है। जीवन का उद्देश्य वैराग्य नहीं है बल्कि काम मंगल से मंडित श्रेय को जीवन में अपनाओ और उसे सार्थक बनाओ।

श्रद्धा के मुख से प्रेरणायुक्त बातों को सुनकर मनु का दुखावेग कम नहीं हुआ तो श्रद्धा ने उसे सांत्वना देते हुए कहा कि इसप्रकार निराश होकर कर्मश्रेत्र से मुख मोडना ठिक नहीं है। माना कि तुम जीवन के दाँव को हार चुके हो लेकिन वीर व्यक्ति तो मरकर इसको जीतते हैं। जीवन का लक्ष्य केवल तप-साधना ही नहीं बल्कि कामजन्य आशा का अपना महत्व है। प्रकृति के यौवन का श्रृंगार कभी भी बासी फूल नहीं कर सकते। वास्तव में परिवर्तन प्रकृति का शास्वत नियम है जिससे आनंद की उपलब्धि होती है। अत: तुम पुरूषार्थी बनकर जीवन को जीओ। मेरा सहयोग हमेशा तुम्हे मिलेगा। मैं वचन देती हूँ कि आज से मैं स्वयं को तुम्हें समर्पित करती हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरा साथ पाकर तुम संसार के सभी सुखों का अच्छी तरह से उपयोग कर सकोगे। इस प्रकार श्रद्धा ने अपने वचन सुनाकर मनु को कर्मश्रेत्र की ओर अग्रसर किया। श्रद्धा की प्रेरणा के कारण मनु के जीवन में आशा की किरण निर्माण होने लगी।

इस प्रकार 'कामायनी' के श्रद्धा सर्ग में हिमालय के श्रेत्र में विचरण करती हुई श्रद्धा का आगमन, मनु से प्रथम भेंट, श्रद्धा के अप्रतिम सौंदर्य से मनु का अभिभूत हो जाना, श्रद्धा द्वारा हताश मनु को सांत्वना देकर कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर करना आदि घटनाएँ वर्णित की गई है।

'इडा' सर्ग का परिचय :

'इडा' कामायनी का नौवां सर्ग है। श्रद्धा और मनु गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे थे। श्रद्धा गर्भवती हो चुकी थी। श्रद्धा के हृदय में गर्भस्थ शिशु के प्रति जो वात्सल्य एवं ममत्व था वह मनु को अच्छा न लगा।

उन्हें ऐसे लगा कि श्रद्धा का अब पहले जैसा प्रेम नहीं रहा। मनु के मन में ईर्ष्याभाव निर्माण होने लगा। श्रद्धा के शरीर में भी अब पहले जैसी कांति और सौंदर्य न था। मनु उसके प्रति विरक्त हो उठे। मनु श्रद्धा से रूठकर अपनी बसी-बसाई गृहस्थी त्यागकर और श्रद्धा को वहीं छोडकर भटकते हुए सारस्वत प्रदेश में पहूँचे। सारस्वत नगर की रानी इडा थी। यह सारस्वत नगर देव संस्कृति का केंद्र था। सरस्वती नदी के किनारे इंद्र ने वृत्रासुर का वध कर असुरों का पराभव किया था। देव जाति अपने आप को सर्वोच्च मानती थी।

मनु को अब इस बात का एहसास हो रहा था कि श्रद्धा उसके पास नहीं है। उसे पश्चाताप हो रहा था और लग रहा था कि उसने श्रद्धा को छोडकर अच्छा नहीं किया। रात को जब वे सो गए तब स्वप्न में उन्हें काम की शाप ध्वनि सुनाई पडी कि तुमने श्रद्धा को त्यागकर अच्छा नहीं किया। उसने तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पित किया था। तुम्हारा प्रजातंत्र द्वंद्व एवं भेदभाव से भरा रहेगा।

सुबह होते ही मनु को एक अत्यंत सुंदर युवती 'इडा' दिखाई दी जिसे देखकर मनु की निराशा दूर हुई। मनु ने अपनी जानकारी इडा को दी। इडा ने उनसे सारस्वत प्रदेश को समृद्ध बनाने का अनुरोध किया और कहा कि तुम विज्ञान के सहारे इस प्रदेश को उन्नत बनाओ। इडा की इस वाणी से मनु को उत्साह का अनुभव हुआ। मनु को लगा कि इडा उसके जीवन में उषा के समान उदित हुई है।

प्रसाद जी ने इडा को बुद्धि का प्रतीक माना है। इस सर्ग में मनु के संघर्षपूर्ण जीवन का चित्रण हुआ है। श्रद्धा विहिन मन भटकता फिरता है और अंत में बुद्धि अर्थात इडा का सहार लेने के लिए विवश होता है पर उसे आनंद प्राप्त नहीं होता। अखंड आनंद प्राप्ति हेतु समरसता की बात कवि करना चाहते हैं।

1.3.3 विवेच्य सर्गो का आशय :

1.3.3.1 'चिंता' सर्ग का आशय :

विनाशकारी जल-प्रलय में मनु जीवित बच जाते हैं और उनकी नौका मत्स्य के चपेटे के कारण हिमालय पर्वत की ऊँची चोटी से जा टकराती है। इसी ऊँची चोटी पर एक शिला की शीतल छाया में एक पुरूष अर्थात मानव जाति के आदि पुरूष मनु बैठे हुए हैं। वे आँसू भरी आँखों से उस प्रलयकालीन जलराशि को देख रहे थे जो जल उनके चारों ओर फैला हुआ था। जहाँ मनु बैठे थे उसके नीचे की ओर जल भरा हुआ था जबकि उनके ऊपर हिम के रूप में जल ही व्याप्त था। इसप्रकार हिमालय की उत्तुंग चोटी पर बैठे उस पुरूष अर्थात मनु के चारों ओर बर्फ ही बर्फ फैली हुई थी। वह बर्फ उसी प्रकार शांत एवं स्तब्ध थी जिसप्रकार मनु का ह्रदय दु:खावेग के कारण निश्चल और जडीभूत-सा हो गया था।

पर्वत-शिला से पवन बार-बार आकर टकराता और कुछ ध्वनि उत्पन्न कर रहा था। परंतु मनु का ह्रदय उन चट्टानों की भाँति शांत ही था। हिमालय की ऊँची चोटी पर बैठा मनु देवों को श्मशान-भूमि बने हिमालय पर्वत पर किसी तपस्वी या साधक के समान साधना-सी करता दिखाई दे रहा था। उसे देखकर ऐसा लगता था मानो वह किसी लक्ष्य-सिद्धि की कामना से ध्यानमग्न मुद्रा में बैठा हुआ तपस्या कर रहा है। जहाँ वह बैठा था उसके नीचे अब भी प्रलयकारी जल की लहरें अकरा रही थी लेकिन अब उन लहरों में उतना जोर

नहीं है जितना पहला था। अब बडी मंद गति से ही टकरा रही थी। उन लहरों में विनाश की जगह नवजीवन का संदेश बसा हुआ लग रहा था।

हिमगिरि के उच्च शिखर पर बैठे उस मनु के समान ही लंबे कुछ देवदास के वृक्ष खडे थे जो हिम वर्षा के कारण चारों ओर से बर्फ से ढके हुए थे। ऐसा लगता था मानो वे कडी सर्दी के कारण ठिठुर गए हो और इसलिए पत्थरों के समान स्तब्ध खडे हुए दिखाई दे रहे थे। मनु दीर्घकाय ही नहीं बल्कि उनके अंग-प्रत्यंग अत्याधिक सुदृढ-पुष्ट मांशपेशी में बने हुए थे। उन्होंने ब्रह्मचर्य का निष्ठापूर्वक पालन किया था जिससे उनके ललाट आदि अंगों से वीर्य-तेज छलक रहा था। उसके शरीर की नसें उभरी हुई थी जिनमें शुद्ध रक्त प्रवाहमान था।

मनु शरीर से पुष्ट है और पराक्रम से भी पूर्ण है, परंतु उनके मुख की उदासी प्रकट कर रही है कि वे चिंता से उद्विग्न है। यद्यपि उनके हृदय में श्रृंगारिक मधुर भावों की धारा बहती है, पर उनका ध्यान उधर नहीं है। मनु की जीवन-रक्षिणी नौका जिसे उन्होंने जल-प्लावन के समय विशाल वटवृक्ष से बांध दिया था, अब शुष्क पृथ्वीपर पडी नजर आ रही थी। कारण यह था कि अब प्रलयकालीन बाढ धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी जिससे धीरे-धीरे पृथ्वी के ऊँचे भाग जल से मुक्त होने लगे थे। मनु की मन की व्याकुलता करूण-कहानी के समान अंतर्मन से उमड रही थी किंतु उस पीडा, दु:ख, दर्द को सुननेवाला कोई नहीं था।

मनु जल-प्लावन से पूर्व निश्चिंत जीवनयापन कर रहे थे। अतीत के विलास-वैभव-नाश के कारण वर्तमान अधोगति और भविष्य निर्माण की निरूपाय इच्छा से मनु उद्विग्न हो उठते हैं। उनके हृदय में देव-सृष्टि का अचानक विनाश देखकर चिंता उत्पन्न होने लगती है। अत: वे चिंता को संबोधित कर कहते हैं, अरी ओ चिंता की पहली रेखा, तेरा प्रथम आभास ही मानव जीवन को उसी प्रकार भयावह और त्रासदपूर्ण बना देता है, जैसे सर्पिणी से युक्त जंगल में विचरण करते हुए प्राणी भयभीत हो जाते हैं। जैसे ज्वालामुखी पर्वत के फुटने से पूर्व उसका प्रथम कंपन आसपास के वातावरण में हलचल और संत्रास भर देता है। जिसप्रकार ज्वालामुखी को आसपास के लता-वृक्ष, पशु-पक्षी और मानव आदि के अहित की जरा भी चिंता नहीं होती, उसी प्रकार तू भी अपने मतवालेपन के कारण प्राणियों के दु:ख-भय आदि को नजर अंदाज करती है।

चिंता को संबोधित करते हुए मनु कहते हैं कि, हे चिंता, तू अभावों से परिपूर्ण है। तेरा जन्म अभावों के कारण होता है। तेरा स्वभाव बडा चंचल होता है। तुझे प्रत्येक प्राणी की सरल गति से लिखी भाग्य-लिपि की वक्र दु:खदायी रेखा कहना ही उचित होगा। तू एक ही पल में उनके सौभाग्य को दूर्भाग्य में बदल देती है। तेरे कारण ही प्राणी अपने अभावों को दूर करने की आशा में भाग-दौड करते हैं किंतु वे असफल होते हैं जैसे मृग तृष्णा के भ्रम में प्यासा ही रह जाता है। यदि किसी अभाव की परिपूर्ति हो भी जाए, तो भी दूसरा अभाव प्राणी को जीने नहीं देता।

आगे मनु चिंता से कहते हैं कि तू इतनी अनिष्टकारक होती है कि मनुष्य प्राणियों को ही व्यथित नहीं करती बल्कि ग्रह-नक्षत्रों को भी अपनी कक्षाओं में चिंतित भाव से घुमाती रहती है। उनमें भी यही भय होता

है कि कहीं अपने परिभ्रमण मार्ग से भटककर आपस में टकरा न जाए। तेरे अस्तित्व तरल विष की उस लघु लहर के समान होता है जिसके पी लेने पर प्राणी न तो मरता है न ही जीवित बचता है बल्कि घुट-घुटकर मरता है। तेरे दुष्प्रभाव के कारण साधारण प्राणियों का क्या कहना। जरामरण से रहित देवतागण भी वृद्धावस्था को प्राप्त करते हैं। स्वस्थ प्राणी भी असमय ही बूढे हो जाते हैं। तू जिसे भी घेर लेती है उसकी जरा-भी अनुनयविनय नहीं सुनती मानो तू बहरी हो गई हो।

एक ओर मनु चिंता की निंदा करते हैं तो दूसरी ओर मानव जीवन के लिए उसकी उपादेयता स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि तेरे कारण प्राणियों को शारीरिक यातनाएँ भोगनी पडती है, मानसिक पीडाएँ सहन करनी पडती है। तेरा उदय अभिशाप के समान है। तेरे ही कारण व्यक्ति अपनी मन की इच्छा-पूर्ति का प्रयास करता है। तेरा किसी प्राणी के हृदय-गगन में उदित हो जाना उसी प्रकार अमंगलकारी माना जाता है, जैसे आकाश में धूमकेतू का उदय, विनाश और अमंगल का प्रतीक माना जाता है। तेरा अस्तित्व पुण्यजगत में पाप के समान है किंतु ऐसा पाप जो अंशतः सुंदर हो।

मनु चिंता को ललकारते हुए कहते हैं कि अरी चिंता! तू मुझसे कितना मनन-चिंतन कराना चाहती है? तू मुझे अत्याधिक चिंताग्रस्त रखकर मेरा कुछ नहीं बिगाड सकती क्योंकि मैं तो उस अमर देव-जाति का वंशज हूँ जिसपर चिंताओं का कोई प्रभाव नहीं पडता। तू मेरे हृदय में चाहे जितनी गहरी नींव डाल दें मैं घबरानेवाला नहीं हूँ। आगे मनु चिंता से कहते हैं कि तू प्राणियों के आनंदमग्न उल्लास को उसी प्रकार तहस-नहस कर दिया करेगी जैसे ओलों की वर्षा करनेवाले बादल खेतों की लहलहाती फसलों को नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं।

मनु चिंता को संबोधित करते हुए कहते हैं कि, बुद्धि मनीषा, मति, आशा, चिंता न जाने तेरे कितने नाम क्यों न हो, अनेक रूप क्यों न हो यह सभी मिलकर प्राणियों को उलझनों में डालते हैं। अतः तेरा अस्तित्व पापमय है इसलिए तू मुझसे दूर हो जा, मेरे हृदय को अपने जाल में मत फंसा। तेरा यहाँ कोई काम नहीं है। मनु अपनी चेतना-शक्ति को विदा लेने के लिए कहते हैं क्योंकि वे इस समय जडपदार्थो के समान संज्ञाशून्य बनना चाहते हैं। मनु अपने बीते हुए जीवन की यादें भुलाना चाहते हैं। उन्हें अतीत की जितनी अधिक याद आती है उससे उन्हें अत्याधिक दुःख होता हैं। देवजाति के विनाश के बारे में जितना अधिक सोचते हैं, उतनी ही उनकी व्यथा बढती जाती है।

सागर को संबोधित करते हुए मनु आगे कहते हैं कि, हे सागर! तुमने देवजाति को पूर्णतः मिटाने का जो प्रयास किया था उसमें तुम असफल ही रहे क्योंकि मैं जीवित बच गया। तुम्हें देवजाति का भक्षक या रक्षक कहा जाए? तुम्हारा आचरण उस मछली जैसा है जो कुछ खाती है और कुछ बिगाडती भी है। तुमने देवजाति का विनाश किया लेकिन मुझे जीवित छोड दिया। देवजाति के विनाश को लेकर मनु चिंता में डूब जाते हैं और इन सबके लिए देवों के दंभपूर्ण और विलासी जीवन को जिम्मेदार मानते हैं। वे प्रलयकालीन आँधियों और बिजली की क्रोंध को संबोधित करते हुए कहते हैं कि तुमने तो दिनरात भयंकर झंझावातों और क्रोंध द्वारा देवजाति को सजग करना चाहा लेकिन वे अपने दंभपूर्ण और विलासी जीवन से बाज नहीं आए।

तुम्हारी क्रोंध का उनपर कोई असर नहीं पडा फलस्वरूप तुमने प्रलयंकारी रूप धारण कर उनका विनाश कर डाला।

मनु आगे सोचते हैं कि वह देवजाति जिनके महल मणियों के दीपकों से चमकते रहे उस देवजाति का भविष्य अंधकार में डूब गया। इसके लिए उनका घमंडी स्वभाव और कामोपासना ही प्रमुख रही है और इस प्रकार घमंड रूपी यज्ञ में उनका सर्वस्व भस्म हो गया, उनका विनाश हुआ। मनु देवजाति को संबोधित करते हुए कहते हैं कि अपनी अमरता की मिथ्या धारणा पर गर्व करनेवाले मदांध देवों! तुम अपनी शक्ति-सामर्थ्य के सामने अन्यों को तुच्छ समझते थे। घमंडियों को एक न एक दिन पराभूत होना पडता है। इसी कारण आज तुम्हारे वे जयघोष सागर की लहरों में विलीन होकर दीन-हीन रूप में प्रतिध्वनित हो रहे हैं। तुम्हारे विनाश के लिए तुम स्वयं जिम्मेदार हो।

देवजाति की निंदा करते हुए मनु कहते हैं कि देवजाति ने प्रकृति पर जय पानी चाही लेकिन यह सहज संभव नहीं हो सका। उस प्रकृति से पराजित होकर भी घमंड करते रहे कि हमने प्राकृतिक शक्ति को कब्जे में कर लिया। लेकिन उनकी यह मूर्खता ही थी कि प्रकृति की चेतावनी की ओर ध्यान न देकर देवजाति मदमस्त होकर भोगविलास की महानदी में क्रीडामग्न रही। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त देवजाति तो डूबी ही साथ-साथ उनके वैभव-विलास और ऐश्वर्य अनंत जल राशि में डूब गया। देवों के सुखों पर दु:खों का समुद्र इस प्रकार उमडा कि उनके सुखों का हरण हो गया। उनके विनाश की सूचना आज यह समुद्र गरज-गरज कर दे रहा है। आगे मनु देवजाति के विनाश को लेकर पश्चाताप करते हुए सोचते हैं कि देवों का विलास स्वप्न था या छलावा। देवों के सुख ऐसे विलीन हो गए जैसे प्रात:काल होते ही तारे निष्प्रभ हो जाते हैं या आँख खुलते ही स्वप्न मिट जाते हैं।

मनु देवजाति के भोगविलासमय जीवन का स्मरण करते हुए कहते हैं कि, देव-जाति की उन्मादक जीवन यात्रा सुंदर स्त्रियों और अप्सराओं के सुगंधित अँचलों में व्यतीत होती रही। पूरी देवजाति का जीवनोद्‌देश्य भोग-विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करना ही रहा है। वे कामोपासना में विश्वास रखते थे और वही कामोपासना उन्हें अपने साथ ले डूबी। देवजाति के भोगविलासमय जीवन को उनके विनाश का कारण मानते हुए मनु कहते हैं कि देवजाति का जीवन भोगविलास एवं सुख, समृद्धि का भांडार बन चुका था। देखते ही देखते देवों के सुख आकाशगंगा के तारों के समान नष्ट हो गए।

मनु आगे कहते हैं कि विश्व में बल, वैभव, सुख सबकुछ देवों के पास था। नाना प्रकार के सुख और वैभव-विलास की लहरें देवों के चरणों में लौटते रहते थे। सुख-समृद्धि और वैभव-विलास के शिखरपर पहूँची देवजाति का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि, विश्व में चारों ओर देवजाति का यश, आभा, सुषमा सूर्य की स्वर्गीय किरणों तक चमकती रहती थी। सात समंदर के जल-कण एवं वृक्षों के पत्ते देव जाति के यश और प्रकाश से आनंद विभोर होकर नृत्य करते रहते थे। मदमस्त देवजाति के सामने सारी प्राकृतिक शक्तियाँ विनीत होकर उनके चरणों में झुकी हुई शांत रहती थी। इन मदमस्त देवजाति के बलशाली चरणों के नीचे दबकर धरती भी काँपने लग जाती थी।

देवों का आचरण ही संयमित और उदात्त न होने के कारण प्रकृति भी उन्मत्त हो गई। यही कारण है कि सृष्टि पर अचानक ऐसी विपदाओं की वर्षा हुई, जिसमें देवजाति का विनाश हुआ। मनु आगे कहते हैं कि देव-बालाओं का वह मनभावन श्रृंगार से सजा-धजा रूप ध्वस्त हो चुका है। उनका उषा के समान यौवन, चाँदनी के समान स्वच्छ हँसी और भ्रमरों के समान विहार करना सबकुछ नष्ट हो चुका है। देव और देवांगनाएँ जिस भोगविलास रूपी नदी में स्नान करने में मग्न थे उनका प्रवाह उन्मत्त होकर प्रलयरूपी समुद्र में जा मिला। उस जल-प्रलय में पूरी देवजाति डूबकर विनष्ट हो गई।

चिंतामग्न मनु सोचते हैं कि सदैव युवा बने रहनेवाली विलासमग्न देवजाति, जिनसे सारी दिशाएँ सुवासित होती रहती थी, उनकास वह उन्माद यौवन कहाँ विलीन हो गया। आगे मनु खेद करते हुए कहते हैं कि जिन खिले हुए फूलों वाले वनों में देव और देवांगनाएँ आलिंगनबद्ध रहा करते थे, आज वे वन-उपवन कहाँ चले गए? उन कुंजो से जो मधुर स्वर सुनाई देता था आज वह शांत हो चुका है। अब कहीं भी वीणा के स्वर सुनाई नहीं देते।

प्रसन्न भाव से देवांगनाएँ जब नृत्य-गान करती थी तो उनके हाथों के कंगन खन-खन की आवाज करते थे। पैरों के पायल और घुँगरू मधुर आवाज में बनजे लगते। उनकी आवाज मीठी थी वैसेही उन्हें गीतों की लय का भी अच्छा ज्ञान था। देव और देवांगनाएँ सुवासिक वस्त्रों एवं सुगंधित द्रव्यों को इतनी अधिक मात्रा में प्रयोग करते थे जिनकी खुशबू से सारी दिशाएँ व्याप्त रहती थी। उनके मुखचंद्रमा की रोशनी से सारे आकाश में निखार आता था। उनके मन हमेशा कामक्रीडा में रत रहते थे। देवांगनाएँ अपनी कामोत्तेजक अंग-भंगिताओं द्वारा यह जताती थी कि उन्हें कामदेव अत्याधिक पीडा दे रहा है और उनकी यह इच्छा है कि उनके प्रियतम उस कामज्वर को शांत करने की कृपा करे।

देव तथा देवांगनाओं की मुख सुषमा का स्मरण करते हुए मनु सोचते हैं कि उनके सुवासिक रहनेवाले गुलाबी मुख मदिराप्राशन के कारण लाल हो जाते थे। आँखों में भी लालिमा छायी रहती और उनके गाल इतने चिपके थे कि कल्पवृक्ष के परागकण भी उन गालों से फिसलते रहते जिससे उनके गाल लाल पीले नजर आते। अंत में उन्हें उनकी यही विलासिता उन्हें ले डूबी। अत्यधिक भोग-विलास में रमने के कारण, कामाग्नि में जलने के कारण शक्तिहीन और मृतप्राय तो वे पहले से ही थे। पहले कामाग्नि में स्वयं जले फिर जल-प्लावन ने उनका पूर्ण विनाश कर डाला। साक्षात देवजाति का विनाश देखकर मनु उनकी भोग-विलास की भावनाओं की निंदा करते हुए कहते हैं कि वास्तव में तुम तिरस्कार के योग्य हो। तुम्हारी जितनी अवहेलना की जाए उतनी कम ही है। अपने अमरत्व पर गर्व करनेवाली देवजाति ने प्रकृति द्वारा दी गई चेतावनी को नजरअंदाज करते हुए कामरत रहना योग्य समझा। उनकी आँखे हमेशा वासना लिप्त रही जिससे प्यास बुझने के बजाए और बढती रही।

देवजाति के भोग-विलासमय जीवन को याद करते हुए मनु कहते हैं कि आज वे आलिंगन-चुंबन सब नष्ट हो चुके हैं। आज वह स्पर्श, सुख, कामातुर मुख, रोमांच कहीं भी दिखाई नहीं देता। मनु कहते हैं देवों के रत्नजडित महलों के झरोखों से कभी शीतल-मंद सुगंधित वायू प्रवेश किया करती थी जिससे देव-

देवांगनाएँ कामोन्मत हो उठते थे। आज उन्हीं झरोखों से समुद्र की तिमिगल नामक दीर्घाकार मछलियाँ टकराती रहती है। समय इस तरह परिवर्तित हुआ है कि जहाँ कभी देवांगनाओं की नीली आँखे नीलकमलों सी दिखाई देती थी। आज उन स्थानों पर प्रलयंकारी वर्षा हो रही है। सुगंधित फुलों एवं मणियों से बनी हुई मालाएँ ही देवांगनाओं के लिए जंजीर बन गई।

देवगण दिव्य शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों में पशुओं की बलि देते रहे। यज्ञों में असंख्य पशुओं की आहुति दी जाने के कारण न जाने आकाश में ऐसी कौनसी अपरिचित रहस्यमय शक्ति रो उठी की जिससे आँसू प्रलय बनकर घनघोर बारिश के रूप में अविरत गति से विषैली वर्षा करने लगे जिससे देवजाति का विनाश हुआ।

आकाश में अंधकार छा जाने के कारण सूर्य की रोशनी भी मंद तथा क्षीण होती गई। उधर जलदेवता वरूण जलवर्षा करने में मग्न थे फलस्वरूप अंधकार और भी घना हो गया। इस जलप्रलय में जल, पवन, आकाश, पृथ्वी और अग्नि ये पंच-महाभूत अपना-अपना अलग अस्तित्व भूलकर एक दूसरे से उच्छृंखल भाव से एक हो रहे थे। सृष्टि में जल-प्रलय के तांडव नृत्य का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि वज्रपात और गरजनेवाले काले बादलों का शोर सुनकर धरती कपकपाने लगी। ऐसा लगता था मानो उसका प्रेमी नीला आकाश अंधकार के रूप में धरती को आलिंगन बद्ध करके आश्वासन देने आया है।

जल-प्लावन के समय समुद्र की गरजती हुई लहरें ऐसी भयानक लग रही थी मानो वे क्रूर और भयंकर मृत्यु के पाश हो। भयंकर वज्रपात और लहरों के प्रचंड थपेडे से पृथ्वी पाताल की ओर खिसकती जा रही थी। इस जल-प्लावन में समुद्राग्नि तो धधक रही थी साथ ही ज्वालामुखी पर्वतविवरों से भी अग्नि की ज्वाला धधक रही थी। इन विवरों में पानी भर जाने से उसका आंतरिक भाग ठंठा होकर संकुचित हो रहा था। समुद्र की लहरों के प्रचंड थपेडों से धरती अस्थिर हो उठी थी। जल-प्लावन में घनघोर वर्षा के कारण समुद्र के जल में भयंकर ज्वार आया था वह उत्तरोत्तर बढता ही जा रहा था। देखते ही देखते धरती जलमग्न हो गई।

पृथ्वी की इस दुरावस्था का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय एक ओर घना अंधकार छाया हुआ था तो दूसरी ओर अत्याधिक प्रचंड वेग से तुफान भी चल रहा था। इस जल-प्लावन में समुद्र अपनी मर्यादा त्यागकर आगे बढ रहा था जिससे क्षितिज अस्पष्ट और धुँधला सा प्रतीत होने लगा था। देखते ही देखते क्षितिज जल में लुप्त हो गया और समस्त धरती को अपने जल में डूबा दिया। जल-प्लावन में आकाश से ओलों की भयंकर वर्षा होने लगी जिससे सभी प्राणी कुचलकर मरने लगे। सभी पंचमहाभूत अपनी सहज स्वाभाविक गति को भूलकर अधिक समय तक तांडव-नृत्य में मग्न रहे।

मनु आगे कहते हैं कि, उस जल-प्लावन में मेरे पास एक नाव तो थी लेकिन न तो उसमें डाँडे थी और न ही पतवार थी जिसके द्वारा नाव को आगे-पीछे मोडा जा सके। वह नाव तो समुंद्र की प्रचंड लहरों पर किसी पगली के समान कभी इधर-उधर तो कभी स्थिर हो जाती, कभी आगे तो कभी पीछे मूड जाती। जल-प्लावन का स्मरण कर मनु कहते हैं कि मेरी नाव को लहरों के प्रचंड थपेडे लगते थे। किनारे तो पहले

ही लुप्त हो चुके थे। मन निराशा से भर आया था जिससे मुझे अपना भविष्य अंधकारमय नजर आ रहा था। चारों ओर गगनचुंबी लहरें उठ रही थी। मुसलाधार वर्षा सृष्टि को जलमय करने पर तुली हुई थी।

मनु आगे कहते हैं कि देखते ही देखते एक ऐसे जगत् का निर्माण हो गया जिसमें सर्वत्र जल ही जल फैल गया था। बिजलियाँ बार बार चमकने लगी थी जिसका प्रतिबिंब जल में फैल गया था। यह देखकर ऐसा लगता था मानो विशाल समुद्राग्नि अनेक खंडों में विभाजित होकर रूदन कर रही हो। समुद्रतल में निवा करनेवाले जलजंतु जल का दबाव बढ जाने के कारण व्याकुल होकर उपर की ओर आकर इधर-उधर तैर रहे थे। जल-प्लावन में वायु इतनी सघन हो उठी थी कि श्वास लेने में भी कठिनाई होती थी। फलस्वरूप सभी प्राणियों का दम घुटने लगा था। अपनी जीवन-रक्षा के लिए वे सभी व्याकुल हो उठे। वे अपनी प्राणरक्षा के लिए छटपटाते लेकिन जीवित रहने की कोई संभावना न होने के कारण हताश और निराश हो गए थे।

इस जल-प्लावन में पंचमहाभूतों में उथल-पुथल मच जाने के कारण घना अंधकार छाया हुआ था जिसमें सूर्य, चंद्र, मंगल आदि ग्रह तथा तारें पानी के बुलबुले जैसे लग रहे थे। सूर्य-चंद्र अर्थात दिन-रात आदि से समय-चक्र का पता चलता था लेकिन जल-प्लावन के कारण सूर्य और चंद्रमा का अस्तित्व ही समाप्त होने के कारण जल-प्लावन कितने प्रहरों और कितने दिनों तक रहा कोई नहीं बता सकता। मृत्यु का अन्यायी, अत्याचारी दमनचक्र कब तक चला याद नहीं मुझे तो केवल इतना ही याद है कि महामत्स्य के चपेटे से मेरी नाव हिमालय की चोटी से आ टकरायी और मैं बच गया। जो देवजाति पूर्णतया विनष्ट होने जा रही थी मेरे रूप में अंशत: देवजाति की प्राण-रक्षा हो गई।

देवजाति के अहंकार की निंदा करते हुए मनु कहते हैं कि अपने घमंड के कारण देवजाति का विनाश हुआ। उसी मिथ्या घमंड एवं अभिमान की निशानी के रूप में मैं जीवित बच गया लेकिन मैं अपने पूर्वजों के विनाश का उसी प्रकार परिचायक हूँ जैसे नीच पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से नाटक का आरंभ किसी अशुभ घटना की सूचना दी जाती है। मनु देवों की अमरत्व की भावना की निंदा करते हुए कहते हैं कि देवों के विनाश का मूल कारण अमरत्व की धारणा है। इसी अमरत्व के बलबुते पर देवों की विलासी भावना मृग तृष्णा के समान कभी शांत नहीं हो सकी। जीवन में अकर्मण्यता के कारण पूरी देवजाति का विनाश हुआ। अब तो चारों ओर विनाश, विध्वंस और अंधकार का साम्राज्य है। अब तो सभी ओर सुनापन है। मनु कहते हैं कि हे अमरत्व की भावना! अब तेरा कोई महत्व नहीं रहा। तेरे लिए अब कोई स्थान नहीं बचा।

मनु आगे मृत्यु को संबोधित करते हुए कहते हैं कि अरी मृत्यु! तेरी गोद तों बर्फ के ढेर के समान शीतल है। तुम्हारे पास पहुँचकर हर प्राणीजगत बाधाओं और व्यथाओं से छुटकारा पाना चाहता है। हे मृत्यु! तू प्राणियों के हृदय में उसी प्रकार भय की कंपनें उत्पन्न करती हो जैसे समुद्र में लहरें उत्पन्न होने के कारण कंपन होता रहता है। तू प्रलयंकारी नृत्य की उस स्थिति के समान है जहाँ जीवन की लय समाप्त हो जाती है। जीवितों के हृदय की धडकनों का तू अंत कर देती है। हे मृत्यु! तेरा अस्तित्व घने अंधकार के भयावह हँसी के समान है जिसके अंधकार में सभी विलीन हो जाते हैं। एक सुंदर रहस्य के समान हे मृत्यु! तू सृष्टि के

कण-कण में व्याप्त है फिर भी दिखाई नहीं देती, जीवों का विनाश करती रहती है जिससे उन्हें नवजीवन मिलता रहे।

जीवन की क्षणभंगुरता के बारे में मनु कहते हैं कि जगत में व्याप्त जीवन भी तो तेरा ही तुच्छ अंश है। जीवन की स्थिति ठिक उसी प्रकार होती है जैसे बादलों में कुछ पल के लिए बिजली चमक उठती है और फिर उन्हीं बादलों में लुप्त हो जाती है। बिजली के समान जीवन भी पल में चमककर फिर मृत्यु के इन घने बादलों में लुप्त हो जाता है। पहले मनु जहाँ देवजाति के विनाश को लेकर चिंतित थे किंतु अब मृत्यु को संबोधित कर क्रोध कर रहे हैं, बडबडाने लगे हैं। उनके मुख से निकली ध्वनियाँ वायु में विलीन होकर शांती भंग कर रही थी।

मनु के शब्द हिमशिलाओं से टकराकर उसकी दीनताभरी गूँज प्रतिध्वनित हो रही थी। विनाशलीला का क्रुर तांडव अभी समाप्त नहीं हुआ था। पंचमहाभूतों के भैरव मिश्रण के कारण ग्रह-नक्षत्र अपनी चमक खो बैठे थे। अणु और परमाणु भी सृष्टि रचना में सहायक न होकर बोझ ढोनेवाले सेवकों के समान लग रहे थे। हर जगह मृत्यु जैसी शांती, शीतलता और निराशा दिखाई देती थी। मनु कहते हैं कि वातावरण में धीरे धीरे परिवर्तन हो रहा था। आकाश से घने कुहरे की वर्षा होने लगी थी। चारों ओर कोहरा छाने लगा था। जल-प्लावन के कारण सर्वत्र जो जल व्याप्त हो गया था वह अब धीरे धीरे भाप बनकर उडता जा रहा था। सौर मंडल के ग्रह-उपग्रह अपनी अपनी गति को प्राप्त कर चक्कर लगाने लगे थे। जिससे यह आशा उदित हो रही थी कि अब प्रलयरूपी काली रात समाप्त होकर नवनिर्माण रूपी सुनहरे प्रभात का आगमन होनेवाला है।

1.1.3.2 श्रद्धा सर्ग का आशय :

मनु जल-प्लावन और देवजाति के विनाश को देखकर चिंतामग्न अवस्था में बैठे हुए हैं। धीरे धीरे प्रकृति में परिवर्तन हो रहा है। मनु अपने अकेलेपन से उब जाते हैं तभी अचानक हिमालय-क्षेत्र में विचरण करने आई श्रद्धा से मनु की भेंट हो जाती है। मनु को देखकर श्रद्धा उसके समीप जाकर पूछती है, ''समुद्र की लहरें जिस प्रकार अपने थपेडों से अपने अंतस्थल की मणियों को निकालकर किनारें पर फेंक देती है, उसी प्रकार संसार-सागर के थपेडों को खाकर इस शून्य एवं निर्जन प्रदेश में रहनेवाले व्यक्ति तु कौन हो? जिसप्रकार मणि अपनी कांति से संपूर्ण वातावरण को जगमगाती है उसी प्रकार तुम भी मौन बैठे अपनी सुंदरता से इस निर्जन को आलोकित कर रहे हो।''

आगे श्रद्धा मनु से कहती है कि, ''हे अपरिमित व्यक्ति! तुम मधुरता से युक्त हो लेकिन चिंताक्रांत होने के कारण थके हुए हो। इस निर्जन वन में ऐसे शांत भाव से बैठे हुए हो जिससे ऐसा लगता है मानो तुमने संसार के संपूर्ण रहस्यों को भली भाँति जान लिया हो। तुम्हारे मौन से तुम्हारी बाह्य सुंदरता का आभास मिलता है साथ ही यह स्पष्ट हो जाता है कि तुम्हारा ह्दय करूणा से परिपूर्ण है और तुम्हारे मन की चंचलता ने आलस्य और अकर्मन्यता का रूप धारण कर लिया है। कवि का कहना है कि मनु को ऐसा लगता है, श्रद्धा मधुर वाणी में किसी भ्रमरी के समान मीठा गुंजन कर रही हो। उसकी मीठी वाणी ऐसी निकल पडी थी जैसे क्रोंच-वध को देखकर महर्षि वाल्मिकी का स्वर कविता बनकर फूट पडा हो।''

श्रद्धा की मधुरवाणी सुनकर मनु अचरज में पड गए। उनके शरीर में एक हलचल-सी दौड पडी मानो कोई बिजली का झटका लगा हो और वे यह जानने के लिए आकुल हो उठे कि यह मधुर वाणी किसकी है? जिसको सुनते ही उनका मौन भंग हो गया। मनु को जिज्ञासा हुई और जब उन्होंने देखा तो उन्हें ऐ सुंदर मूर्ति दिखाई दी जो श्रद्धा थी। श्रद्धा की आँखें बडी आकर्षक थी। श्रद्धा का शरीर ऐसा था मानो फूलों के भार से लदी हुई कोई डाली हो या कोई काले बादलों से घिरा हुआ चंद्रमा। कवि के सैांदर्य का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि, श्रद्धा का अंतर्बाह्य सौंदर्य प्रभावी और आकर्षक था। उसकी काया तेजस्वी थी। ह्दय की उदारता और विशालता के समान ही उसका शरीर विस्तृत एवं लंबा था। उसके शरीर से भीनी-भीनी खुशबू आ रही थी। मधुरता से युक्त होने के कारण वह अत्यंत आकर्षक लग रही थी।

श्रद्धा का शरीर गांधार प्रदेश में उत्पन्न होनेवाली भेडों की नीले रोमवाली चिकनी खाल से ढका हुआ था। ऐसा लग रहा था मानो श्रद्धा ने अपने शरीर की रक्षा करने के लिए मेषों की चर्म को रक्षाकवच के रूप में धारण कर लिया हो। उसकी इस नीलवर्णी वेशभूषा में श्रद्धा का कोमल और अधखुला अंग अत्यंत आकर्षक लग रहा था। ऐसा लगता था मानो मेघों के समुह के मध्य गुलाबी रंग का बिजली का फूल खिल रहा हो। श्रद्धा के मुख का सौंदर्य तो अद्‌वितीय था। वह तो ऐसा लग रहा था मानो पश्चिम दिशा में काले बादल छा गए हो और उन्हें भेदता हुआ लालिमायुक्त सूर्यमंडल उदित हो रहा हो। श्रद्धा का मुख ऐसा दिखाई देता है जैसे कि छोटा-सा ज्वालामुखी नीलम के छोटे से एवं शांत पर्वत की छोटी सी चोटी को पकडकर धधक रहा हो। वसंत रात्रि में उसका मुख सौंदर्य लगातार ऐसा दिखाई दे रहा था। श्रद्धा के इस सुंदर मुख के समीप ही कोमल और घुंघराले बाल दोनों कंधों का सहारा लिए पीछे की ओर लटके हुए थे। काले और घुंघराले बालों से घिरा हुआ मुख ऐसा लग रहा था मानो छोटे-छोटे बादल अमृत पान करने हेतु चंद्रमा के निकट आ गए हों।

मनु को देखकर श्रद्धा मंद मंद मुस्कराने लगी। उसकी मुस्कराहट ऐसी दिखाई दे रही थी मानो प्रात:कालीन लालिमायुक्त सूर्य की उज्वल किरणें नई-नई कोपलों पर विश्राम कर रही, वही अंगडाई लेती हुई अलसा रही हो। नित्य एवं शाश्वत यौवन से परिपूर्ण श्रद्धा का सौंदर्य आकर्षित करनेवाला था। वह करूणा से युक्त कामना की सजीव मूर्ति लग रही थी। जो भी उसके इस सौंदर्य के दर्शन करता उसके मन में आलिंगन या स्पर्श का भाव अपने आप ही जागृत हो जाता था। श्रद्धा के सौंदर्य में इतनी शक्ति थी कि उसके एक मात्र स्पर्श से ही जड वस्तुएँ चेतनायुक्त हो जाती थी। श्रद्धा का अनुपम सौंदर्य ऐसा लग रहा था मानो प्रात:कालीन तारांगणों के शांत प्रकाश की गोद में मघुरिमा से युक्त, प्रसन्नता से परिपूर्ण, मस्ती से भरी हुई, सलज्ज उषा की प्रथम किरण उठती है।

अतीव सुंदर श्रद्धा के मुखपर मधुरता, प्रसन्नता और मस्ती से भरी सलज्ज मुस्कान थी। श्रद्धा के सौंदर्य से परिपूर्ण शरीर और उज्वल मुस्कान को देखकर ऐसा लगता था मानो श्रद्धा पुष्पों से लदे हुए वन प्रदेशों में से वसंत की मंद-मंद सुगंधित समीर को साकार रूप में बहाकर लाई हो। श्रद्धा के मुख पर मन को प्रिय लगनेवाली वसंत रजनी की नवीन उज्वल एवं निर्मल पूर्णिमा की अत्यंत मनमोहक और चित्ताकर्षक चाँदनी बिखरी पडी हो।

सौंदर्यमयी श्रद्धा का प्रश्न सुनकर तथा उसे अपने निकट देखकर मनु कहने लगे कि, इस आकाश और पृथ्वी के बीच मेरे जीवन की उलझन दूर होने के कोई उपाय दिखाई नहीं देते। जिस प्रकार टूटा हुआ तारा बेसहारा होकर आकाश में इधर-उधर भटकता फिरता है, बिलकुल उसी प्रकार मैं भी असहाय होकर अपनी अंतर्वेदना को लेकर इस शून्य एवं निर्जन वन में भटकता फिर रहा हूँ। इसप्रकार मनु अपना परिचय देते हुए अत्यंत निराश स्वर में श्रद्धा से कहते हैं, हे अपरिचित रमणी! मैं तो उस अभागे पर्वत के समान हूँ जिससे कभी झरना नहीं फूटा। मैं उस अभागे बर्फ के टुकडे के समान हूँ जो कभी नहीं पिघला। इस संसार में आकर मेरा यह जीवन निरर्थक हो रहा है। संसार के लिए मेरा यह जीवन निरर्थक है। मेरा जीवन तो एक पहेली बनकर रह गया है और मैं उसी में उलझ गया हूँ। मैं इस पहेली को सुलझाने का प्रयास करता हूँ, लेकिन यह पहेली सुलझने के बजाए और भी अधिक उलझती जा रही है। यही कारण है कि मैं एक अनजान व्यक्ति के समान निरर्थक जीवन जी रहा हूँ।

मनु श्रद्धा से कहते हैं कि अब मैं दिन-रात अपने अतीत को भूलता जा रहा हूँ, वह अतीत जो कभी आनंद और उल्लास तथा रंगीन अभिलाषाओं से परिपूर्ण था। अब यह अतीत फिर से लौटकर नहीं आएगा। मेरा यह असहाय जीवन दिन-ब-दिन अंधेरे में विलीन होता जा रहा है। मेरा भविष्य अंधकारमय होता जा रहा है। मनु आगे कहते हैं कि मेरे इस निरर्थक जीवन के बारे में और क्या कहा जाए? मैं इस निर्जन वन में लक्ष्यहीन, दिशाहीन व्यक्ति के समान उसी प्रकार भटकता फिर रहा हूँ जिस प्रकार अंतरिक्ष में वायू इधर-उधर भटकती फिरती है। मेरा यह अभावग्रस्त जीवन विस्मृति का एक चेतनाहीन ढेर मात्र रह गया है, जो सुंदर अतीत को भुला बैठा है। मेरे जीवन में भविष्य को उज्वल बनाने की कोई कामना शेष नहीं बची है। इस जीवन में सफलता की कोई गुंजाईश नहीं है और सारी आशा-आकांक्षाएँ समाप्त हो चुकी है।

मनु श्रद्धा के संबंध में जानने के लिए उत्सुक है। इसलिए वह परिचय प्राप्त करने हेतु श्रद्धा को संबोधित करते हुए कहते हैं कि, हे सुकुमारी! बतलाओं, तुम कौन हो? तुम्हारा परिचय जानने की उत्कट इच्छा मुझमें है। तुमने तो आकर मेरे नीरस जीवन में उत्साह को भर दिया है और मेरा जीवन सरस हो उठा है। तुम्हारे द्वारा दिया गया आशा का संदेश ठीक वैसा ही है जैसे निर्जन वन-प्रदेश में नीरसता से भरे पतझड में कोयल का मधुर संगीत वसंतागमन का शुभ संदेश देता है। जिस प्रकार गहन अंधकार में बिजली की रेखा वातावरण के लिए कुछ पल के लिए आलोकित कर देती है उसी प्रकार तुम्हारे आ जाने से मेरे घोर निराशापूर्ण जीवन में आशा की किरण जगमगाने लगी है। अब मुझे मेरे जीवन की सार्थकता समझ में आ रही है। जिस प्रकार एक निराश व्यक्ति को तारांगणों में से आशा की किरण फूटती नजर आती है और वह उसी के सहारे पूरी रात काट देता है उसी प्रकार तुम्हारी मधुरवाणी में मुझे जिजीविषा की किरण दिखाई देती है। केवल इतना ही नहीं तुम्हारी मधुरवाणी ने मेरे हृदय की अशांती को समाप्त कर दिया है।

श्रद्धा से प्रभावित मनु उसके बारे में जानने के लिए अति उत्सुक है यह देखकर श्रद्धा मनु की जिज्ञासा को शांत करते हुए उसके साथ बातें करनी लगती है। मनु को आशा से भरा हुआ संदेश देनेवाली श्रद्धा ऐसी दिखाई देती है मानो कोकील अपनी मधुरवाणी में फूलों को वसंतागमन की सूचना दे रही हो। अपना परिचय देते हुए श्रद्धा कहती है कि- मैं अपने पिता की प्यारी संतान हूँ। इस गंधर्व देश में रहकर मैं ललित कला का

ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ। इस गंधर्व देश में रहते हुए खुले आकाश के नीचे मैं हररोज घुमती हूँ क्योंकि मेरा हृदय जिज्ञासा की भावना से युक्त होने के कारण मैं इस जगत के आंतरिक सत्य को जानना-समझना चाहती हूँ।

श्रद्धा आगे कहती है कि-जब-जब मेरी नजर हिमालय की ओर खिंचती चली जाती है तब-तब हिमालय के इन ऊँचे शिखरों को देखकर मन में प्रश्न उभरता है, क्या इन ऊँची पर्वत चोटियों के रूप में कहीं धरती ही भयभीत होकर सिकुड गई है? इस धरती की ऐसी कौन सी व्यथा है जिसके कारण वह सिकुडकर पर्वत बन गई। हिमालय को देखकर ऐसा लगता है मानो वह मुझे निरंतर आगे बढने का संदेश देता है। फलस्वरूप मेरे पैर अपने आप हिमालय की ओर बढते हैं। हिमालय के दिव्य, रमणीय और अलौकिक रूप को देखकर मुझे परमशांती प्राप्त होती है। आगे वह कहती है-एक दिन अचानक ही यह अनंत सागर क्रोधित होकर हिमालय पर्वत की तलहाटी से टकराने लगा। तबसे लेकर आज तक मैं असहाय होकर इस निर्जन वन में अकेली भटक रही हूँ।

मनु से श्रद्धा कहती है कि समीप ही मैंने अन्न देखकर यह अनुमान लगाया कि जरूर यह किसी मनुष्य का दान है। निश्चित ही यहाँ कोई जीवित प्राणी अवश्य है। श्रद्धा मनु को संबोधित कर कहती है-हे तपस्वी! क्या जिजीविषा तुम्हें अधीर नहीं बनाती। तुमने तो त्याग को जिस रूप में अपनाया है वह तुम्हारे आयु और स्थिति के अनुसार नहीं है। ऐसा लगता है कि दु:ख से आशंकित होकर जीवन की काल्पनिक समस्याओं का अनुमान करके भविष्य के संबंध में अनजान बनकर काम से मुख मोडकर दूर भागना तुम्हारे लिए अनुचित है। इस अमूल्य जीवन की उपेक्षा करना अनुचित है। सारी सृष्टि में व्याप्त विराट चेतना शक्ति अनेक प्रकार की लीलाएँ करती हुई, आनंद मनाते हुए सृष्टि के कण कण में व्याप्त है। यह विराट चेतना शक्ति ही इस अनंत सौंदर्य संपन्न संसार के रूप में अभिव्यक्त होती है और सृष्टि के सभी प्राणी उसी में अनुरक्त रहते हैं।

श्रद्धा पुन: इस संसार के मंगलमय स्वरूप की ओर इशारा कर मनु से कहती है कि यह विश्व काम के कल्याणकारी स्वरूप से मंडित होने के कारण श्रेयस्कर थी। इसी काम अथवा इच्छा का ही तो परिणाम यह पूरा विश्व है और ऐसा न समझना यह तुम्हारी भुल है। इस रहस्य को न जानने के कारण तुम काम की उपेक्षा कर संसार को असफल बना रहे हो। श्रद्धा मनु को संबोधित कर कहती है जिस प्रकार रात समाप्त होने पर प्रात:काल का आगमन होता है उसी प्रकार मानव जीवन में दु:ख के बाद सुख की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार रात के अंधेरे में नीला आकाश अपने में प्रात:काल का रहस्य छिपाए रहता है उसी प्रकार दु:ख के नीले महीन परदे के पीछे सुख भी अपने शरीर को छिपाए रहता है।

श्रद्धा कहती है कि, हे मनु! जिस दु:ख को तुम अभिशाप मानते हो वह विश्व की समस्त बाधाओं का उद्गम स्थल है। यह दु:ख तो ईश्वरीय वरदान है इसे सदैव याद रखो। इस संसार में सुख और दु:ख का अत्यंत निकट का संबंध है। दु:ख के बिना सुख का कोई अस्तित्व नहीं है। वास्तव में यह जगत सुख-दु:ख की विषमता का ही प्रतिफल है। इन्हीं विषमताओं में यह संसार गतिशील रहता है। यह सुख-दु:ख सृष्टि के विकास का सत्य है और यह विराटशक्ति की सुंदर देन हैं आगे श्रद्धा मनु से कहती है यह संपूर्ण विश्व

विषमता से परिपूर्ण होने के कारण चिंतातुर होने का कोई कारण नहीं है। इस संसार में रहते हुए प्रत्येक प्राणी को शुभ कर्म करने चाहिए जिससे विषमता भरे संसार में समरसता की स्थिति प्राप्त होगी जिसका हर प्राणी हकदार है। किंतु यहाँ विचित्र स्थिति है। यहाँ तो मनुष्य अपनी तुच्छ इच्छापूर्ति में प्रयत्नशील रहने के कारण समरसता के कारण विषमता को ही प्राप्त कर लेता है। यहाँ विषमता रूपी समुद्र में व्यथारूपी नीली लहरे उमडती है और उन लहरों के मध्य प्राणियों के सभी सुख तेजोमय मणियों की तरह बिखरे पडे रहते हैं। सुख के बदले दु:ख ही नसीब होता है।

श्रद्धा के वचन सुनकर मनु खिन्न होकर कहते हैं, तुम्हारे प्रेरक वचन मधुर पवन के समान मेरे हृदय में उत्साह के भाव भर रहे हैं। चाहे जितना प्रयास करने पर भी अंतत: जीवन में निराशा ही हाथ लगती है इसे सफलता मानना मात्र भ्रम ही होगा। मनु के निराशपूर्ण वचनों को सुनकर श्रद्धा ने उन्हें समझाते हुए कहा कि तुम इतने व्याकुल क्यों हो? जो वीर और साहसी व्यक्ति होते हैं वे तो मरकर भी अर्थात कठिन परिश्रम से सफलता प्राप्त करते हैं। आगे मनु को जीवन की वास्तविकता से परिचित कराते हुए श्रद्धा कहती है कि सांसारिक कार्यों से मुँह मोडकर तपस्या करना जीवन का लक्ष्य नहीं है। सांसारिक कार्यों से दूर भागकर चिरंतन समस्या में लीन रहने के कारण तुम्हारे हृदय में उदासीनता उत्पन्न हुई है।

मनु को प्रेरित करने हेतु श्रद्धा कहती है कि, हे मनु! प्रकृति किसी सुंदर युवती के समान ताजे फूलों से अपना श्रृंगार करती है, बासी और मुरझाए फूलों से नहीं। मुरझाए फुल तो धूल में मिल जाते हैं। उसी प्रकार तुम अपने हृदय से निराशा को निकालकर उसे प्रसन्नता से भर दो। तुम चेतन होने के बावजूद निष्क्रिय होकर निराश और उदास बैठे हो। तुम स्वयं देख सकते हो कि यह विस्तृत भूमंडल अचेतन और जड होते हुए भी उस चेतन प्राणी के समान आनंद की उपलब्धि कर रही है।

मनु को जीवन के प्रति विरक्त होते देख श्रद्धा कहती है, हे मनु! तुम अकेले बिना किसी के सहारे सृष्टि निर्माण संबंधी यज्ञ कैसे करोगे? यज्ञ करने के लिए पुरूष और नारी का साथ आवश्यक है। लंबे समय तक अकेले रहने के कारण तुम्हारी अभिलाषाएँ मृतप्राय हो गई है। नारी के प्रति अनाकर्षण उत्पन्न हो जाने से तुम अपना आत्मविस्तार करने असफल रहे हो। मैं तुम्हारी सहचारिणी बनकर बिना किसी विलंब के अपने कर्तव्य का पालन करूँ जिससे तुम्हारा जीवन निश्चय ही सफल हो जाएगा।

मनु की सहचारिणी बनने के लिए उत्सुक श्रद्धा मनु से बिनती करती है कि, हे मनु! मैं तुम्हारी आजीवन संगिनी बनने के लिए अपने आप को समर्पित करती हूँ। तुम मेरा स्वीकार करो। आज मैं निर्विकार भाव से युक्त सेवाभाव से तुम्हारे चरणों में अपने जीवन को समर्पित करती हूँ। दया, माया, ममता, माधुर्य, अगाध विश्वास आदि कल्याणकारी भावों से भरा हुआ मेरा यह हृदय तुम्हे समर्पित है।

आत्मसमर्पण करने के पश्चात श्रद्धा मनु से कहती है- हे मनु! अब देवजाति का विनाश हुआ है। इसके स्थानपर एक नवीन सृष्टि का निर्माण करना है। इसलिए तुम नवीन सृष्टि के प्रवर्तक बनकर सृष्टि नवनिर्माण का कारण बन जाओ। तुम्हारे कारण नवीन सृष्टि की लता विकसित होगी और उसपर निर्माणरूपी फूल खिलेंगे, जिसकी खुशबू से सारा संसार परिपूर्ण हो जाएगा। अत: तुम सुंदर-सुंदर फुलों से खेलने का

प्रयास क्यों नहीं करते हो? हे मनु! क्या तुम इस सृष्टि के निर्माण करनेवाले विधाता के मंगलमय वरदान को नहीं सुन पा रहे हो, जो कह रहे हैं- 'शक्तिशाली होकर जय प्राप्त करो।' उनके जय-गान की ध्वनि आज विश्व में चारों ओर गूँज रही है। हे मनु! तुम तो अमृत संतान हो, देव पुत्र हो, तुम्हे डरने का कोई कारण नहीं है। तुम इस नवीन सृष्टि की रचना करने के लिए उद्युक्त हो जाओ। देखो तो सही, मेरे रूप में मंगलमय वृद्धि आज तुम्हारे सम्मुख खडी है। निश्चय ही तुम्हारा यह भविष्य उज्वल, मंगलमय एवं कल्याणकारी भावनाओं से युक्त और आकर्षण से परिपूर्ण है। संसार का सारा वैभव अपने आप स्वयं तुम्हारी ओर खिंचा चला आएगा।

नवीन सृष्टि रचना की प्रेरणा देते हुए श्रद्धा मनु से कहती है कि, हे मनु! देवजाति का अहंकार ही उनके विनाश का मूल कारण था। उनकी अतिविलासिता ही उन्हें ले डूबी। आज हमारे सामने देव-सृष्टि के विनाश के उपरांत जो खंडहर बचे हैं वे नवीन सृष्टि के विकास में महत्वपूर्ण सामग्री बन सकते हैं। अत: मानव सृष्टि निर्माण के लिए तुम्हे इस विपुल सामग्री को निकालकर मन में हिंसा और विलास भावना को निकालकर उदात्त भावना से कार्य करना होगा। तभी नवीन मानव सृष्टि भावमय चेतनावस्था को प्राप्त कर सकने में सफल होगी। हम और आप मिलकर जिस नवीन मानव-सृष्टि का निर्माण करेंगे, उसका इतिहास चेतना का सुंदर इतिहास माना जाएगा। इससे संसार में रहनेवाले सभी प्राणियों के हृदयों में उदात्त भावों का सत्य छिपा रहेगा। अत: मेरी यह इच्छा है कि विश्व के हृदय-पटल पर सुनहरे अवसरों में चेतना का इतिहास लिखा जाए जो सदैव विद्यमान रहेगा।

श्रद्धा आगे कहती है कि, विधाता द्वारा निर्मित यह नवीन सृष्टि अत्यंत मंगलमय और कल्याणकारी होकर पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त करेगी। इतना ही नहीं आज से मानव सृष्टि का यश वायु, पृथ्वी और जल सभी स्थानों में अबाधगति के साथ फैल जाएगा। श्रद्धा मनु को कार्यउन्मुख करने हेतु प्रेरणा देते हुए कहती है कि, चाहे सागर अनेक धाराओं में प्रवाहित होकर चारों ओर जल ही जल व्याप्त हो, बडे से बडे व्दीप भले ही उसमें कछुए के समान डुबते उतरते नजर आए लेकिन ऐसी विपरीत स्थिति में भी वह नव-मानव सृष्टि असहाय एवं निरूपाय न दिखाई दे। इसके विपरीत वह भौतिक उन्नति को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हुई एक सुदृढ मूर्ति के रूप में तत्पर हो।

श्रद्धा मनु में नवनिर्माण की चेतना जगाते हुए कहती है कि, आगे चलकर यही नवमानव-सृष्टि इतनी अधिक बलशाली होगी जिससे संसार में कही दुर्बलता नजर नहीं आएगी। यदि किसी कारणवश दुर्बलता के कारण पराजित होना भी पडा तो भी उस हार से मानव-सृष्टि व्याकुल नहीं होगी। मानव-सृष्टि में भरा हुआ शक्ति का आवेग बिना रूके संचारित होता रहेगा। आज विद्युतकण खंडित होकर एक-एक टुकडे के रूप में बिखरे हुए पडे हैं, इन्हें इकठ्ठा करने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा। जो शक्तिकण बिखर गए हैं उन्हें इकठ्ठा कर लिया जाए तो निश्चय ही यह मानव सृष्टि सफल हो सकेगी ऐसा मुझे दृढ विश्वास है। इस प्रकार श्रद्धा ने मनु को कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर किया।

1.1.3.3 'इडा' सर्ग :

प्रलय काल में शेष बचे श्रद्धा और मनु एक साथ रहकर जीवनयापन करने लगे। कुछ दिनों बाद श्रद्धा गर्भवती हुई। श्रद्धा का गर्भस्थ शिशु के प्रति बढते वात्सल्य और ममत्व भाव से मनु के मन में इर्ष्या निर्माण हुई। मनु रूठकर अपनी गृहस्थी और श्रद्धा को वही छोडकर चले गए। वह कई दिनों तक भटकते रहते हैं। अपने भटकते हुए जीवन की तुलना तुफान से करते हुए कहते हैं कि जैसे भयंकर आंधी का झोंका किसी गहरी गुफा से निकलकर अज्ञात स्थान की ओर तीव्रता से जाता दिखाई देता है उसी प्रकार आज मैं भी हृदय में तीव्र वेदना और क्षोभ लिए हुए इधर उधर भटक रहा हूँ। अणु और परमाणुओं के समूह पंच महाभूत जिनसे निर्मित मेरा यह शरीर है, विक्षुब्ध होकर मुझे बेचैन कर रहे हैं।

मनु आगे कहते हैं कि, जैसे भयंकर तुफान संसार को भयभीत करने के लिए भय की साधना करता है, वैसे ही मेरा जीवन भी आज सबको भयभीत करता हुआ भय की साधना करता जान पडता है। जिस प्रकार भयंकर तुफान निर्माण को ध्वस्त कर विषमता और कटुता को बढाता है, वैसे ही आज मैं संसार में कटुता, व्देष और वैमनस्य को बांटता फिर रहा हूँ। जैसे आंधी रेत का महल बनाती है और फिर उसे उजाडकर अपने सामर्थ्य का बोध कराती है, उसी प्रकार मैंने भी पहले श्रद्धा के साथ गृहस्थी का निर्माण किया और फिर उस सुंदर गृहस्थी को अपनी ही मुर्खता और अहंकार के कारण नष्ट भी कर दिया।

मुझे एक पल के लिए लग रहा था कि ऐसा करके मैं अपने सामर्थ्य एवं क्षमता का प्रदर्शन कर रहा हूँ, किंतु इसने मुझे अशांत कर दिया है। मेरे मन में जीवन की हर चीज के प्रति उदासीन भाव निर्माण हुआ है। जिस प्रकार किसी लक्ष्य को भेदने के लिए कोई तीर अवकाश में छोड दिया जाता है, उसी प्रकार मेरा यह जीवनरूपी तीर भी किसी विषम लक्ष्य को भेदने के लिए इस निर्जन प्रदेश में भटक रहा है। मैं लक्ष्य भ्रष्ट हो गया हूँ अर्थात मेरे जीवन का अब कोई लक्ष्य नहीं रहा है।

भटक रहे मनु को हिमालय की ऊँची चोटियाँ पृथ्वी का अभिमान भंग करती जान पडती है। हिमालय पर्वत की यह ऊँची-ऊँची उन्मुक्त चोटियाँ हमेशा बर्फ से ढकी रहती है। उनके इस स्थिर एवं जड जीवन को देखकर ऐसा लगता है मानो वह चोटियाँ जडता का प्रतीक है। पृथ्वी के अभिमान का भंग करती हुई यह चोटियाँ समाधिस्थ योगी की तरह शांति और सुख का अनुभव करती रहती है। बर्फ पिघलने लगती है तब उनमें से जल कणों को लेकर नदियाँ बहने लगती हैं जो ऐसी लगती है मानो इस समाधिस्थ योगी के शरीर से पसीनें की बूंदे बह निकली हों। उस समाधिस्थ योगी पर किसी बात का कोई प्रभाव नहीं पडता और वह शांतचित्त एवं स्थिर दृष्टि से शोक, क्रोध जैसे विकारों से रहित होकर समाधी में लीन बना रहता है। मनु को लगता है कि उन ऊँची चोटियों को जैसे सारे सांसारिक बंधनों से सदा के लिए छुटकारा मिल गया है। मनु को लगता है कि मुझे उन चोटियों जैसी स्थिरता नहीं चाहिए। मुझे तो निरंतर गतिशीलता चाहिए। स्थिर और गतिहीन जीवन मेरा ध्येय नहीं बल्कि मेरी इच्छा है कि मेरा मन वायु जैसी अबाध गति से आगे बढे और सुख प्राप्त करें। सूर्य जिस प्रकार निरंतर गतिशील रहता है उसी प्रकार मैं भी गतिशील जीवन का आकांक्षी हूँ। मैं जीवन को प्रकाश से परिपूर्ण और गतिशील बनाना चाहता हूँ।

मनु श्रद्धा से रूष्ट होकर अपनी गृहस्थी छोडकर सारस्वत प्रदेश में भटक रहे हैं। अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करते हुए अपनी ईर्ष्याजनित वृत्ति को दोष देते हुए कहते हैं कि मेरा विगत जीवन वास्तव में कितना अच्छा था। श्रद्धा जैसी सुंदर नारी के सहयोग से अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के साधन जुटा लिए थे। श्रद्धा का साथ पाकर मैंने सुखी और सुंदर गृहस्थी का निर्माण किया था। मैं कितना मुर्ख हूँ कि उस बसी-बसाई गृहस्थी को छोडकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। ईर्ष्या के कारण मैंने श्रद्धा को छोड दिया लेकिन इन पर्वत और वन में कहीं भी सुख नहीं खोज पा रहा हूँ। मनु को अपनी मुर्खता पर पश्चाताप हो रहा है।

मनु को लगता है कि मैं अत्यंत निष्ठुर और निर्दयी हूँ। मैंने कभी किसी के प्रति कोई दया नहीं दिखाई। हृदय में कोई ममता न होने के कारण ही आज मेरी यह दुर्दशा हुई है। श्रद्धा ने मुझे अपना सर्वस्व अर्पित किया था लेकिन मैंने अपने हृदय की उदारता का परिचय न देते हुए उस पर भी पूर्ण मन से आसक्त न हो सका। अब इस निर्जन प्रदेश में इधर-उधर भटक रहा हूँ। अब मेरे मन में पुराने सुख की लालसा निर्माण हुई है, उस पुराने सुख को खोज रहा हूँ लेकिन मुझे वह नहीं मिल पा रहा है। मैंने जीवनभर दूसरों को दु:ख ही दिया है। कभी किसी को सुख, शांति और शीतलता नहीं दी। शीतल वायु के समान मैं किसी फूल को कभी खिला नहीं सका। मुझसे कभी किसी का कोई हित नहीं हुआ बल्कि मैंने सभी को दुखी ही बनाया है। मेरा जीवन लू के उस गर्म थपेडे के समान रहा है जो खिले हुए फूल को भी झुलसा कर मुरझा देता है। मैं हमेशा यथार्थ से दूर ही रहा। मनु की सारी आशा-आकांक्षाएँ अधूरी हैं। श्रद्धा को छोड देने का पश्चाताप उन्हें विकल बना रहा है। उन्हें लग रहा है कि सुख को खोजने के प्रयास में उन्होंने बडी भूल की है जिसके परिणामस्वरूप अब उनके हिस्से दु:ख आया है।

मनु अपने असफल और निराश जीवन की तुलना आकाश रूपी लता से करते हुए कहते हैं कि नील गगन में टिमटिमाते नक्षत्र ऐसे लगते हैं मानो किसी लता में पुष्प रूपी प्रकाश कण उलझे हुए हो। मेरे दुखमय जीवन की सारी अपेक्षाएँ धूल में मिल गई है जिससे लग रहा है कि अब सुख प्राप्ति की कोई आशा नहीं रही है। मैं अपने जीवन में जिन वस्तुओं को सुखदायक समझ रहा था वे सब तो कांटे के समान दुखदायक सिद्ध हुए। जैसे ही मैंने श्रद्धा का साथ छोडा, मेरा जीवन जैसे निर्जन बन गया है। घर से निर्वासित होकर अब अशांत बन गया हूँ। मेरी यह अवस्था अब इतनी दयनीय बन गई है कि जैसे लग रहा है कि मेरी यह अवस्था देखकर यह पहाड और पर्वत भी मेरा उपहास कर रहे हैं।

मनु अपनी दयनीय दशा के लिए अपने आप को दोषी मानते हुए कहते हैं कि, मुझे ऐसा लगता है कि इस संसार का नियमन करने वाली शक्ति जिसे हम नियति कहते हैं, एक नटी के समान अपना भीषण अभिनय करती हुई मेरे चारों ओर नाच रही है। इन घने वनों में मेरी असफलता कुलांचें मारती हुई नृत्य कर रही है। उस व्यक्ति के समान मेरी अवस्था हो गई है जो वर्षाकाल में प्रकाश के सभी ोतों को नष्ट करके पुन: प्रकाश पाने के लिए जुगुनुओं को पकडने के लिए उनके पीछे भाग रहा है। भला जुगुनुओं से कहीं प्रकाश मिलता है। मैं ऐसा मुर्ख व्यक्ति हूँ जिसने स्वयं अपने हाथ से जीवन का प्रकाश नष्ट कर दिया है और अब जुगुनुओं को दौडकर पकडता फिर रहा है। उन्हें लगता है कि अब शायद मुझे बिना प्रकाश के अंधकार में ही अपना जीवन बिताना पडेगा।

मनु अपने जीवन में व्याप्त निराशा की तुलना रात्रि में सर्वत्र फैले अंधकार से करते हुए कहते हैं कि घोर निराशा में सात्विक चेतना खत्म सी हो जाती है। मनुष्य के हृदय में जितना अधिक मोह होगा निराशा भी उतनी ही अधिक होगी। अपने जीवन में व्याप्त निराशा को संबोधित करते हुए मनु कहते हैं कि, हे निराशा! तू अंधकार है और मेरे जीवन को घिरी हुई हो। आधी रात का गहन अंधकार चारों ओर फैला रहता है उसी प्रकार यह निराशा मेरे जीवन के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो गई है। इस गहन निराशा में मुझे प्रकाश की कोई किरण दिखाई नहीं दी रही है। निराशा व्यक्ति की विचार शक्ति को क्षीण कर देती है और शायद इसी कारण सुख पाने के मेरे सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हो रहे हैं।

निराशा का यह अंधकार व्यक्ति को उन्मत्त बना देता है जिसके कारण उसका सारा संसार अकर्मण्यता से घिर जाता है। यह निराशा सर्वव्यापी है। प्रभात के होने पर अंधेरा छट जाता है, किंतु प्रकाश के लुप्त होते ही फिर वही निराशा रूपी अंधकार जीवन में छा जाता है। मनु कहते हैं कि, मेरे जीवन में भी श्रद्धा का साहचर्य प्रकाश की तरह आया किंतु श्रद्धा से अलग होने के बाद मैं फिर से निराशा के अंधकार में डूब गया हूँ। मनु अपने जीवन में व्याप्त निराशा को संबोधित करते हुए स्वगत कथन के रूप में कहते हैं कि- अरी निराशा, जिस तरह रात का अंधेरा किसी मायाविनी की आँखों का काजल लगता है उसी प्रकार तू भी किसी मायाविनी की आँखों की अंजन सी लगती हो। जैसे कोयल की कूक आकाश में सर्वत्र छा जाती है उसी प्रकार यह निराशा मुझपर छायी हुई है।

मनु सारस्वत नगर में पहुँच जाते हैं। यह नगर पूर्णत: उजडा हुआ था। इस उजडे हुए सारस्वत नगर को देखकर मनु स्वगत रूप में कहने लगे कि यह नगर किसी समय देवताओं की भूमि थी। यहा देवसृष्टि का वैभव छाया हुआ था लेकिन यह देवभूमि प्रलय के कारण पूरी तरह से नष्ट हो गई है। सारा प्रदेश उजड गया है और सारे स्थान सूने पडे हैं। इस नगर में कितनी ही कलाकृतियाँ और सुंदर भवन थे लेकिन आज वह सारे नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं। जब इनमें सौंदर्य था तब सभी ओर सुख था अब सारा सौंदर्य नष्ट हुआ है तो सभी ओर दुख का वातावरण छाया हुआ है।

सारस्वत नगर के सुंदर भवन जो आज छिन्न-भिन्न हो गए हैं, उन्हें देखकर लगता है कि यहा रहनेवालों की अतृप्त अभिलाषाएँ इन खंडहरों में मंडरा रही है। पेडों के सड रहे पत्तें यहा के निवासियों की विलासीवृत्ति को दिखा रही है। इन खंडहरों में यहा के निवासियों की विलासीवृत्ति सजीव हो रही है। यह खंडहर आज यहा रहनेवालों की समाधि जैसे बने थे। उस समय यह नगर वैभव संपन्न था तथा यहा होनेवाली हलचल आज इस तरह शांत थी जैसे समाधि पर जलाया दीपक कुछ समय तक जलने के बाद शांत हो जाता है।

मनु भटकते हुए अत्यंत थक जाने के कारण खंडहरों में विश्राम करते हुए उस प्रदेश के वैभव संपन्नता के बारे में सोचने लगते हैं। यहा सरस्वती नदी प्रबल वेग से बह रही थी। सरस्वती नदी का वह किनारा जो पहले लोगों की भीड से भरा रहता था लेकिन आज देव सृष्टि नष्ट हो जाने से कितना सूना लग रहा था। इसी सरस्वती नदी के किनारे देवेश इंद्र ने वृत्रासुर का वध किया था और असुरों पर विजय प्राप्त की थी। आज यह नगर उजडा हुआ और चारों ओर अंधकार से भर गया है।

मनु सारस्वत नगर में विश्राम करने के लिए वहीं लेट गए। लेटे हुए वे सुरों एवं असुरों के संघर्ष के बारे में विचार करने लगे। पहले सुर और असुर एकत्र रहते थे किंतु विचारों में भिन्नता के कारण दोनों में संघर्ष शुरू हुआ। आत्मविश्वास से भरे हुए देवता स्वयं को सर्वशक्तिमान मानकर आत्मा की उपासना में लिन रहते थे। देवता स्वयं को उल्लासमयी शक्ति का केंद्र मानते थे। अपनी शक्तियों द्वारा देवता अनेक वस्तुओं का निर्माण करते हुए इस जगत को प्रसन्न रखते थे। दूसरी ओर असुर शरीर और प्राणों की रक्षा हेतु अनेक प्रकार के सुख साधन जुटा रहे थे और जीवन को सुधारने हेतु कठोर नियमों में बंधते जा रहे थे। सुरों और असुरों का यह संघर्ष पहले वैचारिक स्तर पर था। बाद में अपने पक्ष को सही सिद्ध करने के लिए युद्ध हुआ। ऐसा ही संघर्ष आज मनु के ह्रदय में चल रहा है। मेरे भीतर एक ओर ममता से भरा हुआ आत्ममोह है तो दूसरी ओर स्वेच्छाचारिता है जो मुझे कुछ भी करने के लिए प्रेरित करती रहती है। मैं भी प्रलय से डरकर असुरों की तरह अपनी प्राण रक्षा में मग्न रहता हूँ। मैंने बाह्य रूप से तो श्रद्धा को खोया ही है दूसरी ओर मेरा ह्रदय भी श्रद्धा विहिन हो गया है।

मनु अपने विगत और वर्तमान जीवन के बारे में सोच रहे थे तभी उन्हें काम की शाप ध्वनि सुनाई पडी। काम ने ही पहले अपनी आत्मजा कामायनी अर्थात श्रद्धा को पत्नी के रूप में अपनाने का आग्रह मनु से किया था। आज मनु ने जो आचरण किया है उससे दुखी होकर काम उन्हें अभिशाप देते हुए कहता है कि, हे मनु! तुमने उस श्रद्धा को त्यागकर अच्छा नहीं किया। श्रद्धा तुम्हारे प्रति पूर्ण समर्पित थी। वह हमेशा तुम्हारे और तुम्हारे सुख के बारे मे ही सोचती रहती थी। किंतु तुमने श्रद्धा को कभी कोई महत्व नहीं दिया। तुमने श्रद्धा की उपेक्षा और अवहेलना करके अच्छा नहीं किया।

काम मनु को कहता है कि, तुम तो इस संसार को असत्य एवं जीवन को क्षणभंगुर मानते थे इसलिए तुमने क्षणिक सुख को महत्व दिया। वासना पूर्ति को ही तुम जीवन का एकमात्र उद्‌देश्य मान बैठे और अनुचित कर्मो में प्रवृत्त होकर श्रद्धा को छोडकर चले आए। पौरूष के अहंभाव ने तुम्हे नारी के प्रति असहिष्णु बना दिया। तुम यह भूल गए कि नारी की भी कुछ सत्ता है। तुमने उसके सारे अधिकार छिन लिए और तुम उसके साथ ऐसा व्यवहार करने लगे कि तुम उसके शासक हो। तुम यह भूल गए कि पति-पत्नी का संबंध पारस्पारिक सौहार्द पर आधारित होता है, शासक और शासित जैसा नहीं। हे मनु! तुम्हारे इन कर्मो का दुष्परिणाम यह होगा कि तुम्हारे द्वारा संचालित शासन तंत्र शापयुक्त होकर सुख-शांति से दूर रहेगा।

मनु को शाप देते हुए काम ने कहा कि, हे मनु! तुम जिस नवीन प्रजा का निर्माण करोगे वह मानव सृष्टि के नाम से जानी जाएगी, किंतु वह कभी सफलता प्राप्त नहीं कर पाएगी। तुम्हारी यह मानव सृष्टि जाति और धर्म के आधारपर भेदभाव करेगी जिसके कारण उनमें कभी समानता नहीं रहेगी। यह मानव समुदाय अपने लिए अनेक प्रकार की समस्याएँ निर्माण करेगा और उन्हें सुलझाने के प्रयास में ही अपना जीवन विनाश करेगा। सभी ओर संघर्ष और कलह होगा। वह अनेक प्रकार के दु:ख और संकटों में ही फँसा रहेगा। वह निरंतर दुखी और बचैन रहेगा तथा अपनी संकुचित वृत्ति के कारण सुख से वंचित रहेगा।

मनु को शाप देता हुआ काम कहता है कि मानव सृष्टि में प्रेम का अभाव होगा। लोगों के स्वार्थी होने के कारण संसार में दुख की प्रधानता रहेगी। तुम्हारा जीवन युद्ध बनकर संघर्षो से घिर जाएगा। तुम्हारे हृदय में दंभ और अहंकार अधिक होगा। हे मनु! श्रद्धा इस संसार का रहस्य है। मानव सृष्टि का विकास उसकी पवित्र भावनाओं से ही होगा, तुम्हारी संकुचित दृष्टि से नहीं। उस पवित्र नारी ने तुम्हें अपना सबकुछ समर्पित कर दिया पर तुम उसे छोडकर यहा आ गए। तुमने अपने सुखपूर्ण वर्तमान को स्वयं नष्ट कर दिया है। अब तुम भविष्य में सुख मिलेगा यह आकांक्षा छोड दो। तुम निरंतर अशांत रहोगे। तुम वृद्धावस्था और मृत्यु के भय से सदैव बेचैन रहोगे।

काम की यह शाप वाणी आकाश में जब गूँज उठी तो मनु को लगा जैसे उनके हृदय में शूल चुभ गया हो। वे अपराध बोध और पीडा से व्याकुल हो गए। उस नीरव सारस्वत प्रदेश में रात्रिकालीन अंधकार को समेटे और निराशा को धारण किए मनु बेचैन होकर सांसे ले रहे थे और यह सोच रहे थे कि इसी काम ने मुझे स्वप्न में प्रेरित करते हुए श्रद्धा को स्वीकार करने की प्रेरणा दी थी। आज यही काम फिर यहा उपस्थित हो गया है। उसने मेरे अंधकारपूर्ण भविष्य की घोषणा कर मुझे अंतहीन दुखों को झेलने के लिए तैयार रहने की चेतावनी दे रहा है। लगता है यह दुख तो मुझे झेलने ही पडेंगे, क्योंकि उनसे बचने का कोई उपाय नहीं है।

मनु अब सारस्वत प्रदेश के खंडहरों से होते हुए आगे बढ रहे थे। मनु ने देखा कि सरस्वती नदी कल-कल, छल-छल की आवाजें करती हुई प्रवाहित हो रही है। उस श्यामल घाटी में बहती हुई वह नदी विकारहीन और सात्विक भावों से बह रही थी। निरंतर बहती हुई वह नदी की धारा मनु को जैसे कर्मरत रहने का संदेश दे रही हो। इस मनोहर दृश्य को देखकर मनु भावुक होते हुए सोचते हैं कि इस सरस्वती नदी ने निरंतर बहते हुए जैसे अपना मार्ग स्वयं बनाया है, उसी प्रकार सभी प्राणियों को निरंतर कर्मशील रहते हुए अपने जीवन पथ का स्वयं निर्माण करना चाहिए।

मनु थककर सो जाते हैं। सुबह होने पर उन्होंने पूर्व दिशा में सूर्योदय होते देखा। सूर्य की किरणों से सचेत होकर हरी-भरी शाखाओं पर सोते हुए पक्षी मधुर कलरव करने लगे थे। ऐसा लग रहा था मानो सूर्यरूपी कमल की मधुर किरण रूपी गंध से आंदोलित होकर पक्षी उसका गुणगान करते हुए जाग उठे हों। उस मधुर वातावरण में प्रभात का मधुर पवन फूलों की गंध सभी ओर फैलाने के लिए हलचल मचा रहा था।

ऐसे सुरम्य वातावरण को देखते हुए मनु आगे बढ रहे थे कि अचानक उन्हें एक सुंदर रमणी दिखाई पडी जो ऐसी लग रही थी मानो सुंदर फलक पर बना हुआ कोई आकर्षक चित्र हो। वह सारस्वत प्रदेश की रानी इडा थी। इडा का अंग-प्रत्यंग इतना सुंदर था मानो उसे देखकर नेत्र उत्सव के आनंद में डूब गए हो। वह खिले हुए कमल की तरह विकसित और प्रफुल्लित लग रही थी। उस युवती का मुस्कुराता हुआ मुख संसार पर मधुर प्रेम की वर्षा करता हुआ लग रहा था।

इडा के केश घुंघराले थे और उसकी अलकें भी इतनी सुंदर थी कि देखने वालों को अपने में उलझा लेती थी अर्थात उसे देखनेवाला उसे देखते ही रह जाता था। इडा का ललाट कांतिमय था। इडा के दोनों नेत्र

कमल पत्र के बने हुए दो मधुचषक से लग रहे थे जिनमें अनुराग और विराग की मदीरा छलकती हुई दिखाई दे रही थी। उसका सुंदर मुख अधखिले पुष्प की तरह और उसके मुख से निकलनेवाली मधुर वाणी भ्रमरों की मधुर गुंजार के समान लग रही थी। इडा का वक्ष अत्यंत उन्नत और आकर्षक था जिसे देखकर ऐसा लगता था मानो वह सारे संसार के ज्ञान-विज्ञान को एकत्र कर अपने ह्रदय पर धारण किए हुए है।

इडा अपने हाथ में कर्म का कलश लिए हुए सभी को मानो कर्म की प्रेरणा दे रही थी। उसका दूसरा हाथ विचारों के आकाश को मधुरता एवं निर्भिकता से सहारा दे रहा था अर्थात इडा का दूसरा हाथ यह संकेत दे रहा था कि गुढ से गुढ विचारों को भी बडी मधुरता और निर्भीकता के साथ कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है। इडा के उदर पर पडी तीन रेखाएँ सत, रज और तम की तीन लहरों जैसी लग रही थी। उसने एक श्वेत वस्त्र साडी की तरह अपने शरीर पर लपेटा हुआ था। उसके चरणों में नृत्य की लय एवं ताल भरी हुई थी। इडा को देखकर मनु के ह्रदय की सारी हलचल शांत हो गई। इडा को देखकर मनु की चंचलता खत्म हो गई और उनकी चंचल इच्छाएं नीरवता और आलस्य का रूप धारण कर शांत हो गई। मनु शांत भाव से इडा के उस सौंदर्य को देखते हुए मधुर भावों में लीन हो गए। मनु कुछ क्षणों तक चुपचाप इडा की ओर देखते रहे और फिर यह कह उठे, अरी यह कौन है? क्या प्रकाशवान् चेतना ही मुस्कुराती हुई स्वर्णमय शरीर धारण करके आ गई है।

मनु को अपने बारे में बताते हुए वह असाधारण प्रतिभा से युक्त वह सुंदर युवती कहती है कि, मैं इडा हूँ, पर आप कौन हैं जो इस उजडे हुए प्रदेश में भटक रहे हैं। इडा के इस प्रश्न को सुनकर मनु ने उसे तुरंत उत्तर देते हुए कहा कि मेरा नाम मनु है और मैं इस संसार में भटकने वाला एक ऐसा पथिक हूँ जो अनेक प्रकार के कष्ट सह रहा है। इडा ने उसका स्वागत करते हुए कहा कि इस प्रदेश में मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। यह सारस्वत प्रदेश मेरा ही देश था लेकिन प्रलय में यह पूर्णत: उजड गया है। जल-प्लावन के बाद से इसी आशा में यहां पडी हूँ कि कभी तो अच्छे दिन आएंगे और मेरा यह देश पुन: समृद्धशाली हो जाएगा। मनु कहने लगे कि हे देवी! यदि तुम चाहो तो मैं इस प्रदेश को समृद्धशाली बना सकता हूँ और इस प्रकार अपने भविष्य का व्दार भी खोल सकता हूँ।

मनु इडा से कहने लगे कि शनि लोक का अशुभ प्रभाव पृथ्वी पर जरूर पडता होगा। मुझे लगता है कि उस शनि लोक के पार परमेश्वर का निवासस्थान है। वह परमेश्वर अगर प्रकाश की एक किरण मुझे प्रदान कर सांसारिक पीडाओं से मुक्ति दिला दे तो कितना अच्छा होता। मनु की बातों को सुनकर इडा कहने लगी कि परमात्मा भले ही प्रकाश पुंज हो लेकिन वह तुम्हें क्यों प्रकाश की किरण देगा। तुम्हें इतना दुर्बल नहीं बनना चाहिए। तुम्हें परमात्मा पर निर्भर नहीं रहना चाहिए बल्कि अपनी शक्ति को जगाते हुए अपने पथ पर निरंतर चलते रहना चाहिए।

इडा मनु को समझाते हुए कहती है कि व्यक्ति को अपनी बुद्धि का कहना मानना चाहिए। अपने बृद्धि-वैभव और परिश्रम से वह बहुत कुछ पा सकता है। तुम अपनी जडता को अपनी चेतना में बदलकर विज्ञान को साधन के रूप में अपनाकर बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हो। सबका नियमन और शासन करते हुए निरंतर

आगे बढते रहो तथा अपनी शक्ति और क्षमता को विस्तारित करते रहो। तुम्हें विज्ञान के सहज साधनों को अपनाते हुए वैज्ञानिक उपायों से जड पदार्थो को भी चेतनावान बनाना है तभी तुम्हारा यश संपूर्ण लोक में फैल जाएगा।

इडा ने मनु को प्रेरित करते हुए उन्हें उजडे हुए सारस्वत नगर की व्यवस्था संभालने के लिए कहा और मनु इसके लिए तैयार हो गए। मनु ने सारस्वत नगर को पुन: समृद्ध बनाने का कार्य अपने हाथ में लिया। मानव सृष्टि का आदिपुरूष राज्य व्यवस्था संभालने का उत्तरदायित्व वहन करने हेतु तत्पर हुआ था। इस दृश्य को देखकर सारी प्रकृति उत्साहित और उल्लासित हो उठी। मनु इडा से कहते हैं कि, अब मैंने परावलंबित्व छोडकर बुद्धिवाद को अपनाया है। तुम्हारे रूप में साक्षात बुद्धि को ही मैंने अपने समक्ष पा लिया है। मेरा जीवन अकर्मण्यता को छोडकर कर्म में लीन हो गया है। जब व्यक्ति कर्मरत हो जाता है तो उसके जीवन में सुखों के साधन आ जाते हैं। मेरे जीवन में भी अब निश्चय ही सुख आएगा।

1.3.4 'कामायनी': प्रमुख पात्र

कामायनी में मनु, श्रद्धा और इडा तीन प्रमख पात्र हैं। कामायनी की कथा वास्तव में मनु और श्रद्धा के संयोग से मानवसृष्टि के विकास की कथा है। देव-जाति के विनाश को लेकर चिंतामग्न मनु के हृदय में श्रद्धा आशा का संचार करते हुए उसे कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर करती है। ईर्ष्या और बंधनमुक्त जीवन जीने की लालसा के कारण मनु श्रद्धा को छोडकर सारस्वत प्रदेश निकल जाता है। इडा अर्थात बुद्धि की सहायता से मनु उध्वस्त हुए सारस्वत नगर को वैज्ञानिक साधनों की सहायता से पुन: बसाना चाहते हैं। मनु को अंत में श्रद्धा ही संकट से उबारती है। श्रद्धा के कारण ही मनु को अखंड आनंद की प्राप्ति होती है।

अपनी बुद्धि पर गर्व करनेवाली इडा भी श्रद्धा के साहचर्य के कारण अपनी गलती स्वीकार करती है। श्रद्धा में सेवा, त्याग, ममता, त्याग, करूणा, क्षमा आदि नारी-हृदय की उदात्त वृत्तियाँ समाहित हैं। यह तीनों पात्र ऐतिहासिकता ही नहीं बल्कि मानव प्रवृत्तियों के प्रतीक रूप में अवतरित हुए हैं। जैसे मनु मन के, श्रद्धा श्रद्धा की और इडा बुद्धि का प्रतीक है। कामायनी के मनु, श्रद्धा और इडा इन तीन पात्रों का परिचय इस प्रकार है-

मनु का चरित्र चित्रण :

मनु कामायनी का प्रमुख पुरूष पात्र है। कामायनी में चित्रित मनु का चरित्र महाकाव्य के नायक जैसा उदात्त नहीं है। वे विलासी, अहंकारी, स्वार्थी और दुर्बल मानव के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे कथा के केंद्र में होते हुए भी उन्हें नायक नहीं माना जा सकता। जल प्रलय के बाद वे अकेले पुरूष बचे हैं। मनु चिंतातुर, निराश और व्यथित हैं। देव जाति के विनाश के बारे में सोचते हुए वे अधिक चिंताग्रस्त बन जाते हैं। उनका मानना है कि देव जाति की अति विलासिता, सुरा-सुंदरी का अतिभोग ही उनके विनाश का कारण बना। जब श्रद्धा द्वारा मनु को कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर किया जाता है तो श्रद्धा के साथ गृहस्थ जीवनयापन करते हैं। लेकिन पुरूषी स्वभाव और स्वभावगत ईर्ष्याजनित मानसिकता के कारण वे श्रद्धा को

छोडकर सारस्वत नगर पहूँच जाते हैं। आगे चलकर सारस्वत नगर की रानी इडा के साथ मिलकर सारस्वत नगर का नव निर्माण करते हैं। अंत में श्रद्धा ही उन्हें अखंड आनंद प्राप्ति में सहयोग देती है।

मनु की देहयष्टि सशक्त और गठन युक्त है जिसका चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है –

''अवयव की दृढ मांस पेशियाँ, ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार।''

मनु का चरित्र मानवी वृत्तियों का द्‌योतक है। मनु किसी बंधन में बंधकर रहना नहीं चाहते हैं। श्रद्धा के मन में किसी ओर का स्नेह वह बर्दाश्त नहीं करते। इसलिए असुर पुरोहित आकुलि और किलात के साथ मिलकर श्रद्धा ने पालित पशु की बलि चढाते हैं। इतना ही नहीं अपने होनेवाले शिशु के प्रति श्रद्धा का प्यार देखकर उसे अकेली छोडकर सारस्वत नगर चले जाते हैं। उनके चरित्र की दुर्बलता यह है कि उनका हृदय चंचल है। मनु श्रद्धा का त्याग कर सारस्वत नगर पहूँचते हैं तो वहा भी इडा पर मुग्ध होकर उसपर एकाधिकार स्थापित करना चाहते हैं लेकिन उन्हें जनविद्रोह का सामना करना पडता है। जब भी श्रद्धा से अलग होकर वे संकट में पडे हैं तब हर बार श्रद्धा ही आगे आकर उन्हें सही मार्ग पर अग्रसर करती रही है।

मनु सारस्वत नगर की भौतिक प्रगति कर राज्य का प्रबंध अपने हाथ में लेते हैं। लेकिन फिर उनमें पुरूषी अहंकार जाग जाता है और श्रद्धा पर ही अधिकार जमाना शुरू करते हैं। इसी स्वार्थांधता के कारण उन्हें सारस्वत नगरवासियों के रोष का सामना करना पडता है। मनु के इस संकट के समय श्रद्धा ही उन्हें आकर संभालती है। जब-जब श्रद्धा उन्हें आकर संभालती है तब-तब मनु को अपने किए पर पछतावा भी होता है। जब भी मनु पश्चाताप और ग्लानि की आग में जलने लगते है तब श्रद्धा ही सही मार्ग दिखाकर शिव जी के चरणों में उन्हें लीन कराती है और अखंड आनंद की प्राप्ति में सहयोग देती है। इस अर्थ में कामायनी में मनु का चरित्र श्रद्धा के चरित्र की तुलना में उतना व्यापक दिखाई नहीं देता जितना दिखाई देना चाहिए था।

कवि जयशंकर प्रसाद जी मनु के चरित्र के द्वारा कहना चाहते हैं कि, मनुष्य व्यर्थ ही भौतिक सुखों में मग्न होकर भटकता रहता है। भौतिक सुखों के पीछे पडे हुए व्यक्ति के हाथ अशांति के सिवाय कुछ भी नहीं आता। स्वार्थांध और वासना विकारों से उपर उठकर ही अखंड आनंद की प्राप्ति हो सकती है। घोर वासना से युक्त भौतिकता उसके विनाश का कारण बनती है। कामायनी के अंतिम सर्गों में मनु का चरित्र भौतिक धरातल से उपर उठकर अध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता दिखाया गया है।

श्रद्धा का चरित्र चित्रण :

'कामायनी' महाकाव्य की प्रधान नारी पात्र एवं नायिका श्रद्धा है। इस महाकाव्य में श्रद्धा का चरित्र आदर्श भारतीय नारी के सभी गुणों से परिपूर्ण दिखाया गया है। नारी सुलभ त्याग, स्नेह, क्षमा, सहनशीलता, धैर्य, उदारता और वात्सल्य आदि सभी गुण श्रद्धा में दिखाई देते हैं। कामायनी में जितने भी पात्र हैं उन सभी में श्रद्धा का चरित्र सबसे उज्वल और ऊँचा है।

श्रद्धा अपूर्व सुंदरी है। श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं–

''कुसुम कानन अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ साकार

रजित परमाणु पराग शरीर खडा हो ले मधु का आधार।''

मनु हर बार रास्ता भटक जाते हैं। स्वार्थांधता और अविचारों के प्रभाव से युक्त मनु कई बार अपने कर्मों के कारण व्यथित और निराश हो जाते है। लेकिन श्रद्धा व्यथित और दुखी मनु में आशा का संचार करते हुए उन्हें कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर करती है। मनु को असहाय और अकेले देख द्रवित होकर आत्मसमर्पण के लिए तैयार हो जाती है। मनु और श्रद्धा के चरित्र में मुलभूत फर्क यह है कि मनु में जहाँ अधिकार भोग की कामना और स्वार्थ है वहाँ श्रद्धा में समर्पण की लालसा है। श्रद्धा त्यागमयी है और उसका यह समर्पण वासनाजनित न होकर उसमें केवल देने का भाव है, लेने का नहीं –

''इस अर्पण में कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग छलकता है।

मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ इतना ही सरल झलकता है।''

मनु के प्रति श्रद्धा अपना सबकुछ समर्पित कर उसकी पत्नी बन जाती है। एक आदर्श गृहिणी के रूप में बीजों का संग्रह करना, सूत कातना, शिशु के लिए कुटीर बनाना, धान्य संचय करना जैसे कार्यो में व्यस्त हो जाती है। मनु को प्राणियों की शिकार करने से रोकती है लेकिन मनु अपने कर्मो से बाज नहीं आते। श्रद्धा की शिशु के प्रति ममता देख मनु उसे अकेली छोडकर भाग जाते हैं।

श्रद्धा एक आदर्श नारी है और इसी कारण उसमें कुछ नारीसुलभ मानवीय दुर्बलताएँ भी है और इसी कारण लज्जा के लाख समझाने पर भी वह मनु के सामने आत्मसमर्पण करती है। श्रद्धा हमेशा मनु के कल्याण की कामना करती है जब कि मनु बार–बार उसकी उपेक्षा कर उसे अकेली छोडकर भाग जाते हैं। श्रद्धा अपना पत्नी धर्म अंत तक निभाती है। मनु जब–जब श्रद्धा विहिन होकर भटकता है तब–तब श्रद्धा आगे आकर उसे संभालती है। दु:स्वप्न देखकर वह सारस्वत नगर पहुँचती है और चेतनाशून्य मनु में फिर से चेतना का संचार करती है। श्रद्धा में क्षमाशीलता होने के कारण वह मनु के साथ इडा को भी क्षमा करती है। मनु के लिए अखंड आनंद प्राप्ति के लिए श्रद्धा ही उसकी सहयोगिनी बन जाती है।

श्रद्धा के चरित्र में अध्यात्मिक और लौकिक दोनों रूपों का समन्वय हुआ है। अध्यात्मिक रूप में भौतिक सुखों में लिप्त होने के कारण खिन्न, हारे हुए मनु को अखंड आनंद का मार्ग दिखलाती है। लौकिक रूप में वह चिंतातुर व्यथित मनु में सांसारिक जीवन के प्रति आसक्ति उत्पन्न कर उन्हें कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर करती है। यही कारण है कि श्रद्धा का चरित्र मनु और इडा के चरित्र से उपर उठ जाता है।

इडा का चरित्र चित्रण :

'इडा' कामायनी महाकाव्य की दूसरी महत्वपूर्ण नारी पात्र है, जो सारस्वत नगर की रानी है। इडा में बुद्धि और सौंदर्य का अदभूत समन्वय है। भटकते हुए मनु सारस्वत नगर में आ जाते हैं। उन्हें अपने साथ

लेकर खंडहर बने सारस्वत नगर का पुनर्निमाण करती है। वह मनु को सारस्वत नगर का राज्य प्रबंधक भी बनाती है। इडा के आकर्षण के कारण मनु पुन: कर्म में लीन हो जाते हैं। इडा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाती है क्योंकि विज्ञान पर उसकी पूर्ण आस्था है। इडा का अपनी बुद्धि पर पूर्ण विश्वास है और इसी कारण वह नवनिर्माण को प्रधानता देती हुई दिखाई देती है।

कामायनी महाकाव्य में इडा दो रूपों में हमारे सामने आती है। प्रथम रूप में वह बुद्धि की प्रतीक है। मनु को साथ लेकर वह सारस्वत नगर को भौतिक सुख सुविधाओं से परिपूर्ण बनाती है। उसमें अनेक दुर्बलताएँ भी हैं। बुद्धिवाद के अतिरेक के कारण भौतिक उन्नति को ही वह सर्वस्व मानते हुए जगत् के रचयिता के प्रति उपेक्षा भाव रखती है। इतना ही नहीं मनु को मदिरा पिलाकर अपने वश में रखने हेतु उसे विलासोन्मत बनाती है। उसका परिणाम भी उसे भूगतना पडता है। मनु उसके साथ दुराचरण करता है जिसके परिणामस्वरूप बहुत बडा संघर्ष निर्माण होता है। इडा का दूसरा रूप स्वावलंबिनी, करूणाशील, अपनी भूल स्वीकार कर सत् मार्ग का स्वीकार करनेवाली तथा मनु को परामर्श देनेवाली नारी के रूप में होता है। जहाँ श्रद्धा हृदयपक्ष को प्रधानता देती है और निराश मनु में आशा का संचार कर उन्हें कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर करती है, इसमें कहीं भी श्रद्धा का स्वार्थ नजर नहीं आता। वहाँ इडा का मनु को अपनाने में स्वार्थ नजर आता है। वह खंडहर बने सारस्वत नगर का पुनर्निमाण करना चाहती है इसलिए मनु का साथ देती है। इडा का व्यक्तित्व श्रद्धा की तुलना में थोडासा अलग भी है। अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने हेतु वह मनु के अत्याचार का प्रखर विरोध भी करती है। वह बुद्धि को प्रधान मानती है साथ ही उसमें राजनीतिक कुशलता भी है।

श्रद्धा के संपर्क में आने के बाद इडा का चरित्र और अधिक उज्वल बनता है। मनु को श्रद्धा से छिनकर श्रद्धा के जीवन को दुखी बनाने में वह अप्रत्यक्ष रूप से अपना हाथ है ऐसा मानकर उसका मन ग्लानि और पश्चाताप से भर आता है। वह अपनी भूल श्रद्धा के समक्ष कबुल भी करती है। कवि इडा के चरित्र के द्वारा यह बताना चाहते हैं कि बुद्धि के अतिरेक के कारण आज मनुष्य कुछ भी करने के लिए तत्पर है। इसलिए आज का मनुष्य भौतिक सुख सुविधाओं से संपन्न बनने की चाहत में आत्मशांति खोकर पथभ्रष्ट हो रहा है। सिर्फ बुद्धि के सहारे नहीं बल्कि श्रद्धा से युक्त होने पर ही मनुष्य सद्‌मार्ग पर अग्रसर हो सकता है और उसे वास्तविक सुख और शांति प्राप्त हो सकती है।

1.3.5 'कामायनी' की ऐतिहासिकता :

प्रत्येक महाकवि जीवन के शाश्वत मूल्यों की स्थापना करते समय रमणीयता की दृष्टि से ऐतिहासिक तथ्यों को आधार-रूप में ग्रहण करता है। कामायनी में भी युग-युग के मानव-पुरुषार्थ एवं सौंदर्य-चेतना की अभिव्यक्ति के लिए मनु, श्रद्धा एवं इड़ा की प्रागैतिहासिक काल की कथा को ग्रहण किया गया है, जिसका मूल आधार प्राचीन पौराणिक ग्रंथ हैं। साहित्यकार का दृष्टिकोण इतिहासकार की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। इतिहासकार की दृष्टि केवल ऐतिहासिक घटना-प्रसंगों संबंधी तथ्यों के प्रामाणिक संकलन तक ही सीमित होती है, किंतु साहित्यकार का उेश्य होता है ऐतिहासिक घटना-प्रसंगों के आधार पर जीवन के

शाश्वत मूल्यों का अनुसंधान एवं आख्यान। इसीलिए उसे ऐतिहासिक घटना-प्रसंगों के अज्ञात सूत्रों को अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा जोड़ने का उन्मुक्त अधिकार होता है, किंतु साहित्यकार बाह्य सत्य के साथ-साथ अनुभूति के सत्य को भी प्रामाणिक मानता है।

प्रसाद जी ने भी इतिहास को वर्तमान संकुचित अर्थ का ग्रहण न करते हुए विवेच्य महाकाव्य के 'आमुख' में स्पष्ट किया है कि सत्य केवल तथ्य-संकलन तक ही सीमित नहीं है। सत्य तो आत्मा की अनुभूति का नाम है। सूक्ष्म अनुभूति या भाव, चिरंतन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है, जिसके द्वारा युग-युग के पुरुषों और पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति होती रहती है। इस दृष्टि से प्रसाद जी ने 'कामायनी' की कथावस्तु को विविध सूत्रों के संयोजन में जिन पौराणिक ग्रंथों का आधार ग्रहण किया है, उन पौराणिक ग्रंथों को वे पूर्णतया काल्पनिक न मानते हुए, उनके पीछे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भी पुराणों में वर्णित घटनाएँ निराधार और मात्र दंत कथाएँ नहीं है, अपितु इनका वास्तविक ऐतिहासिक आधार भी है।

'कामायनी' की कथा महाप्रलय के चित्रण से प्रारंभ होती है। जल-प्लावन की इस घटना का उल्लेख प्राय: सभी देशों के साहित्य में किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिलता है। प्रसाद जी के मतानुसार जल-प्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी प्राचीन घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। वह इतिहास ही है। इस घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में मिलता है। देवगण के उच्छृंखल स्वभाव, निर्बाध आत्मतुष्टि में अंतिम अध्याय लगा और मानवीय भाव, अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नए युग की सूचना मिली।

'कामायनी' के प्रारंभ में जिस प्रलय का वर्णन है, उसे अग्निपुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण में 'ब्राह्म' नामक 'नैमित्तिक' प्रलय कहा गया है। इस जल-प्लावन के विषय में ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में केवल इतना ही मिलता है कि सृष्टि के विकास से पूर्व चारों दिशाओं में अंधकार ही अंधकार था और सर्वत्र जल व्याप्त था। जल-प्लावन की विस्तृत कथा शतपथ ब्राह्मण के प्रथम कांड के आठवें अध्याय में मिलती है। वहाँ यह कथा इस प्रकार है कि एक बार हाथ धोने के लिए जल लेते समय मनु के हाथ में एक छोटी-सी मछली आ गई, जिसकी उन्होंने रक्षा की। उनके सद्व्यवहार को देखकर मत्स्य ने कहा कि प्रलय के समय मैं आपकी रक्षा करूँगा। कालांतर में जब प्रलय हुई तो मनु मत्स्य के सींग में अपनी नौका बाँधकर उत्तरगिरि के शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ ओघ के जल का अवतरण होने पर वह जिस स्थान पर उतरे, उस स्थान को मनोरवसर्पण कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण में भी यह कथा क्षीण रूप में मिलती है, परंतु वहाँ इस बात का वर्णन है कि जल-प्लावन के समय मनु की रक्षा मत्स्य द्वारा नहीं होती, वरन् सामवेद की ऋचाएं स्वयं स्वर्णिम नौका बनकर मनु की रक्षा करती हैं।

प्रलय की यह कथा वेदों एवं ब्राह्मण-ग्रंथों के अतिरिक्त किंचित परिवर्तन के साथ महाभारत और प्राय: सभी पुराणों में मिलती है। भविष्य-पुराण में वर्णित मनु-मत्स्य की कथा बाइबिल की कथा से बहुत कुछ साम्य रखती है। जल-प्लावन की यह घटना वैज्ञानिक प्रमाणों से भी परिपुष्ट है। भूगर्भ-शास्त्रियों के अनुसार

सृष्टि परिवर्तनशील है। कभी-कभी भूकंप आदि कारणों से पृथ्वी तल के अनेक प्रदेश सागर में विलीन हो जाते हैं और सागर में छिपे हुए द्वीप बाहर निकल आते हैं।

'कामायनी' की दूसरी प्रसिद्ध घटना है मनु और श्रद्धा का मिलन एवं परिणय। 'प्रसादजी' मनु को ऐतिहासिक पात्र मानते हैं। उनके मतानुसार 'मनु भारतीय इतिहास के आदिपुरुष हैं, राम, कृष्ण और बुद्ध उन्हीं के वंशज हैं। पुराणों में चौदह मन्वन्तरों की कल्पना की गई है और इस सातवें मन्वन्तर के प्रवर्त्तक वैवस्वत मनु माने गए हैं। वैवस्वत मनु के जन्म की कथा ऋग्वेद में मिलती है जहाँ उन्हें सूर्य का पुत्र कहा गया है। मनु के साथ श्रद्धा का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है और वहाँ उसे कामगोत्रा की कन्या कहा गया है। यजुर्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण में भी उसका सूर्य की पुत्री के रूप में उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण में श्रद्धा को सत्य की पत्नी कहा गया है। पुराणों में कहीं-कहीं श्रद्धा को धर्म की पत्नी भी कहा गया है।

श्रीमद्भागवत पुराण में श्रद्धा का मनु की पत्नी के रूप में स्पष्ट उल्लेख है और इन्हीं वैवस्वत मनु से मानवीय सृष्टि का प्रारंभ माना गया है। श्रद्धा के साथ मिलन होने के बाद मनु उसी निर्जन प्रदेश में सृष्टि का आरंभ करते हैं। किंतु इसी समय असुर पुरोहित आकुलि और किलात आकर उन्हें मैत्रावरुण-यज्ञ करने की प्रेरणा देते हैं। उनसे प्रेरित होकर वैवस्वत मनु यज्ञ के हेतु श्रद्धा द्वारा पालित पशु की बलि देते हैं और सोमरस पान करते हैं। ये आकुलि और किलात भी ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इनका उल्लेख ऋग्वेद के दशमंडल में असुर पुरोहित के रूप में मिलता है। शनपथ ब्राह्मण में भी इन्हें असुर-पुरोहित कहा गया है, जिनकी प्रेरणा से मनु मैत्रा-वरुण यज्ञ करते हैं। यज्ञ-स्तूप से बाँधकर पशुओं के वध का वर्णन यजुर्वेद में मिलता है। वहाँ यज्ञ के साथ सुरा तथा सोम-पान का भी उल्लेख किया गया है।

'कामायनी' की तीसरी प्रमुख घटना है मनु-इड़ा का मिलन एवं सारस्वत प्रदेश का विकास। इड़ा का उल्लेख ऋग्वेद में कई स्थानों पर हुआ है। यह प्रजापति मनु की पथ-प्रदर्शिका तथा मनुष्यों का शासन करने वाली कही गई है। इड़ा संबंधी कई मंत्र ऋग्वेद में मिलते हैं, जहाँ सरस्वती एवं मही के साथ उसे भी देवी कहकर संबोधित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इसी इड़ा के सहयोग से मनु ने सृष्टि का विकास किया। जिस सारस्वत प्रदेश का विकास मनु ने किया, उसका स्पष्ट उल्लेख पुराणों में नहीं मिलता। 'प्रसादजी' ने प्राचीन सरस्वती नदी का स्थान पश्चिमी अफगानिस्तान के पास माना है। उनके मतानुसार कंधार का समीपवर्ती स्थान ही प्राचीन सारस्वत प्रदेश है। स्कंदपुराण में सरस्वती नदी के समीप स्थित द्वारावती नगरी का उल्लेख है। ब्रह्मपुराण में मेरु पर्वत के चारों ओर नौ हजार योजन तक विस्तृत इड़ावृत्त नामक प्रदेश का वर्णन मिलता है।

'कामायनी' के अंतिम भाग में शिव के तांडव नृत्य तथा श्रद्धा एवं मनु की कैलाश-यात्रा का वर्णन है, जहाँ पहुँचकर श्रद्धा भाव, कर्म और ज्ञान इन तीनों लोकों का समन्वय करती है। इससे उन्हें सामरस्य की अवस्था में पूर्णानंद की अनुभूति होती है। 'कामायनी' के इस अंतिम भाग का प्रणयन दार्शनिक सिद्धांतों के आधार पर हुआ है। ब्रह्मपुराण तथा लिंगपुराण में शिव द्वारा तांडव नृत्य किए जाने का वर्णन मिलता है। शिव-तांडव स्तोत्र में शिव के इस नृत्य का विस्तारपूर्वक चित्रण किया गया है।

मत्स्य वायु तथा मार्कण्डेय आदि पुराणों में कैलाश एवं मानसरोवर का भी वर्णन मिलता है। वहाँ इनकी स्थिति हिमालय के मध्य पृष्ठभाग में बताई गई है। शैवागमों में इसे आनंद-स्थल कहा गया है। इसी स्थान पर पहुँचकर मनु अखंड आनंद की प्राप्ति करते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में आनंद के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन मिलता है, जिनमें ब्रह्मानंद को सर्वोपरि कहा गया है। 'त्रिपुरा रहस्य' के अनुसार श्रद्धा की प्राप्ति से ही मनुष्य को इस आत्यंतिक सुख या आनंद का अनुभव हो जाता है। ''प्रत्यभिज्ञाहृदय'' के अनुसार मनुष्य तभी तक सांसारिक भोग-विलास में लीन रहता है, जब तक कि उसे संसार की वास्तविकता का ज्ञान नहीं होता। इस संसार के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होने पर वह संसारी जीव चिन्मयी पराभूमि पर पहुँच जाता है जहाँ उसे चिदानंद की प्राप्ति होती है।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1) जयशंकर प्रसाद .... वाद के कवि माने जाते हैं।

अ) छायावाद ब) हालावाद क) प्रतीकवाद ड) प्रगतिवाद

2) प्रसाद जी के महाकाव्य 'कामायनी' का नायक ....है।

अ) चंद्रगुप्त ब) अरूण क) पृथ्वीराज ड) मनु

3) प्रसाद जी के महाकाव्य 'कामायनी' की नायिका .... है।

अ) इडा ब) चिंता क) श्रद्धा ड) लज्जा

4) 'कामायनी' महाकाव्य में ....सर्ग हैं।

अ) चौदह ब) पंद्रह क) दस ड) बारह

5) 'कामायनी' महाकाव्य का आरंभ ....सर्ग से हुआ है।

अ) श्रद्धा ब) काम क) चिंता ड) आशा

6) जयशंकर प्रसाद जी को 'कामायनी' महाकाव्य के लिए .... पुरस्कार मिला है।

अ) पद्मभूषण ब) भारतरत्न क) पद्मश्री ड) मंगलाप्रसाद

7) 'कामायनी' के चिंता सर्ग में ....संस्कृति के विनाश का वर्णन है।

अ) असुर ब) नाग क) देव ड) यक्ष

8) जल-प्रलय के बाद मनु की नौका को ....ने हिमालय तक पहुँचाया।

अ) केवट ब) मछली क) मनुस ड) लहरों

9) देव जाति ने केवल ....का संग्रह किया था।

अ) योग ब) सुख क) तप ड) भोग

10) देव जाति का जीवन .... था।

अ) पराक्रमी ब) श्रमसाध्य क) विलासी ड) दानशील

11) 'कामायनी' का मूल उद्‌देश्य ....की प्राप्ति है।

अ) ईश्वर ब) चिदानंद क) काम ड) ज्ञान

12) 'कामायनी' के मनु ....के प्रतीक हैं।

अ) मोक्ष ब) बुद्धि क) सृष्टि ड) मन

13) 'कामायनी' की इडा ....का प्रतीक है।

अ) मन ब) श्रद्धा क) भावना ड) बुद्धि

14) 'कामायनी' के आनंदवाद का आधार ....है।

अ) प्रगतिवाद ब) प्रयोगवाद क) छायावाद ड) आत्मवाद

15) मनु अनुभव करते हैं कि अमरता के स्थान पर ....ही सत्य है।

अ) जीवन ब) मृत्यु क) स्वप्न ड) कर्म

16) श्रद्धा ने अपने कोमल शरीर पर नीले रोमवाले ....का चर्म धारण किया था।

अ) पंछियों ब) मेषों क) हाथियों ड) हिरनों

17) ....परिधान बीच, खिल रहा अधखुला अंग।

अ) पीत ब) श्वेत क) नील ड) हरित

18) कवि प्रसाद जी ने संध्याकालीन सुषमा से युक्त.........पर्वत को समाधि लीन के रूप में व्यक्त किया है।

अ) कैलाश ब) सतपुडा क) विंध्य ड) सरस्वती

19) ....के अभाव में सारी विषमताएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

अ) मधुरता ब) समरसता क) नीरसता ड) विलासिता

20) ....के लंबे वृक्षों से मनु की समता की गई है।

अ) आम्र ब) देवदारू क) शीशम ड) पीपल

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

चिंता सर्ग : उत्तुंग- ऊँची, प्रलय प्रवाह-भीषण जल प्रवाह, हिमगिरि- हिमालय पर्वत, तरल-बहनेवाला, सधन -ठोस, जड-निर्जीव, चेतन-सजीव, तत्त्व-मूल पदार्थ, शिलाचरण-पर्वत का निचला भाग, पदमान-पवन, वायु, देवदारू-पर्वतीय ऊँचा पेड, ऊर्जस्वित-उमडा हुआ, वीर्य-शक्ति, स्फीत-समृद्ध, कातर-व्याकुल, महावट-बरगद का विशाल वृक्ष, जलप्लावन-जल प्रलय, करूणा विलक-दर्दभरी मतवाला-उन्मत, विस्मृति-भूलना, जडता-बेहोशी, महामेध-महायज्ञ, नद-नदी, दिगंत-दिशाएँ

श्रद्धा सर्ग : मधुकरी-भ्रमरी, जलनिधि-सागर, अभिराम-सुंदर, इंद्रजाल-जादू, छविधाम-अपार सौंदर्य से युक्त, अश्रांत-लगातार, अवलंबित-लटके हुए, विधु-चंद्रमा, मधुराका-बसंत ऋतु की पूर्णिमा की चाँदणी रात, शैल-पर्वत, अंक-गोद, उद्भ्रांत-लक्ष्यहीन, स्तूप-टीला, झीना-महीन, टेक-आश्रय, उत्स-स्रोत, निरूपाय-बिखरने की विवशता।

इडा सर्ग : हविष्य-आहुति, कलना-चमक, जलाधि-सागर, विश्रांत-शांत, आक्रांत-पराजित, विश्रृंखल-अव्यवस्थित, आपदा-आपत्ति, जोत्स्ना-चाँदनी, मधुप-भ्रमर, तिरोहित-लुप्त होना, पुलकित-रोमांचित, कुलिश-बिजली, आवर्तन-चक्कर लगाना, निगूढ-छिपा हुआ, खल रेखा-अशुभ रेखा, मर्म वेदना- गहरी पीडा, मनीषा-प्रतिभा।

1.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1) अ. छायावाद	2) ड. मनु	3) क. श्रद्धा	4) ब. पंद्रह
5) क. चिंता	6) ड. मंगलाप्रसाद	7) क. देव	8) ड. लहरों
9) ब. सुख	10) क. विलासी	11) ब. चिदानंद	12) ड. मन
13) ड. बुद्धि	14) ड. आत्मवाद	15) ब. मृत्यु	16) ब. मेषों
17) क. नील	18) अ. कैलाश	19) ब. समरसता	20) ब. देवदारू

1.7 सारांश :

(1) जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं जिन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना, निबंध आदि के माध्यम से हिंदी को साहित्य कृति-रत्नों की देन दी है। उनकी रचनाओं से हिंदी साहित्य जगत् गौरवान्वित हुआ है। प्रसाद जी ने एक ऐसे साहित्य का निर्माण किया है जिसमें मानवता की स्थापना, करूणा का प्रचार, विश्वबंधुत्व की स्थापना, आत्म गौरव की शिक्षा, साहस का विकास दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अतीत की गौरवशाली परंपरा की वर्तमान जीवन के संदर्भ में व्याख्या की है।

(2) जयशंकर प्रसाद जी की कामायनी श्रेष्ठतम कृति है जिसमें आदि पुरूष मनु की जीवन गाथा है। यह महाकाव्य पंद्रह सर्गो में विभाजित है। यह मनु और श्रद्धा की कहानी है। मनु और श्रद्धा का मिलन, वियोग, पुनर्मिलन, पुनर्वियोग, मनु और इडा द्वारा सारस्वत नगर का निर्माण, जनविद्रोह, रहस्यभेद और अखंड आनंद की प्राप्ति आदि घटनाओं से जुडा है। विलास प्रधान देव संस्कृति के विनाश से लेकर पूर्ण आनंद प्राप्त मानव संस्कृति के संस्थापन की कहानी महाकाव्य में चित्रित हुई है। इस ऐतिहासिक कथानक के साथ मानव मन की विविध वृत्तियों का संयोजन कर मनोवैज्ञानिक रूपक प्रस्तुत किया है।

(3) कामायनी कवि जीवन की परमसिद्धि है जिसमें मानव आत्मा की चिरंतन पुकार को वाणी प्रदान की गई है। यह कृति महाकाव्य के विशिष्ट लक्षणों से युक्त है। कवि प्रसाद जी इस कृति के माध्यम से कहना चाहते हैं कि आज का भौतिकवादी मानव यांत्रिक सभ्यता के कारण श्रद्धा विहिन होकर पीडा में छटपटाता है। इसलिए श्रद्धायुक्त होकर मानव को अध्यात्मिकता के साथ समरस जीवन व्यतीत करने की सलाह दी है जिससे अखंड आनंद की प्राप्ति हो सके। कामायनी मानवता का महाकाव्य बनकर हमारे सामने प्रस्तुत होता है।

(4) जल-प्लावन की घटना और देव जाति के विनाश को लेकर चिंताग्रस्त हो मनु का हिमालय की ऊँची चोटीपर बैठकर विनाश की कारणमीमांसा करना चित्रित किया है। मनु अनुभव करते हैं कि अमरता के स्थान पर मृत्यु ही सत्य है और जीवन उसका एक छोटा सा अंश है। जीवन नश्वर है और उसपर गर्व नहीं करना चाहिए। धीरे-धीरे कालरात्रि समाप्त होती है और उसका स्थान सुनहरा प्रभात लेता है। विनाश के बाद नव निर्माण देखकर मनु के मन में आशा का संचार होता है।

(5) मनु और श्रद्धा की हिमालय के प्रांगण में भेंट होती है। श्रद्धा के अप्रतिम सौंदर्य से मनु अभिभूत हो जाते हैं। हताश और निराश मनु को श्रद्धा सात्वंना देकर कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर करती है। वह अपने आप को मनु के प्रति समर्पित कर मनु में जीवन के प्रति विश्वास जगाती है।

(6) ईर्ष्याजनित भाव से भरकर मनु श्रद्धा को छोडकर सारस्वत प्रदेश चले जाते हैं जहाँ उसकी भेंट वहां की रानी इडा से होती है। इडा सारस्वत नगर के नवनिर्माण की जिम्मेदारी मनु पर सौंपकर उसे कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर करती है। मनु का पुरूषी अहंकार जाग जाता है और वह इडा पर ही अपना अधिकार जमाना चाहता है जिसके परिणामस्वरूप उन्हें सारस्वतवासियों के रोष का सामना करना पडता है। श्रद्धा वहा पर भी उस संकट से मनु की रक्षा करती है।

(7) कामायनी विश्व साहित्य की गौरव प्रतिमा है। कामायनी ऐसा महाकाव्य है जिसमें उदात्त कथानक, उदात्त कार्य, उदात्त चरित्र, उदात्त शैली और उदात्त भाव आदि अनिवार्य तत्वों का समन्वय हुआ है। महाकाव्य संबंधी परंपरागत शास्त्रीय लक्षणों जैसे कथावस्तु, सर्ग, नायक, रस, प्रकृति वर्णन, प्रबंध संगठन, महान उद्‌देश्य आदि का विवेचन प्रस्तुत कृति में हुआ है। कामायनी में पंप्रह सर्ग है और प्रत्येक सर्ग का नामकरण मानवी वृत्तियों के आधारपर किया है।

(8) कामायनी में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय हुआ है। कामायनी की घटनाएँ काल्पनिक नहीं है बल्कि घटनाएँ और पात्र ऐतिहासिक हैं। कामायनी महाकाव्य की बुनियाद ऐतिहासिक है तो उसकी भूमि दार्शनिक है।

(9) कामायनी महाकाव्य के मनु, श्रद्धा और इडा तीन प्रमुख पात्र हैं। मनु का एक अहंकारी, वासनालिप्त चरित्र है। केवल श्रद्धा और इडा की प्रेरणा से वे अच्छे कार्य करते हैं। मनु आज के बुद्धिवादी मानव के प्रतीक है लेकिन महाकाव्य का नायकत्व प्राप्त करने के गुण उनमें नहीं हैं। श्रद्धा इस महाकाव्य की नायिका है जिसमें त्याग, स्नेह, क्षमा, सहनशीलता, उदारता और वात्सल्य गुण हैं। श्रद्धा आदर्श नारी है जो अपनी समर्पण वृत्ति से मनु को अखंड आनंद की प्राप्ति कराने में सहयोग देती है।

(10) कामायनी की भाषा लक्षणापूर्ण है। इसकी लाक्षणिकता में स्वाभाविकता एवं सुबोधता दिखाई देती है। भाषा में लक्षणा, विशेषण आदि का प्रयोग होने के कारण भाषा की व्यंजकता और सौंदर्य बढ गया है। इसके साथ ही रूपकातिशोक्ति, विरोधाभास, संदेह, अर्थान्तरन्यास, दृष्टांत एवं मानवीकरण आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है। लगभग सभी छंदों का प्रयोग किया है। शब्दयोजना, शब्दालंकार, अर्थालंकार, भाषा और गेयता का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अत्यंत सशक्तता के साथ प्रस्तुत कृति में कलापक्ष का उद्घाटन किया है।

1.8 स्वाध्याय :

अ) ससंदर्भ व्याख्या :

'चिंता' सर्ग –

1) ''हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरूष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह।''

संदर्भ : कवि जयशंकर प्रसाद जी का महाकाव्य 'कामायनी' के 'चिंता' सर्ग की यह आरंभिक काव्यपंक्तियाँ हैं। इनमें जल प्रलय के कारण छाए विनाश का वर्णन है। मनु इस जल प्रलय से बच जाते हैं लेकिन अकेलेपन की अभिशप्तता उन्हें विकल बना रही है।

स्पष्टीकरण : कामायनी महाकाव्य में आरंभ में ही कवि कहते हैं कि हिमालय पर्वत की ऊँची चोटी पर एक पुरूष अर्थात मानव जाति के आदि पुरूष मनु बैठे हैं। उनकी आँखें आँसूओं से भरी हुई हैं और इसी डबडबायी आँखों से चारों ओर देख रहे हैं। जहाँ उन्हें केवल जलप्रलय का विनाश ही विनाश नजर आ रहा है। सारी ओर पानी ही पानी दिखाई दे रहा है। देखते ही देखते आँखों के सामने सबकुछ तहस–नहस हो चुका है।

विशेष : चिंता सर्ग के आरंभिक पंक्तियों में कवि ने जलप्रलय का ऐसा चित्र उपस्थित किया है जहाँ पूरी सृष्टि जलमय हो गई है। सर्वत्र हिम और जल फैला हुआ है। इस विनाश को देखकर मनु चिंतित है। इसी चिंता नामक मनोवेग को कवि ने प्रस्तुत किया है।

2) ''अवयव की दृढ मांस-पेशियाँ, उर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार।''

संदर्भ : प्रस्तुत काव्यपंक्तियाँ 'कामायनी' महाकाव्य के 'चिंता' सर्ग से ली गई है। इसमें मनु की सदृढ शरीरयष्टी का वर्णन है।

स्पष्टीकरण : कवि मनु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि, मनु का कद लंबा था। अंग-प्रत्यंग की मांसपेशियाँ सदृढ थी। ब्रह्मचर्य व्रत का अवलंब करने के कारण शरीर के अंग-प्रत्यंगो से वीर्य का तेज फूट पड रहा था। उनके शरीर की शिराएँ उभरी हुई थी जिनमें शुद्ध रक्त का संचरण होता था।

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि प्रसाद जी ने मनु के सदृढ शरीर का वर्णन कर एक आर्य वीर का चित्र प्रस्तुत किया है। इन पंक्तियों में मनु की शारीरिक दृढता, ब्रह्मचर्य पालन का परिचय भी मिल जाता है।

3) चिंता करता हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनंत में बनती जाती रेखाएँ दुख की।

4) ओ चिंता की पहली रेखा, अरी विश्व-वन की व्याली,
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप-सी मतवाली।

5) भरी वासना-सरिता का वह कैसा था, मदमस्त प्रवाह,
प्रलय जलधि में संगत जिसका देख हृदय था उठा कराह।

6) देव-यजन के पशुयज्ञों की वह पूर्णाहुति की ज्वाला,
जल-निधि में बन जलती कैसी आज लहरियों की माला।

7) पंचभूत का भैरव मिश्रण, शंपाओं के शकल-निपात,
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रही ज्यों खोया प्रात।

8) चपलाएँ उस जलाधि-विश्व में स्वयं चमत्कृत होती थी,
ज्यों विराट बाडव-ज्वालाएँ खंड-खंड रोती थी।

9) मौन! नाश! विध्वंस! अँधेरा! शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते! तुझको! यहाँ कहाँ अब ठाँव!

10) बाष्प बना उडता जाता था वह भीषण जल-संघात,
सौरचक्र में आवर्तन था प्रलय निशा का होता प्रात!

'श्रद्धा' सर्ग :

1) कौन तुम? संसृति-जलनिधि तीर-तरंगों से फेंकी मणि एक,
   कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक?

संदर्भ : प्रस्तुत काव्यपंक्तियाँ 'कामायनी' महाकाव्य के 'श्रद्धा' सर्ग से ली गई है जिसमें मनु और श्रद्धा की प्रथम भेंट का चित्रण है।

स्पष्टीकरण : एक दिन मनु जब सृष्टि के प्रलय और देव जाति के विनाश को देखकर चिंतातुर हो जाते हैं तभी अचानक किसी ने आकर उनसे पूछा- समुद्र लहरें जिस प्रकार अपने थपेडों से मणियों को समुद्र के गर्भ से निकालकर किनारें पर फेंक देती है उसी प्रकार संसार सागर के थपेडों को खाकर इन शून्य एवं निर्जन प्रदेश में रहनेवाले व्यक्ति तुम कौन हो? जिस प्रकार मणि की कांति संपूर्ण वातावरण को अलौकिक करती है उसी प्रकार तुम भी मौन बैठे हुए इस निर्जन एवं एकांत प्रदेश को अपनी सुंदरता से प्रकाशित कर रहो हो।

विशेष : निर्जन वन में मनु को मौन बैठे हुए देखकर श्रद्धा के मन में जिज्ञासा एवं कौतुहल का भाव जागृत होता है।

2) नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
   खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघबन बीच गुलाबी रंग।

संदर्भ : प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ 'कामायनी' महाकाव्य के 'श्रद्धा' सर्ग से ली गई है जिसमें श्रद्धा की सौंदर्यपूर्ण छवि अंकित की गई है।

स्पष्टीकरण : प्रस्तुत पंक्तियों में श्रद्धा के अपूर्व सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं श्रद्धा अपने शरीर पर गांधार देश के नीले मेषों के चर्म को धारण किए हुए थी। इस नीले वस्त्रों में श्रद्धा का कोमल, अधखुला अंग ऐसा दिखाई दे रहा था जैसे नीले मेघों के बीच बिजली का गुलाबी रंग का फूल खिल रहा हो।

विशेष : श्रद्धा के अदभूत सौंदर्य का वर्णन किया गया है।

3) सुना यह मनु ने मधु गुंजार मधुकरी का-सा जब सानंद,
   किये मुख नीचा कमल समान प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद।

4) घिर रहे थे घुँघराले बाल अस अवलंबित मुख के पास,
   नील घनशावक- से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास।

5) कहा मनु ने ''नभ धरणी बीच बना जीवन रहस्य निरूपाय,
   एक उल्का-सा जलता भ्रांत, शून्य में फिरता हूँ असहाय।''

6) तपस्वी! क्यों इतने हो क्लांत? वेदना का यह कैसा वेग?
आह! तुम कितने अधिक हताश-बताओ यह कैसा उद्वेग!

7) प्रकृति के यौवन का श्रृंगार करेंगे कभी न बासी फूल,
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल।

8) और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान-
'शक्तिशाली हो, विजयी बना' विश्व में गूँज रहा जय गान।

9) समर्पण लो सेवा का सार, सजल संस्सृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग इसी पद तल में विगत विकार।

10) विधाता की कल्याणी सृष्टि, सफल हो इस भूतल पर पूर्ण,
पटें सागर, बिखरे ग्रह पुंज और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण।

इडा सर्ग :

1) किस गहन गुहा से अति अधीर, झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महा समीर,
ले साथ विकल परमाणु पुंज नभ, अनिल, अनल, क्षिति और नीर।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' महाकाव्य के 'इडा' सर्ग से ली है।

स्पष्टीकरण : मनु अपने भटकते हुए जीवन की तुलना झंझावात से करते हुए कहते हैं कि जैसे भयंकर आंधी का झोंका किसी गहरी गुफा से निकलकर अज्ञात स्थान की ओर तीव्रता से जाता दिखाई देता है उसी प्रकार आज मैं भी अपने हृदय में तीव्र वेदना एवं क्षोभ लिए हुए इधर उधर भटक रहा हूँ। जैसे आंधी अपने साथ धूल, मिी लिए रहती है उसी प्रकार मेरे जीवन को निर्मित करने वाले मूल तत्व पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु विक्षुब्ध होकर मुझे बेचैन कर रहे हैं।

विशेष : 1. जीवन को आंधी का रूपक देते हुए संपूर्ण छांद में सांगरूपक अलंकार की योजना की गई है।

2. मनु की अस्थिरता और विकलता इन पंक्तियों में व्यक्त होती है।

2. अपनी ज्वाला से कर प्रकाश, जब छोड चला आया सुंदर प्रारंभिक जीवन का निवास,
बन गुहा कुंज मरू अंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित ङकामायनीफ महाकाव्य के ङइडाफ सर्ग से ली है।

स्पष्टीकरण : मनु अपने विगत जीवन के बारे में सोचते हुए स्वगत कथन के रूप में कहते हैं कि मेरा विगत जीवन वास्तव में कितना अच्छा था। मैंने श्रद्धा जैसी सुंदर नारी का सहयोग पाकर अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के साधन जुटा लिए थे और एक सुखी सुंदर गृहस्थी का निर्माण किया था। कितना मुर्ख हूँ मैं जो उस सुंदर बसी बसाई गृहस्थी को छोडकर अब इधर उधर भटक रहा हूँ।

विशेष : 1. श्रद्धा से रहित होकर मन इसी तरह भटकता है जैसे मनु श्रद्धा को छोडकर भटक रहे हैं, यही दिखाना प्रसाद जी का उद्देश्य है।

2. छायावादी भाषा शिल्प और खडी बोली का प्रयोग हुआ है।

3. इस दुखमय जीवन का प्रकाश, नभ नील लता की डालों में उलझा अपने सुख से हताश,
कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे काँटे विखरे आस पास।

4. मनु! तुम श्रद्धा को गए भूल, उस पूर्ण आत्म विश्वासमयी को उडा दिया था समझ तूल,
तुमने तो समझा असत् विश्व जीवन धागे में रहा झूल

5. अनवरत उठी कितनी उमंग, चुंबित हों आँसू जलधर से अभिलाषाओं के शैल शृंग,
जीवन नद हाहाकार भरा हो उठती पीडा की तरंग।

6. तुम जरा मरण में चिर अशांत, जिसको अब तक समझे थे सब जीवन में परिवर्तन अनंत,
अमरत्व वही अब भूलेगा तुम व्याकुल उसको कहो अंत।

7. बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल, वह विश्व मुकुट सा उज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल,
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल।

8. इस विश्वकुहर में इंद्रजाल, जिसने रचकर फैलाया है ग्रह,
तरा, विद्युत, नखत माल, सागर की भीषणतम तरंग सा खेल रहा वह महाकाल।

9. शनि का सुदूर वह नील लोक, जिसकी छाया सा फैला है उपर नीचे यह गगन शोक,
जिसके भी परे सुना जाता है कोई प्रकाश का महा ओक।

10. हँस पडा गगन वह शून्य लोक, जिसके भीतर बसकर उजडे कितने ही जीवन मरण शोक,
कितने ह्रदयों के मधुर मिलन क्रंदन करते बन विरह कोक।

ब) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. 'कामायनी' के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. महाकाव्य के लक्षणों के आधारपर 'कामायनी' महाकाव्य की समीक्षा कीजिए।
3. 'कामायनी' महाकाव्य की ऐतिहासिकता विशद कीजिए।

4. कवि जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' के द्वारा कौनसा संदेश देना चाहते हैं।

5. 'कामायनी' महाकाव्य का कलापक्ष विशद कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. 'कामायनी' महाकाव्य का कथानक मराठी में लिखिए।
2. 'कामायनी' के आधारपर मराठी में निबंध लिखिए।
3. 'कामायनीफ के आधारपर मराठी महाकाव्य परंपरा का अध्ययन कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. 'कामायनी' -जयशंकर प्रसाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1976
2. हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- डॉ. व्दारिकाप्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, द्वि. सं. 1971
3. 'कामायनी' एक पुनर्विचार-गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण, 2015.
4. बीसवीं शती की श्रेष्ठतम काव्यकृति : कामायनी- गंगाप्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक साहित्य भवन, इलाहाबाद, सं. 1964
5. कामायनी लोचन - डॉ. उदयभानू सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2011

❑❑❑

इकाई 2

कुरूक्षेत्र – रामधारी सिंह 'दिनकर'

2.1 उद्‌देश्य ।

2.2 प्रस्तावना ।

2.3 विषय विवेचन ।

- 2.3.1 रामधारी सिंह 'दिनकर' जी का परिचय ।
- 2.3.2 'कुरूक्षेत्र' का परिचय ।
- 2.3.3 'कुरूक्षेत्र' का आशय ।
- 2.3.4 'कुरूक्षेत्र' के प्रमुख पात्र।
- 2.3.5 'कुरूक्षेत्र' में राष्ट्रीय भावना।

2.4 स्वंय अध्ययन के लिए प्रश्न ।

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ ।

2.6 स्वंय अध्ययन प्रश्नों के उत्तर ।

2.7 सारांश ।

2.8 स्वाध्याय ।

2.9 क्षेत्रीय कार्य ।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

2.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढने पर आप –

1) कविवर रामधारी सिंह दिनकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे ।
2) रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय चेतना और मानवता के उद्धार की भावना से परिचित होंगे ।
3) 'प्रबंधकाव्य' इस कविता प्रकार से परिचित होंगे ।
4) 'महाभारत' महाकाव्य की मूल संवेदना को समझ सकेंगे ।
5) युद्ध और शांति की समस्या 'कुरूक्षेत्र' के माध्यम से समझ सकेंगे

2.2 प्रस्तावना :

आधुनिक हिंदी कविता के छायावादोत्तर युग में दिनकर जी एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में उभरकर आए हैं । द्वितीय महायुद्ध के पश्चात राष्ट्रप्रेम का बोलबोला रहा । दिनकर जी वादमुक्त- रूप में राष्ट्रीय काव्यधारा के एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में नेतृत्व कर रहे थे। उत्तर छायावाद काल के प्रमुख कवि दिनकर और बच्चन हैं । इन दोनों कवियों में छायावाद की अतिकल्पनाशीलता, वायवीयता, सुकुमारता तथा अति पवित्रता के खिलाफ विद्रोह मिलता है । दिनकर जी ने समय-समय पर राष्ट्र के भावों को मुखरित किया, राष्ट्रभाषा को समृद्ध बनाया और राष्ट्र की समस्याओं को चित्रित ही नहीं किया अपितु उसका किसी न किसी रूप में समाधान प्रस्तुत किया है। इन्होंने राष्ट्र के मानस को वाणी प्रदान की और युग चिंतन को मुखरित किया । दिनकर जी की प्रशंसा करते हुए श्री. रामवृक्ष बेनीपुरी कहते हैं कि'' हमारे क्रांति-युग का संपूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में, इस समय 'दिनकर'कर रहा है । क्रांतिकारी को जिन- जिन हृदय-मंथनों से गुजरना होता है ।'' दिनकर की कविता उसकी सच्ची तस्वीर है। दिनकर की कविता का संबंध कल्पनालोक से नहीं वरन सामाजिक वास्तविकता से है । छायावाद के व्यक्तिवाद की जगह दिनकर जी में लोकानुभूति का तत्व है । कुरूक्षेत्र इस प्रबंधकाव्य में दिनकर जी ने महाभारत की कथा का आधार लेकर उसे वर्तमान युग के दृष्टिकोण से देखा है और अपनी मौलिक सद्भावना से भीष्म और युधिष्ठिर के वार्तालाप द्वारा आजकाल की अशांति और युद्ध की समस्या का हल ढूँढ निकालने की सफल कोशिश की है । 'कुरूक्षेत्र' को खंडकाव्य, खंड प्रबंध, एकार्थ काव्य या महाकाव्य इसमें से क्या माने इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. शंभुनाथ पाण्डे 'कुरूक्षेत्र' को प्रगतिवादी विचार धारा का प्रतिनिधि महाकाव्य मानते हैं। डॉ. प्रतिपाल सिंह ने इसे महाकाव्य न मानकर उच्चकोटि का खण्डकाव्य मानते हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसे एकार्थ काव्य कहा है। डॉ. नगेंद्र इसे लम्बी कविता माना हैं ।

2.3 विषय – विवेचन :

2.3.1 रामधारी सिंह 'दिनकर' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व परिचय

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 23 सिंतबर 1908 को मुंगरे जिले (बिहार)के सिमरिया ग्राम में हुआ

इनके पिता का नाम रविसिंह और माताजी का नाम मनरूप देवी था । दिनकर अपने माता – पिता की मंझली संतान थे । जब ये दोन वर्ष के थे, तभी इनके पिता का देहांत हो गया । दिनकर का लालन-पालन बड़े भाई और माता की छत्र-छाया में हुआ । माताजी अशिक्षित एवं सामान्य परिवार की महिला होते हुए भी बडी नेकदिल एवं परिश्रमी थी । दिनकर साधारण ग्राम के एक साधारण कृषक परिवार के लडके थे । इनकी शिक्षा का आरंभ अपने गांव से ही हुआ । एक संस्कृत पंडित के पास हिंदी-संस्कृत में अपनी शिक्षा आरंभ करके दिनकर जी प्राथमिक परीक्षा अपने गांव के स्कूल में ही उत्तीर्ण की । अगली शिक्षा के लिए निकटवर्ती बारो नामक गांव में राष्ट्रीय मिडल स्कूल में प्रवेश लिया चार वर्षों में यही से उन्होंने मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की । सन 1929 में मोकामा घाट स्थित रेल्वे हाईस्कूल (मैट्रीक) की परीक्षा उत्तीर्ण की और हिंदी में सर्वाधिक अंक प्राप्त करके 'भूदेव स्वर्ण पदक' भी प्राप्त किया । 1932 में वे पटना आए और

पटना- विश्वविद्यालय से बी. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। सन 1933 में उन्होंने एक हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक की नौकर केवल पचपन रूपये मासिक वेतन पर स्वीकार कर ली। सन 1934 में दिनकर जी बिहार सरकार के अधीन सब-रजिस्ट्रार हुए। सन 1943 में इनका तबादला युद्ध-प्रचार विभाग में हुआ जहाँ सन 1947 में ये उपनिदेशक बन गए। सन 1950 में दिनकर जी पदव्युतर मुजफ्फरपुर में हिंदी विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। सन 1952 में नौकरी से त्याग पत्र देकर ये राज्यसभा के सदस्य हो गए। सन 1956 में ये राष्ट्रभाषा आयोग के सदस्य नियुक्त हुए। सन 1959 में राष्ट्रीय सरकार ने इन्हें 'पद्म-भूषण' उपाधि से सम्मानित किया है । सन 1964 में दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के हिंदी उपकुलपति बने। सन 1965 में केंद्रीय गृह मंत्रालय में हिंदी सलाहकार नियुक्त हुए । सन 1972 में उन्हें 'उर्वशी' नामक रचना पर भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से सर्वोच पुरस्कार प्रदान किया गया।

दिनकर जी का विवाह 19 वर्ष की अल्पावस्था में हुआ था । उनके चार संतान थी दो पुत्र रामसेवक सिंह और केदारनाथ सिंह तथा दो पुत्रियाँ विनता और विभा । कवि का वास्तविक और पूरा नाम था रामधारी सिंह । बेगुसराय से 'प्रकाश' नामक पत्रिका निकाला करती थी । रामधारी सिंह इस पत्रिका में बराबर कविताऐं प्रकाशित करवा रहे थे । उनके मन में विचार आया कि प्रकाश का स्रोत है दिनकर तो फिर क्यों न दिनकर उपनाम धारण किया जाए उनके पिता का नाम रवि सिंह था । इस प्रकार रवि का पुत्र दिनकर और प्रकाश का भी स्रोत दिनकर । उन्होंने 'दिनकर' कवि उपनाम रख लिया ।

बचपन से ही दिनकर जी का जीवन अत्यंत संघर्षमय रहा है । उनका विद्यार्थी जीवन एक साधारण परिस्थिति में बिता है । डॉ. सावित्री सिन्हा उनके बारे में कहती है, ''अपने छात्र -जीवन में वे बहुत ही सीधे -सादे ढंग से रहते थे । मोटी धोती, मोटी मारकीन का कुरता, कंधे पर चादर और कभी कभी देहाती कट का मामूली जूता, यही उनकी पोशाक थी । नौकरी कर लेने के बाद उन्होंने कोट पहनना प्रारंभ किया था । पटना कॉलेज में प्रवेश लेने के समय पहली बार उन्होंने पम्प शू खरीदा । बी. ए. पास करने तक उन्होंने अपने केश -विन्यास की ओर ध्यान नहीं दिया । बाल काफी छोटे और खुरदरे रहते थे, जिनके लिए वे तेल और कंघी की जरूरत नहीं समझते थे । ''

मैट्रिक में हिंदी में दिनकर जी ने विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान किया था । परंतु आगे की पढाई में हिंदी विषय नहीं ले सके क्यों कि अंग्रेजी प्रिंसीपल लोंगो का हिंदी विरोध था और हिंदी भाषा के साहित्य को दरिद्र मानते थे । उस समय की स्थिति के बारे में दिनकर जी ने लिखा हैं, ''आज की स्थिति को देखते हुए मुझे अपने छात्र-जीवन की बहुत सी अच्छी बाते याद आती हैं । उस समय जातिवाद का नामोनिशान तक न था, न कॉलेज की परिषदों के चुनाव में कहीं कोई राजनीति थी । विभागाध्यक्षों के प्रिय पात्र उस समय परीक्षाओं में सबसे अधिक अंक नहीं पाते थे, न कोई विभागाध्यक्ष यह चिंतित होता था कि जो लडका फर्स्ट आ रहा है, वह मेरी जात का नहीं है । परीक्षा देकर हम लोग घर को चले जाते थे और समय समीप आने पर 'सर्चलाइट' की राह देखते रहते थे कि परिणाम कब घोषित होता है । परीक्षा-भवन में पूरी शांति रहती थी और नाजायज तरीकों के उपयोग के दृष्टांत नहीं के बराबर होते थे । अंक पैरवी से भी बढवाये जा सकते हैं, यह बात हमसें से कोई नहीं जानता था ।''

साहित्य-जगत् में उनका प्रवेश काव्य -विधा से ही माना जाता है। इनकी प्रथम कविता सन 1924-25 में जबलापुर के 'छात्र सहोदर' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हुई । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार उनका सन 1930 में 'प्रणभंग' नामक खंड काव्य प्रकाशित हुआ । दिनकर जी को कवि-रूप में प्रतिष्ठित किया 'रेणुका' ने जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1935 में हुआ । दिनकर जी की लगभग तीन दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं। उनका विवरण निम्न प्रकार से है ।

1. गद्य-साहित्य

क) निबंध आलोचना :

अर्धनारिश्वर, मिट्टी की ओर, रेती के फूल, हमारी सांस्कृतिक एकता, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, काव्य की भूमिका, पंत प्रसाद और निराला, धर्म नैतिकता और विज्ञान, कविता की खोज ।

ख) यात्रा संस्मरण : देश -विदेश, लोकदेव नेहरू, संस्मरण और बह्म जातियाँ, मेरी यात्राएँ ।

ग) इतिहास-संस्कृति- संस्कृति के चार अध्याय ।

घ) गद्य-काव्य -उजली आग ।

च) बाल सहित्य- चित्तौर का खाका, भारत की सांस्कृतिक कहानी ।

2. काव्य-कृतियाँ-

1. प्रणभंग (मुक्तक काव्य) सन 1929
2. रेणुका (काव्य-संग्रह) सन 1935
3. हुंकार (काव्य-संग्रह) सन 1939
4. रसवंती (काव्यसंग्रह) सन 1940
5. द्वंद्वगीत (रूबाइयाँ) सन 1941
6. कुरूक्षेत्र (महाकाव्य) सन 1946
7. सामधेनी (काव्यसंग्रह) सन 1946
8. बापू (गांधी काव्य) सन 1947
9. इतिहास के ऑसू (काव्य संग्रह) सन 1951
10. धूप और धुआँ (काव्य संग्रह) सन 1951
11. रश्मिरथी (खडकाव्य) सन 1952
12. दिल्ली (काव्यसंग्रह) सन 1954
13. नीम के पत्ते (काव्यसंग्रह) सन 1954
14. नील कुसुम (काव्यसंग्रह) सन 1955

15. चक्रवाल (काव्यसंग्रह) सन 1956
16. सीपी और शंख (अनूदित संग्रह) सन 1957
17. नये सुभाषित (संकलन) सन 1957
18. कविश्री (कविता संग्रह) सन 1957
19. उर्वशी (गीति नाट्य) सन 1961
20. परशुराम की प्रतीक्षा (काव्यसंग्रह) सन 1962
21. कोयला और कवित्व (काव्यसंग्रह) सन 1964
22. मृत्ति तिलक (काव्यसंग्रह) सन 1964
23. आत्मा की ऑखे (अनुदित संग्रह) सन 1964
24. हारे को हरिनाम (काव्यसंग्रह) सन 1970

3. **पुरस्कार –**

1. साहित्य अकादमी पुरस्कार – 1959
2. पद्मभूषण – 1959
3. भारतीय ज्ञानपीठ – 1972

कई विद्वानों ने दिनकर जी की काव्य-चेतना को अनेक वर्गों में बाटा है, जैसे स्वतंत्रता – पूर्व व स्वातंत्र्योत्तर या समष्टिपरक या व्यक्तिपरक आदि । परंतु दिनकर जी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, यथार्थवादी कला चेतना, निवृत्तिमूलक वैयक्तिक चेतना, कल्पना प्रधान सौंदर्य चेतना, श्रृंगार और नारी भावना, समस्या प्रधान, हास्य-व्यंग प्रधान, मानवतावादी चेतना आदि का प्रमुखत चित्रण हुआ है।

दिनकर जी ने लगभग चालीस वर्षों तक हिंदी साहित्य के भंडार को भरने का अथक परिश्रम करके योगदान दिया है । कविता उनक प्रिय विषय था किंतु गद्य की भी उनकी आधा दर्जन के लगभग कृतियाँ हैं। अंतिम समय उनकी इच्छा थी कि भारत के पुण्य तीर्थस्नान तिरूपती के श्री वेंकटेश्वर के दर्शन करूँ और इसीलिए वे मद्रास गए । दर्शन किए, इच्छा पूर्ण हुई । संध्या के समय तक कविता पाठ किया । रात को छाती में मामूली-सा हल्का दर्द महसूस किया । उपचार भी करा गया लेकिन 24 अप्रैल 1974 रात्रिके 12 बजे वे महानिद्रा में सो गए ।

2.3.2 'कुरूक्षेत्र' का परिचय :

'कुरूक्षेत्र' दिनकर जी की द्विवितीय महायुद्धोत्तर काल में सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है। 'कुरूक्षेत्र' सन 1942 की क्रांति के बाद कुचले हुए भारतीय मन की उमड़न-घुमड़न की रचना है । दिनकर जी ने इसका लेखन सन 1941 से आरंभ हुआ था और सन 1946 में पूरा हो गया । कुरूक्षेत्र उपनिवेशवाद के तहत दिनकर जी के आत्मसंघर्ष की काव्यात्मक परिणति है । कुरूक्षेत्र में कवि की लोकचेतना राष्ट्रीयता तथा

मानवतावादी धरातल से आगे बढती हुई एक ऐसी समस्या पर केंद्रित हो गई है जो विश्व की एक शाश्वत तथा सबसे जीवंत समस्या है । इस काव्य की रचना की प्रेरणा दिनकर जी को 'कंलिंग विजय' से मिली । इसका कथानक व्यास रचित महाभारत से लिया गया है । युद्धोपरांत युधिष्ठिर जब रक्तपात देखता है, रोती-बिलखती विधवाओं और अनाथ बच्चों को देखता है तो उनके मन में बार-बार प्रश्न उठता है कि क्या कुरूक्षेत्र का यह युद्ध वास्तव मे ंधर्म सम्मत था ? यदि धर्म सम्मत था तो यह अपराध भावना, पश्चाताप और ग्लानि की भावना क्यों उत्पन्न हो रही है? युद्ध के पहले अर्जुन, अपनी समस्या कृष्ण के समक्ष रखते हैं, युधिष्ठिर भी अपनी समस्या भीष्म के समक्ष रखते हैं । युधिष्ठिर की समस्या के समाधान हेतु भीष्म जो धर्माधर्म की मीमांसा उपस्थित करते हैं । वस्तुतः वही वह धार्मिक चेतना है जिसके निरूपण का प्रयास दिनकर जी ने अपनी समस्त कृति में किया है ।

2.3.3 'कुरूक्षेत्र' का आशय :

'कुरूक्षेत्र' की कथावस्तु की बुनियाद महाभारत पर आधारित है । महाभारत की कथा भारतीय जनता में घुलमिल गई है । महाभारत के अंशिक वर्णन या संकेत मात्र से ही उसका ज्ञान पाठक को हो जाता है । कवि रामधारी सिंह 'दिनकर जी' ने कुरूक्षेत्र काव्य के लिए शाश्वत समस्या युद्ध को चुना है । युद्ध की समस्या का विस्तृत विश्लेषण और उसकी भयंकरता का मार्मिक प्रदर्शन ही कुरूक्षेत्र का उद्देश्य है । कवि केवल महाभारत के युग की युद्ध की समस्या पर ही विचार नहीं करता, वरन् युद्ध मात्र की समस्या पर भी विचार करता है । आज के मानव ने इतनी उन्नति कर ली किंतु शांति की तलाश अभी तक जारी है । संघर्ष और विपत्तियाँ बढती ही जा रही है । जब तक मनुष्य में परस्पर प्रेम और विश्वास नहीं होगा, तब तक उसी समृद्धि के बावजूद भी उसे सच्ची शांति प्राप्त नहीं हो सकेगी । शांति की कामना करनेवाला मानव युद्ध से घृणा करता है । इस स्थायी तत्त्व को 'कुरूक्षेत्र' के माध्यम से कवि ने प्राचीन संदर्भ लेकर आधुनिक विचारों से स्पष्ट किया है । आधुनिक समाज के कल्याण की भावना कवि ने 'कुरूक्षेत्र' के माध्यम से रखी है ।

'कुरूक्षेत्र' में कवि ने युद्ध की समस्या उठाई है । यह आधुनिक युग की भी सबसे बड़ी समस्या है । इसे सुलझाने के लिए संसार के असंख्य योग्य व्यक्ति प्रयत्नशील है । सभी चाहते हैं कि युद्ध न हो । युधिष्ठिर कुरूक्षेत्र के युद्ध के उपरांत दुःखी एवं व्याकुल दिखाई देते हैं, तब हमें युद्ध की भीषणता का यथार्थ ज्ञान होता है । इस प्रकार कवि ने वर्तमान युग की युद्ध की भीषण समस्या को सुलझाने के लिए ही भीष्म तथा युधिष्ठिर के संवाद द्वारा युद्ध को रोकने के उपाय भीष्मद्वारा बताए हैं ।

युद्ध की शाश्वत समस्या इस रचना की प्रेरणा है । दुनिया के भिन्न भिन्न कोनों में युद्ध की ज्वाला भड़कती ही रहती है । यह सर्वव्याप्त समस्या है । युद्ध की समस्या और उसका समाधान, वैचारिक संघर्ष यही इस काव्य की प्रेरणा है । अन्यान्य कारणों से युद्ध हुए है । प्रथम, द्वितीय महायुद्ध के परिणामों को देखकर युद्धसमाप्ति के विचार, उपाय साहित्य में बताए गए हैं । कवि ने प्रारंभ में ही बताया है, भगवान व्यास के अनुकरण में प्रस्तुत रचना नहीं हुई है । माध्यम महाभारत का चुना है और आधुनिक समस्या का ही इसमें हल हुआ है । भीष्म और युधिष्ठिर ये महाभारतकालीन पात्र न रखकर काव्य लिखा जाता तो यह

वैचारिक प्रबंध काव्य बन जाता लेकिन उन्हें प्रबंध-काव्य लिखना था इसलिए कवि ने यह सूत्र लिया है । संहार के परिणाम के रूप में जो जीवित थे उनके जीने का कोई मन्तव्य नहीं था, जो जीते हुए भी मर चुके थे । रणांगण के बीभत्स दृश्य देखकर युधिष्ठिर के मन में निराशा, ग्लानि, निर्वेद भावना उत्पन्न हुई तब इस 'कुरूक्षेत्र' काव्य का निर्माण हुआ ।

प्रथम सर्ग :

'कुरूक्षेत्र' के युद्ध समाप्ती के बाद पांडव विजय के आनंद के नशे में चूर हैं । युद् समाप्ती के बाद बाकी सभी लोग युद्ध के बीभत्स दृश्यों को लगभग भूल चुके हैं । उन्हें पुत्रहीन माताओं, विधवाओं की दर्दभरी पुकार नहीं सुनाई दे रही हैं । विजय के नशे में सभी चूर है परंतु युधिष्ठिर अकेले ऐसे है जो ये वातावरण देखकर पश्चात्ताप कर रहे हैं । विजय की पीछे का ध्वंस कितना दर्दनाक है। यह देखकर उद्विग्न मन:स्थिति में युद्ध की समस्या की भीषणता तथा उसका उत्तर ढूँढने की कोशिश करता है । जब इसका उत्तर नहीं मिलता तब धर्मराज भीष्म के पास पहुँच जाते हैं जो मरणप्राय सूर्य की राह देख रहें हैं । वे शरपंजर पर पड़े हुए अपनी ध्यानधारणा के मनोबल से उत्तरायण में जानेवाले सूर्य की राह देखते हुए मृत्यु से दूर रहें हैं। निरपेक्ष रूप से कौरव पांडवों के युद्ध को देखनेवाले वे एक ही व्यक्ति बचे हुए है ।

भीष्म पितामह के सामने जाकर युधिष्ठिर अपनी व्यथा प्रगट करते है, इतना संहार हो गया, जिस कर्मफल की इच्छा से युद्ध हुआ, उस फल की इच्छा उसके मन से पूर्णत: नष्ट होती है । निर्दयी घटना से कर्मफल साध्य नहीं होता । धर्मराज इस संहार को अपने आपको कारण मानते हैं । मैं ही इस युद्ध के लिए कारण हूँ, ऐसी उनकी धारणा होती है ।

धर्मराज अन्य पांडवों से भिन्न है, जो वीर, कलाप्रवीण, श्रेष्ठ खिलाडी होते हुए भी अत्यंत विचारी है । चिंतक हैं । संहार के बाद उसका यह विचार मंथन, निर्वेद की भावना इसीलिए अर्थ रखती हैं । भीष्म से वे पूछते हैं कि क्या लोग मुझे ही इस नरसंहार का कारण समझ लेंगे ? मानसिक द्ंवद्ंव के कारण उनकी आत्मग्लानी और भी बढती है । भीष्म कुछ क्षण मौन हो जाते हैं । वे समझ जाते हैं कि इस वेदना के पीछे युधिष्ठिर की मानवता की भावना छिपी हुई है । युधिष्ठिर (प्रथम सर्ग के अंत में) करूणासिक्त स्थिति में अर्जुन से कहते हैं कि, ''मैं पितामह के पास जा रहा हूँ ।''

द्वितीय सर्ग :

शरशय्या पर पड़े भीष्म पितामह मृत्यु को रोक कर रखते हैं । युधिष्ठिर उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करते हैं और शोकमग्न स्थिति में विलाप करते हुए अपनी वेदना प्रगट करते हुए कहते है,''महाभारत निष्फल हो गया । सुयोधन वीर-गति को प्राप्त हो गया । युद्ध के बीभत्स दृश्य बार-बार मेरे सामने आते हैं । उत्तरा की दर्दभरी पुकार, खून की नदियाँ, लाशें ये सब सुनकर - देखकर मैं सोचता हूँ कि यहाँ किसकी जीत हुई है? यदि मैं महाभारत का यह फल जानता तो मैं शरीर से नहीं, तप और संयम से सुयोधन पर विजय प्राप्त करता और एक नए इतिहास का निर्माण करता । सुयोधन नहीं सुधरता तो भीख माँगकर अपना गुजारा कर लेता किंतु उस समय मानो मेरी मति भ्रष्ट हो गयी थी ।''

युधिष्ठिर आगे कहते हैं कि कृष्ण ने भी उन्हें समझाया है कि इस युद्ध में कोई पाप नहीं है । किंतु जब-जब मैं पुत्रविहीन माता का, या पतिहीन विधवा का रूदन सुनता हूँ तो मेरा शरीर जलने लगता है । सोते सोते अभिमन्यु का खून मुझे याद आता है और अपना दुःख छिपाने के लिए वन में चला जाऊँ ऐसा मुझे लगने लगता है ।

भीष्म धर्मराज को समझाते हुए शांत भाव से कहते हैं, ''क्या तुमने तूफान देखा है ? तूफान के आने से पूरा वनवैभव तहस-तहस हो जाता है । किंतु जिस वृक्ष की जड़ें गहरी है वह उस तूफान से नहीं डरता । अपने गतवैभव के उजड़ने से वृक्ष पूछता है कि प्रकृति क्यों तूफान भेजती है? किंतु वृक्ष नहीं जानता कि प्रकृति भी विवश है । गरमी के बाद तूफान का आना अनिवार्य है । इसी प्रकार मानव संसार में भी मनुष्यों की हिंसा की आग मिलकर युद्ध के रूप में प्रकट हो जाती है । युद्ध का मूल -घृणा और स्वार्थ है । दाहक इर्ष्या और द्वेष क्षोभ से युद्ध का ज्वालामुखी फूटता है ।''

भीष्म आगे कहते है कि सभी युद्ध के परिणाम जानते हैं। तुम शोक मत करो और ये युद्ध सिर्फ पाँच पांडवों के सुख के लिए ही हुआ है यह भी मत समझो । सब लोग अपने स्वार्थ और आवेश से प्रेरित होकर युद्ध में हिस्सा लेते हैं । कर्त्ता की भावना महत्त्वपूर्ण है, न कोई भी काम अपने आपमें न पाप है न पुण्य । युद्ध निंद्य है लेकिन जिसने युद्ध को निंद्य कहा है और शांति को माना है यदि उसपर कोई शस्त्र उठाये तो वह भी शस्त्र का उत्तर शस्त्र से ही देता है । यही धर्म है । शक्तिशाली व्यक्ति क्यों भीख माँगे ? जब तक स्वार्थ है तब तक युद्ध अनिवार्य है । उसके लिए दुःखी होना उचित नहीं । द्रौपदी के चीरहरण पर भीम का क्रोध पुण्यमय ही था । सारी सभा पर इस घटना का प्रभाव स्वाभाविक ही हुआ है । जहाँ सत्य का अपमान होता हैं वहाँ अन्याय की एक भूमिका आती है । राम ने भी रावण का वध धर्म रक्षा के लिए ही किया था । पापियों से रक्षा करना अपना धर्म है इसलिए भीष्म युधिष्ठिर को कायरों जैसी बातें करने से रोकते हैं ।

इस सर्ग में भीष्म जी का चरित्र उजागर होता है । वे संतुलित मन और मस्तिष्क के व्यक्ति है । संयमी तथा विकारहीन हैं । यहाँ उनके मन की दृढता, संतुलन, संयम दिखाई देता है । विचार और उपचार में भीष्म स्पष्ट वक्ता हैं । कवि ने आधुनिक विचारों को, साम्यवादी भीष्म के द्वारा बताया हैं । इस सर्ग के अंत में भीष्म कहते हैं कि समाज-कल्याण को भावना को लेकर किये गए युद्ध को भी धर्म माना गया है ।

तृतीय सर्ग :

धर्मराज को समझाते हुए भीष्म आगे कहते हैं, युद्ध को तुम निंद्य कहते हो, लेकिन जिसने युद्ध को निंद्य कहा है और शांति को माना है यदि उसपर कोई शस्त्र उठाए तो वह भी शस्त्र का उत्तर शस्त्र से ही देता है । राष्ट्र राज्य के बारे में ऐसी धूर्तता भी चाहिए । जिनके हाथों में सत्ता होती है, वे शांति की दुहाई देते हैं । परंतु खड़ग के अधिकार पर ही जब शासन चलने लगता है वहाँ अन्याय की एक भूमिका आती है । धिक्कार, सहनशीलता की मर्यादा जब टूट जाती है तब शस्त्र का उत्तर शस्त्र से ही दिया जाता है । अन्याय के विरूद्ध, न्यायोचित अधिकार की माँग के लिए क्रोध की अग्नि धधकती रहती है और उसे एक चिनगारी काफी होती है । क्रांति का ये विस्फोट दबे हुए आवेश के साथ होता है ।

आमतौर पर आदमी शांतिप्रिय होता है । संघर्ष नहीं चाहता । इसलिए प्रयत्न भी करता है इस प्रयत्न में स्वार्थ बाधा ड़ालता है । अपने अधिकार के लिए लड़ना पाप नहीं है । मनोबल की बात तुम गलत तरीके से कर रहें हो । सुयोधन तुम्हे हमेशा और झुकाता ही रहा । विनम्रता से यह हानि हुई है । सत्ताधारियों के स्वार्थ की विषैली साँसें युद्ध में लपेट लेती है । शक्ति के बिना सामर्थ्य कुछ नहीं है इसलिए राम ने जब बाण चलाया तभी तो सागर ने उन्हें रास्ता दिया था । क्षमा के आवरण में अपनी कायरता छिपाना तथा आत्मविश्वास को खोना नहीं चाहिए । युद्ध का उन्माद संक्रामक है । युद्ध के मन का नशा दूसरे के मन में वही भाव निर्माण होता है ।

शांति के विध्वंसक वे लोग है जिनके हाथों में सत्ता होती है । शांति की प्रस्थापना का मार्ग है शांति । शांति न्याय के मार्ग से ही प्रस्थापित हो सकती है । अन्याय और अधर्म का प्रतिकार करना मनुष्य का धर्म है । युद्ध के मार्ग में संघर्ष एक मात्र उपाय है । शांतिपूर्ण जीवन में वह तर्क-वितर्क कर सकता है । युद्ध को उतना ही महत्त्व देना चाहिए जो एक साधन मात्र है । शांति के लिए यही साधन है । शांति के लिए हिंसा क्षम्य है । मनुष्य का स्वाभिमान जागृत रहना चाहिए । जिससे वे आत्म-बल को सँजोकर बैरियों से बदला ले सकें । क्षमा की बात वही कर सकता है । वासना पूर्ति के लिए युद्ध करना पाप है किंतु अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना, युद्ध करना पाप नहीं है । सारा संसार हिंसा और छल से भरा है ऐसा भीष्म कहते हैं और वे समझाते हैं कि शांति के लिए हिंसा क्षम्य है । सारा संसार प्रेम के बंधन में जुड़कर एक दूसरे के साथ भाईचारे से कैसे रह पाएगा यह बात मैं भी सोचता हूँ । तुम्हारे जैसे शांति की चाह करनेवाले अकेले कहाँ तक मिलेंगे क्योंकि सुयोधन जैसे तो बहुत है फिर शांति कैसे दृढ हो सकती है । प्रेम भय से नहीं, मन की आंतरिक प्रेरणा है ।

कुरूक्षेत्र में अर्जुन की कृति अशांति का नाश करनेवाली थी । परंतु उसने अशांति का सृजन करनेवाले तथा दूसरों के अधिकारों को छीनने वाली प्रवृत्ति का तथा असत्य का प्रचार करनेवालों का ही नाश किया है। यहाँ कवि ने त्याग और क्षमा के साथ पराक्रम भी अनिवार्य है यह सिद्ध किया है।

चतुर्थ सर्ग :

चतुर्थ सर्ग के प्रारंभ में कवि भीष्म जी की स्तुति करते है कि जिन्होंने ब्रह्मचर्य का कठोर पालन किया धर्म के शक्तिशाली आधार तथा प्रेम के कारण अपने प्राणों का त्याग करनेवाले ऐसे भीष्म है । शरशय्या पर लेटे हुए वे युधिष्ठिर को महाभारत की कथा सुना रहें हैं । जो न्याय छीनता है, वही युद्ध का कारण है । शांति-प्रेमियों के विनम्र प्रयास के बावजूद भी युद्ध भड़क उठता है ।

महाभारत का युद्ध पारस्परिक सिर्फ दो घरों का ही नहीं था । इसी युद्ध के बहाने सब अपने स्वार्थ को ही साधना चाहते थे - कर्ण अर्जुन को मारना चाहता था, द्रुपद द्रोण से बदला लेना चाहता था । कृष्ण के सुधारों से नाराज राजा भी सुयोधन से मिल गए । राजसूय यज्ञ के द्वारा कृष्ण एकता की स्थापना भारत में करना चाहते थे जिसे कुछ राजाओं का विरोध इर्ष्यारूप में प्रकट हुआ । सत्कार से भी वे सभी राजा हृदय से तुम्हें प्रेम न कर सके । उस समय भगवान व्यास ने कहा था कि आकाश में क्रूर ग्रह एकत्रित हो रहे हैं ।

तेरह वर्ष की शांति के पश्चात् भयंकर युद्‌ध होगा तथा महानाश होगा । भगवान व्यास ने काल के संकेत को समझकर सबको संयम का उपदेश दिया था ।

परंतु इंद्रप्रस्थ में विपत्ति आ ही गई । जुए में तुम सब कुछ हार गए और अपनी पुरानी शत्रुता का बदला लेने के हेतु दुर्योधन ने द्रौपदी चीर-हरण कर दिया । इस दिन तुम भी मौन रहे और मैं भी । जिस दिन ऐसा हादसा हुआ, नारी का सम्मान नष्ट हुआ उसी दिन महान युद्‌ध आरंभ हो जाना चाहिए था । उस दिन इस अन्याय का मैंने क्यों मुकाबला नहीं किया? न जाने क्यों मैं उस दिन चूप बैठा रहा ? वीरों का धर्म मानों अंगारों पर चलना है और वीरता कभी अपमान भी नहीं सहती । बुद्‌धि के कारण वीरता को चूप रहना पड़ता है । द्रौपदी चीर-हरण प्रसंग में इसी बुद्‌धि के कारण तुम शांत रहें । मैं भी उस दिन वीरता खोकर दुर्योधन के घर रुका रहा । वृद्‌धावस्था में हम आदर्श की बात करते हैं। उस समय मैंने कौरवों को धर्म और तुम्हें प्रेम दिया । आखिर तक इस प्रेम की विजय हुई और अब मैंने अपना शरीर भी तुम्हारे हवाले कर दिया। मैं अर्जुन के बाणों से पराजित नहीं हुआ बल्कि अवस्था से पराजित हुआ हूँ ।

भीष्म अर्जुन तथा पांडवों के प्रति अपने मन में होनेवाले प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि युद्‌धभूमि में आते वक्त मेरे मन में प्रेम था और कौरवों के लिए लड़ने के लिए मैंने अपनी बाहु में स्फुरण पाया था । परंतु उस समय वीरता के बजाय मुझमें प्रेम उभरकर आया । ब्रह्मचर्य के कारण मैंने अपनी प्रेमभावना को रोककर रखा था । युद्‌धभूमि में वही प्रेम अनासक्त रूप से बह पड़ा । अर्जुन के धनुष को देखकर मेरा मन प्रसन्नता से नाच उठता था और मेरा शरीर प्रेम पर बलिदान हो गया ।

यदि पहले ही मुझे प्रेम की शक्ति मालूम होती तो महाभारत न होता । स्नेह तथा बुद्‌धि पक्ष के कारण मैंने राजनीति में होनेवाले अन्याय का साथ दिया । और इसी कारण दुर्योधन इतना दु:साहस करता गया अगर मैंने स्वयं दुर्योधन को सही समय पर ललकारता तो संभव है, दुर्योधन डरकर अपनी बुराइयाँ त्याग देता ।

भीष्म अपना पछतावा यहाँ व्यक्त करते हैं और मृत्यु से पहले मुझे धर्म और स्नेह दोनों का साथ मिला इतना कहकर संतुष्ट हो जाते हैं । भीष्म स्पष्टवक्ता है । वे दुर्योधन तथा कर्ण पर टीका टिप्पणी करते हैं । इतना ही नहीं वे खुद की भी आलोचना करते हैं । आत्मसंशोधन के साथ स्वयं को भी इस युद्‌ध का कारण मानते हैं । आधुनिक महामानव का रूप इस पात्र में कवि ने देखा है । कई आधुनिक विचारों को उनके द्‌वारा बताया है ।

पंचम सर्ग :

इस सर्ग के आरंभ में कवि ने द्‌वापर (युग) का मानवीकरण करके उस युग का वर्णन किया है । सरस्वती माँ से द्‌वापर कहता है,''मैं द्‌वापर दु:ख से भरे हुए इस संक्रमण काल में, कलियुग के आरंभिक काल से दु:खी संसार के लिए शीतलता खोजता हुआ तथा उसकी प्राप्ति की आशा लिए ऐतिहासिक काल तक आया । अभी तक सर्वत्र अशांति और संघर्ष की मलिन छाया है । शूर-वीरों का युद्‌ध में संहार, नाश के पश्चात् की करुणा और विषाद ये सारे प्रतीक यहाँ वन का जलना, धुआँ आदि द्‌वारा व्यक्त हुए हैं ।''

युद्ध में जो जीतता है उसके लिए न्याय कैसा होता है । वह विजयी होने के कारण श्रेष्ठ कहलाता है। सामान्य जीवन में तो व्यक्ति की हत्या करना पाप है । परंतु युद्ध काल में असंख्य व्यक्तियों को मारकर भी व्यक्ति धर्मात्मा बना रहता है ।

इस दशा में धर्मराज युधिष्ठिर करुणा से द्रवित खड़े हैं । वे आदर्श की कल्पना में खोए हुए हैं । इस लोक में प्रेम और शांति है । विजय बाला धर्मराज को वरण करना चाहती है, किंतु वे कुछ और विचारों में खो गए है तथा वे सोचते हैं कि खून से लथपथ शरीर से, खून से भरे वस्त्रों से ये विजयबाला धर्मराज को प्राप्त न कर सकेगी ।

भीष्म की कथा सुनकर धर्मराज द्रवित हो जाते हैं । उनकी आँखों में आँसू भर आते हैं । वे कहते हैं,''हे पितामह ! अब सब कुछ नष्ट हो गया है । कुछ भी तो शेष नहीं बचा । सामने मृत्यु का भयंकर दृश्य है । सड़ते हुए मुर्दो से उत्पन्न जहरीली दुर्गन्ध, मनु का पुत्र पशुओं को भोजन बन रहा है । मनुष्य का यह कैसा भीषण अंत है । कला, विज्ञान, ज्ञान और वीरता के प्रतीक – असंख्य व्यक्ति युद्ध में बलिदान हो गए । सारे शूरवीर सुयोधन के साथ चले गए, मेरे लिए मुर्दों से भरा हुआ यह देश बच रहा है । मरे हुए पुत्रों की माताओं का रुदन, युवती विधवाओं का दुःख विलाप बाकी रह गया है । यह सब मानों मेरा उपहास कर रहा है । वे मानो कह रहे हैं हे युधिष्ठिर ! तू तो सज्जनता की बड़ी बड़ी बातें करता था । धर्म की दुहाई लेना चाहता था । बदले की भावना से तू ने भी तो युद्ध में पाप किया । ईर्ष्या की यह आग युद्ध के रुप में प्रकट हो गई । अब इससे प्राप्त विजयश्री को तू क्यों नहीं स्वीकारता ? इस तरह के विचारों में युक्त युधिष्ठिर भीष्म पितामह से कहते हैं, 'हे पितामह, ये धरती मानो विधवा बनकर विलाप कर रही है । ऐसी अवस्था में मैं कैसे राज्य का भार सँभल सकूँगा? यदि मुझे युद्ध के पश्चात् सिर्फ धन ही मिलनेवाला है यह बात अगर मालूम होती तो मैं इस मोह का त्याग कर देता वनवास में ही । धन का मोह ही मुझे उकसाता रहा । अब यह खजाना हमें पाप में नहीं डुबोएगा ? बदला लेना हमारा जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया । ऐसे समय हम राज्य ग्रहण करेंगे तो सब लोग यही कहेंगे कि युधिष्ठिर ने सज्जनता का व्रत लेकर पाखण्ड किया । अब आप ही मुझे समझाए कि युद्ध का उत्तरदायी कौन है? मैं या दुर्योधन ? यदि सुयोधन अपनी जिद पर अड़ा था तो क्या मुझे भी अपने सत्य के व्रत से विचलित हो जा चाहिए था?'

दो अभिमानी व्यक्ति परस्पर युद्ध करने लगते हैं, तो संसार उन्हें क्यों नहीं त्याग देता? जो लोग इस तरह अपने आप मिट जाना चाहते हैं उन्हें मिट जाने देना चाहिए । सभी उसमें कूद पड़ते हैं । युद्ध में मनुष्य बिना सोच विचार किए खून बहा देता है। युधिष्ठिर धर्मभीरू हैं । मानव बंधनों का भय माननेवाले है, पुण्यकर्म का पालन करनेवाले हैं। युद्ध की हिंसा को देखकर वे इस समस्या को नष्ट करना चाहते हैं। इसलिए वे आगे सोचते हैं कि युद्ध समाप्ति के बाद हम केवल जीवित रहें हैं और विधवाएँ, बुढे, बालक क्या ऐसे लोगों के लिए मैं राज्य करूँगा? युधिष्ठिर शांति के उपासक हैं। वे सोचते हैं राज्य की बची हुई प्रजा की रक्षा के हेतु निर्वेद भावना मन में रखकर राज्य करूँगा तथा संसार में शांति स्थापित करने का प्रयास करूँगा ।

षष्ठ सर्ग :

यह षष्ठ सर्ग कवि का अपना है । प्राक्कथन में कवि ने कहा है कि जो कुछ उसे कहना है उसे इस सर्ग में कहा है । कवि ने सफलतापूर्वक अपने उद्‌देश्य तथा मन्तव्य को यहाँ प्रस्तुत किया है । युद्‌ध के सनातन प्रश्न के संदर्भ में कवि के जो मूल विचार हैं वे विस्तार से इस सर्ग में व्यक्त हुए हैं । इस सर्ग में कवि ने अपने विचार सरलता से बताए हैं जिससे कवि ने कहीं पर भी छंद का उपयोग नहीं किया है । फिर भी कथाप्रवाह में बाधा नहीं आती ।

कवि वर्तमान युग के संबंध में कहता है- हे भगवान ! संसार में कब दया और धर्म का दीपक जलेगा? कब संसार में शांति की वर्षा होगी? संसार में अनेक महापुरुष हुए किंतु अभी तक यहाँ वासना का तूफ़ान लहरा रहा है और गरीब लोग बेबस है । मनुष्य सभी महान पुरुषों की महानता स्वीकार करता हुआ भी दु:ख की ज्वाला भोगता चला जा रहा है । संसार में आज भी शोषण हो रहा है, युद्‌ध हो रहें है और लोग भी द्‌वेष की अग्नि में जल रहें हैं ।

द्‌वापर युग से आज का मनुष्य विकसित है - बुद्‌धि, विज्ञान, विचार, शरीर और मनोवैज्ञानिकता में । द्‌वापर युग के मनुष्य से आज के मानव को विज्ञान का वरदान प्राप्त हुआ है । सृष्टि की अनेक शक्तियों पर मनुष्य ने विजय पाई है । मनुष्य की आज्ञापर बिजली, ताप, वायु तक बँधें हैं । धरती और आकाश पर उसका अधिकार हो गया है। किंतु हृदय पीछे रह गया है और समाज बुद्‌धिवादी होता जा रहा हैं । आत्मविनाश की ओर मनुष्य बढ रहा है । क्यों कि वह भाव के साथ विचार नहीं करता । आज का मनुष्य कर्म, वचन, शक्ति की दृष्टि से देवता की तरह है लेकिन वह कर्म से पशू है। समाज बुद्‌धिवादी होने से देवतातुल्य पवित्र भावनाओं का उपहास कर रहा है । बुद्‌धि की अत्युक्ति मे ंवह अपनी संवेदना (प्रेम तथा आँसू) खो रहा है । संसार शरीर की साधना में लीन है । हृदय के पवित्र भावों की साधना से विमुख हैं ।

मनुष्य स्वयं अपना उपहास कर रहा है । मनुष्य भाग्य का गुलाम बन रहा है । मनुष्य की प्रगति एक चमत्कार हैं । परमाणु शक्ति को भी तुने छीन लिया है । मनुष्य में फिर भी अभाव है । वह आत्मविनाशक की ओर बढ रहा है । आज के मनुष्य ने ग्रह, नक्षत्रों पर काबु कर लिया है किंतु उसका स्वयं पर काबु नहीं है । वह हिंस्त्र बनता जा रहा है । हिंस्त्र विचारों का (युद्‌ध / संघर्ष) एक सींग वह अपने पास रखता है । मनुष्य जीवन में एक प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है तो उसे बुद्‌धि पर चेतना का प्रभाव लेकर जीना चाहिए । मनुष्य का मनुष्य के प्रति सामंजस्य होना चाहिए । आज के मनुष्य में वही पुराना वर्णभेद रहा है इसी कारण वह (विज्ञान की शक्ति प्राप्त होते हुए भी) पूर्णत: मनुष्य, विद्‌वान नहीं है ।

बुद्‌धि और प्रेम का समन्वय उसका सही उपयोग एक दूसरे के बीच (मनुष्य - मनुष्य के बीच) जो अंतर है उसे प्रेम से जोड़ देता है और बुद्‌धि, भाव, चेतना से उसमें पुष्टि लाता है वही सच्चा मानव है, विद्‌वान है । मनुष्य का मनुष्य के लिए त्याग, समर्पण, प्रेम अपेक्षित है । मनुष्य के मन में जब समता, श्रेय, शिवत्व की भावना निर्माण होगी तब मनुष्य के जीवन का आधार सबल बनेगा ।

सप्तम सर्ग :

मनुष्य का बाह्य परिचय सीधा-साधा है लेकिन अंतरंग का परिचय देना कठिन है। मनुष्य के मन का विषदंत उसे उखाड़ना होगा । हिंसक भावनाओं को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए । जो दुर्बल हैं उन्हें सबल बनाओ । प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बनाओ । समाज को सबल, निर्भय बनाओ । जो संभव है उसका स्वीकार करो । मानवीय एकता और उद्योगवाद इन दोनों से भी युद्ध को टाला जा सकता है । विज्ञान के दुरुपयोग का निषेध करना चाहिए । विज्ञान का उपयोग मनुष्य की मानवता को कुचलने के लिए नहीं होना चाहिए । प्रस्तुत सर्ग में भीष्म युधिष्ठिर को इन्हीं बातों द्वारा समझाते हैं।

भीष्म कहते हैं कि ज्यो व्यक्ति मोह की आग में पड़कर भी सोने के समान निखरकर आता है, पाप की खाई में गिरकर भी अपने जीवन को सुधारने में उसे ऊपर उठाने में लगा हुआ है, वह करोड़ो संन्यासियों से अच्छा है । पाप सभी से होता है किंतु हिम्मत धर के उसमें से उभरनेवाला महान है ।

हे धर्मराज ! कुरूक्षेत्र की इस राख पर ही मानव जाति का अंत नहीं है । यहाँ आँसू गिरे हैं तो यहीं शांति, अमन के फूल भी खिलेंगे । इस युद्ध में मानव का भाग्य नहीं जल गया । जो कुछ सुख है उसे वह अपने भुजबल से ही पाया है । इसलिए उसे हमेशा कर्म करते रहना चाहिए । जीवन से पलायन नहीं करना चाहिए । जब तक उसमें सजीवता है पलायन नहीं करना चाहए । जीवन से पलायन नहीं करना चाहिए । जब तक उसमें सजीवता है तब तक उसे अपने कर्तव्यों को निभाना है । मनुष्यता की आशा मनुष्य में है, वन में नहीं । संन्यस्त वृत्ति से मनुष्यता का भला नहीं हो सकता । मानवता के दो पक्ष है वासना और विरक्ति । मनुष्यता - त्याग और तप से महान् है । सभी को समान रुप से जीने का अधिकार है । किंतु मनुष्य अभी तक इस सत्य को नहीं जान सका है और न एक-दूसरे पर विश्वास ही कर सका है । यदि मानव-समाज का कल्याण करना है तो राज्य को स्वीकार करों और योगियों की भाँति रहो ।

यह धरती किसी एक की संपत्ति नहीं है । यहाँ सबको समान रुप से सुख भोगने का अधिकार है । अनेक संघर्षों से मानव को मुक्त करने का एक मात्र उपाय है समता । यह भूमि सब की है । किसी एक की नहीं है । यहाँ गाँधी और विनोबाजी के सार्वकालिक सत्यों को उभारा है । मानवता का सूत्र उन्होंने दिया है। किंतु मानवता की इस उन्नति की राह में बड़ी बाधाएँ है । सभी महान् बनना चाहते हैं किंतु मानवता की इस उन्नति की राह में बड़ी बाधाएँ हैं । जब तक सब के जीवन में समानता नहीं होगी, तब तक संसार का विकास संभव नहीं है । ईश्वर ने धरती को सुखमय बनाया है । मनुष्य को शारीरिक तथा मानसिक शक्ति भी दी है । फिर भी वह अभाव महसूस करता है । वह असमर्थ है । भीष्म साम्यवादी है धर्म के भेदभाव से ग्रस्त समाज में मनुष्य कभी सुखी नहीं होगा । इस तरह वह भाग्यवाद को भी नकारते हैं । भाग्यवादी बनकर बैठे रहने से जीवन का विकास नहीं हो सकता । बल्कि उसे कर्मवादी बनना चाहिए । उसी तरह पाप से किये गये धन को संचय को दूसरा भाग्यवाद के सहारे भोग लेता है ।

''यहाँ कौन राजा कौन प्रजा?'' मनुष्य ने अज्ञान में पड़कर स्वयं ही यह विभाजन किया है । प्राचीन समय में सभी एक समान ही थे । सब मेहनत करते थे और सभी मिल-जुलकर समान ही उपभोग करते थे ।

सभी का सुख-समाज का सुख था । कोई संग्राहक नहीं था । राज्य के नियमों की बाधाएँ पग-पग पर नहीं थी ।

जब व्यक्ति के मन में स्वार्थ भावना उत्पन्न हुई तभी संग्रहण वृत्ति बढ गई तथा लूटमार और शोषण का आरंभ हो गया । इसी से संघर्ष भावना निर्माण हो गई तलवार की ताकद का उसे अंदाज आ गया । मनुष्य जनता का शासक बन गया । राजतंत्र से मनुष्य में परस्पर बैर और शूद्रता निर्माण होने लगी। यदि सब स्वयंम् प्रेम से रह सकते तो राजा की आवश्यकता न होती । राजतंत्र से दुर्गुणों का नाश होना चाहिए था परंतु अब विचार भी परतंत्र हो गए हैं । कृष्ण-विदुर भी राजनीति की अवज्ञा नहीं कर पाए । इसी कारण अब नई प्रगति की कल्पना असंभव है । मनुष्य ने अपने स्वभाव का परिष्कार नहीं किया । उसकी स्वार्थ भावना से वह अंधी दौड़ में फाँसता जा रहा है । राजतंत्र का मोह पाश उसे फाँसता जा रहा है ।

युधिष्ठिर के मन में निर्वेद भावना जाग उठी है उसे समझाते हुए भीष्म उसे इस विराग से हटाना चाहते हैं। कवि यहाँ अपने भी विचार प्रस्तुत करते हैं - कि 'निवृत्ति पर प्रवृत्ति का विजय ।' धर्मराज संन्यास लेना तो मन की कायरता है । ऐसा वे (भीष्म) कहते हैं । वैराग्य का वे खंडन करते हैं । संघर्ष से भागना नहीं चाहिए । मनुष्य को यह पलायनवाद नहीं स्वीकारना चाहिए । काल क्रम में मनुष्य एक कड़ी है । कर्म से पलायन उसे शोभा नहीं देता । कर्म से ही मनुष्य को शांति मिलती है । जिससे वह अपने तथा दूसरों के जीवन को भी सुखी बना सकत है ।

व्यक्तिगत सुख पाना आसान है किंतु सब मनुष्यों को सुखी बनना बड़ा कठिन है। तुम्हें अगर वन में शांति भी मिल जाए तो संसार को इससे क्या लाभ होगा? सभी लोग तुम्हारा अनुसरण करेंगे तो योगियों को वन से भागना पड़ जाएगा । संन्यासी जीवन को अपने अनुरुप देखना चाहता है ।

यह संसार उसी को सुख देता है, जो उससे संघर्ष करता है । जो उसे त्याग देता है, उसे सुख प्राप्ति नहीं होती । कल्पना के संसार में कुछ नहीं है । आत्मोन्नती के साथ-साथ दूसरों को भी सुखी बनाने के लिए कर्मशील रहकर संन्यस्त वृत्ति से उत्तरदायित्त्व को निभाना चाहिए । यही सच्चा कर्मयोग है । कवि ने कर्मयोग से संबंधित 9 वे सर्ग को लेकर बड़ा सुंदर विवेचन यहाँ किया है । तिलक जी के 'गीता रहस्य' के प्रेरणादायी विचार निवृत्तिपरक् विचारों का खंड़न करते हैं । कर्मयोग का समर्थन यहाँ किया है ।

अनित्य को सत्य मानकर कर्म करनेवाले संसार का कल्याण कैसे करेंगे ? कर्मयोगी ही धरती को सुंदर और आकर्षक बनाते हैं । वह जीवन भर दूसरों का कल्याण करता रहता है । यदि धरती नश्वर है फिर भी उसे किस तरह से समुद्ध बनाना है यह अपने कर्म पर ही आधारित है । संन्यास से दुःख निवारण होता तो सभी संन्यास लेते ।

''हे धर्मराज ! तुम अपनी तपस्या से सारे संसार के दुःखों को शांत करो । संसार के दुःखों की ओर देखो वहाँ तुम्हारा जाना जरुरी है वन की ओर नहीं तुम संसार में ऐसे विरक्ति भाव से रहो कि तुम्हे कोई पाप न छू जाय । सब को उसी प्रकार का सात्त्विक जीवन व्यतीत करना सिखाओ । पाप में जलना ही सत्य नहीं है, वरन् उसे जीतते हुए आगे बढना ही सत्य है । आशा का दीपक जलाकर आगे बढत चलो । तुम्हें अवश्य

सफलता मिलेगी और संसार में आत्मबलिदान की महिमा प्रतिष्ठित होगी । मानवता का मंत्र लेकर दुर्बलों को सबल बनाओं ।'

'कुरूक्षेत्र' की कथा युधिष्ठिर की युद्ध विषयक जुगुप्सा तथा मानवीय विनाश जन्य निर्वेद से प्रारंभ होती है । वे अपने मन का समाधान करने के लिए पार्थ को सूचित करने के अनंतर भीष्म पितामह के पास चले जाते हैं । भीष्म उनके विरक्ति विषयक प्रस्ताव की भर्त्सना करते हुए उन्हें राज का आसक्तिहीन भोग करने की अनुमति देते है । 'कुरूक्षेत्र' की कथा संक्षेप में यही हैं । दिनकर जी के मानवतावादी विचार यहाँ स्पष्ट होते हैं ।

2.3.4 कुरूक्षेत्र के प्रमुख पात्र :

युद्ध और शांति की समस्या को लेकर दिनकर जी ने कुरूक्षेत्र महाकाव्य की रचना की है। कुरूक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो चुका है, धर्मराज युधिष्ठिर ने उसके परिणाम को देखा और उनका हृदय ग्लानि से भर गया। महाभारत की कथा में से एक छोटे से प्रसंग को लेकर भीष्म और युधिष्ठिर को प्रधान बनाकर उनसे इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कुरूक्षेत्र का मूलाधार महाभारत ही है। फिर भी इसमें दिनकर जी ने पितामह भीष्म और युधिष्ठिर का चरित्र-चित्रण महाभारत के भीष्म और युधिष्ठिर की तरह नहीं किया गया है। लेकिन उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा है कि दोनों के मुख से द्वापर युग के लिए अनुचित और अस्वाभाविक कोई बात न निकले और साथ ही वर्तमान युग की अनुकुल पडने वाली बातें भी उनके मुख से कहलवाई जाए। कथानक के आधारपर ऐसा लगता है कि ये युधिष्ठिर महाभारत के ही है। परंतु कुरूक्षेत्र,में चित्रित युधिष्ठिर संवेदनशील, ममताशील ,कर्तव्यनिष्ठ, सत्यवादी, क्षमाशील, त्यागी, द्यालु, विनयी, एवं धर्मभीरू हैं। भीष्म पितामह कर्मयोगी, महान व्यक्तित्व पश्चातापी, कुशल तार्किक, युद्ध के समर्थक, धर्म के ज्ञाता आदि रूप में चित्रित हुए है।

युधिष्ठिर काव्य नायक के रूप में मिलते हैं। वे विचारशील व्यक्ति है क्यों कि महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर वे अकेले ऐसे व्यक्ति है जो विचार और पश्चाताप की अग्नि में जल रहे हैं। सारे पांडव गण मदिरा प्राशन कर, बेशुध्द होकर आंनद मना रहे हैं। कवि ने युधिष्ठिर की मानसिकता का वर्णन इस प्रकार किया है-

किंतु, इस उल्लास जड समुदाय में
एक ऐसा भी पुरूष है, जो विकल।
बोलता कुछ भी नहीं पर रो रहा,
मग्न चिंतालीन अपने आप में।

X X X

इस काल-गर्भ में किंतु एक नर ज्ञानी
है खड़ा वही पर भरे दृगों में पानी।

रक्ताक्त दर्प को पैरों तले दबाये
मन करूणा का स्निग्ध प्रदीप जलाये।

महाभारत के युद्ध में जो विनाश हुआ है, उसका पश्चाताप सिर्फ युधिष्ठिर के माध्यम से व्यक्त हुआ है । युधिष्ठिर सोचते हैं कि युद्ध करने से क्या मिला ?

यह महाभारत वृथा, निष्फल हुआ,
उफ ! ज्वलित कितना गरलमय व्यंग्य है
पाँच ही असहिष्णु नर के द्वेष से
हो गया संहार पूरे देश का ।

अपने सारे आत्मिय लोग इस युद्ध में मारे गए हैं और अब राज्य करें भी तो उसे देखनेवाले लोग कौन हैं ? यह प्रश्न युधिष्ठिर के सामने निर्माण हो जाता है । अपनों के प्रति उनकी करूणा, प्रेम तथा अपनापा स्पष्ट रूप से झलकता है । जैसे -

''बालहीन माता की पुकार कभी आती, और
आता कभी आतृनाद पितृहीन बाल का ।
आँख पड़ती है जहाँ हाय, वही देखता हूँ
सेंदुर पुँछा हुआ सुहागिनी के भाल का ''

युद्ध के पश्चात युधिष्ठिर के मन में अंतर्द्वद्व स्पष्ट झलकता है । उचित अनुचित की बात को लेकर विचार करते रहते हैं। उनका मस्तिष्क आंदोलित हो उठता है कि -

जानता हूँ, लड़ना पडा था हो विवश, किंतु -
लोहू सनी जीत मुझे दिखती अशुद्ध है;
ध्वंसजन्य सुख? या कि साश्रु दुःख शांतिजन्य ?
ज्ञान नहीं, कौन बातनीति से विरुद्ध है?

युधिष्ठिर अहिंसावादी के समर्थक भी दिखाई देते है । क्यों कि युद्ध के विरुद्ध उनके विचार इसमें व्यक्त हुए है । 'विनाश' यह युद्ध का वास्तविक (सत्य) परिणाम है । हिंसा से समाज का कुछ भी भला नहीं हुआ है । हिंसा के बारे में उनके विचार इस प्रकार है -

''कृष्ण कहते हैं, युद्ध अनघ हैं, किंतु मेरे
प्राण जलते हैं पल-पल परिताप से ।''
लगता मुझे है, क्यों मनुष्य बच पाता नहीं
दह्यमान इस पुराचीन अभिशाप से ।।

युधिष्ठिर रक्तरंजित वातावरण को देखकर बहुत ही भाव विव्हल हो जाते है । क्योंकि अपनों के शव, बीभत्स, दृश्य, दुर्गंध और गीधड-कौओ, कुत्तों उनपर टूट पडना, यही सब देखकर युधिष्ठिर का दर्द और भी बढ जाता है । लेकिन भीष्म पितामह के विचार सुनकर युधिष्ठिर में भी आत्मविश्वास जग जाता है । और वे हमारे सामने शांति के पुजारी के रूप में आ जाते है । कल्पना करते है कि एक ऐसा विश्व निर्माण होगा जहाँ युद्ध और आपसी कटुता नहीं होगी, मनुष्य आपस में प्रेम करने लगेगा, सभी लोग प्रेम के बंधन में बंध जाएंगे जैसे

वह लोक, जहाँ शोणित का ताप नहीं है,
नर के सिर पर रण का अभिशाप नहीं है,
जीवन समता की छाँह ले पलता है,
घर-घर पीयूष प्रदीप जहाँ जलता है।

'कुरूक्षेत्र' में दूसरे प्रमुख पात्र भीष्म पितामह है। जो युधिष्ठिर की शंकाओ का निराकरण करते समय एक कुशल रातनीतिज्ञ धर्म के ज्ञाता अपार शक्तिशाली, कर्मयोगी, महान व्यक्तित्व, युद्ध एवं वसुधैव कुटुम्बकम के समर्थक लगते हैं।

2.3.5 कुरूक्षेत्र में राष्ट्रीय भावना :

अंग्रेजों के शासनकाल में ही कुरूक्षेत्र की रचना हुई थी । इस रचना में दिनकर जी भारत की पौराणिक कथावस्तू के आधारपर युद्ध की समस्या पर चिंतन करते हैं । फिर भी षष्ठ सर्ग की कथावस्तु में कवि महाभारत की कथा से अलग होकर वर्तमान काल की समस्या को प्राथमिकता देते हैं । उन्हें लगता है कि हर समस्या का समाधान युद्ध में नहीं है। क्यों कि युद्धों का अंत कभी होता नहीं है। युद्ध का ज्वर हमेशा बढता ही जाता है । यह ज्वर मनुष्य को भ्रमित कर देता है। परंतु कवि अंत में शांति के बारे में सोचते है। वसुधैव कुटुम्बकम एवं विश्व बंधुत्व के बारे में सोचते है।

युद्ध की ज्वर- भीति से हो मुक्त,
जब कि होगी सत्य की वसुधा सुधा से युक्त।
श्रेय होगा सुष्ठ विकसित मनुज का वह काल
जब नहीं होगी धरा नर के रूधिर से लाल।
श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,
मनुज जोडेगा मनुज से जब उचित संबंध ।

द्वितीय महायुद्ध के समय दिनकर जी युद्ध की समस्या पर विचार कर रहे थे। महायुद्ध के विनाशक प्रभावों ने उन्हें हिला कर रख दिया और कुरूक्षेत्र की निर्मिति हुई। महाभारत का युद्ध समाप्त हो जाना और काव्यनायक युधिष्ठिर का करूण हृदय क्षोभ और निराशा में यह निर्णय लेना कि राजगददी को छोडकर वन की ओर चला जाना। इस दुविधा में भीष्म पितामह उनके प्रेरक बनते हैं और उन्हें ज्ञान की प्राप्ति होती हैं।

किसी समस्या को युग,समाज या राष्ट्र से संबधित नहीं रखा जा सकता क्यों कि युद्ध की समस्या अकेले भारत की नहीं है तो पूरे विश्व की है। उससे मुक्ति की कामना, मंगल की कामना कवि करते है। दिनकर जी इस काव्य -कृति के माध्यम से मानवतावादी दृष्टि रखते हैं, कवि सारे संसार को सुखी देखना चाहते है न कि सिर्फ भारत को। कवि का यहां राष्ट्रप्रेम के साथ-साथ विश्वप्रेम भी दिखाई देना है। भारतीय संस्कृति हमेशा लोक- कल्याण की भावना को लेकर चलती है। सारे विश्व को एक परिवार मानती है। भीष्म पितामह का संदेश प्रत्येक भारतवासी के लिए प्रेरणादायी है। क्यों कि द्वितीय विश्वयुद्ध में भारत की स्थिति दीन हो गई थी ।अंग्रेजों द्वारा लूट हो रही थी। भारत पराधीन बनता जा रहा था, उसे कंलकित किया जा रहा था। इसी समय कुरूक्षेत्र के माध्यम से कवि स्वातंत्र्य प्राप्ति का संदेश युवकों को दे रहे थे। क्यों कि स्वातंत्र्य मांगने से नहीं तो लढकर प्राप्त करना पडता है। महात्मा गांधी का मार्ग अपनाकर शायद देरीं से स्वातंत्र्य पाप्त कर सकते है। परंतु प्राचीन संस्कृति इतिहास और गौरव के मार्ग पर चलने का संकेत कवि यहां देने है। यहां कवि का संस्कृति से एवं राष्ट्र प्रेम का उत्सर्ग देखाई देता है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1. दिनकर जी का जन्म .... को हुआ था ।

क) 23 सितंबर 1908 ख) 30 सितंबर 1910

ग) 30 जुलाई 1908 घ) 12 दिसंबर 1909

2. दिनकर जी को .... नामक रचना के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित गया।

क) उर्वशी ख) कुरूक्षेत्र ग) रश्मिरथी घ) संस्कृति के चार अध्याय

3. दिनकर जी का वास्तविक और पूरा नाम .... था ।

क) केदारनाथ सिंह ख) रामधारी सिंह ग) रामचंद्र सिंह घ) दिनकर सिंह

4. 'कुरूक्षेत्र' महाकाव्य का प्रकाशन सन् .... हुआ है ।

क) 1944 ख) 1946 ग) 1945 घ) 1948

5. 'काम और आध्यात्म' का चित्रण .... इस गीतिनाट्य हुआ है ।

क) प्रणभंग ख) उर्वशी ग) रेणुका घ) रश्मिरथी

6. 'कुरूक्षेत्र' का कथानक .... से लिया गया है ।

क) रामायण ख) महाभारत ग) रामचरित मानस घ) कलिंग विजय

7. 'कुरूक्षेत्र' मूलत: उपनिवेशवादविरोधी .... काव्य है ।

क) प्रबंध ख) मुक्तक ग) गीति घ) नाट्य

8. द्रौपदी के केश .... वर्ष तक खुले रहे ।

क) तेरह　　ख) चौदह　　ग) पंद्रह　　घ) सोलह

9. कुरूक्षेत्र के युधिष्ठिर अपनी मनोव्यथा .... को सुनाते है ।

क) अर्जुन　　ख) भीम　　ग) कृष्ण　　घ) भीष्म

10. दुर्योधन ने भरी सभा में .... को दासी कहा था ।

क) द्रौपदी　　ख) कुंती　　ग) शकुंतला　　घ) उर्वशी

11. बाणों की शय्या पर लेटे हुए भीष्म .... को चुनौती दे रहे थे ।

क) काल　　ख) यमराज　　ग) इंद्र　　घ) दुर्योधन

12. राजसूय यज्ञ की समाप्ति के समय .... ने भविष्यवाणी की थी ।

क) द्रोणाचार्य　　ख) शुक्राचार्य　ग) व्यासजी　घ) शकुनि

13. महाभारत का युद्ध समाप्त होने के बाद पाण्डव पक्ष में .... लोग शेष बचे थे ।

क) पांच　　ख) छ:　　ग) सात　　घ) आठ

14. शक्तिशाली पुरुष के बाण में .... निहित होता है ।

क) विजय　　ख) शांति　　ग) विनय　　घ) विनय की शोभा

15. देश में एकता स्थापित करने के लिए युधिष्ठिर ने ....यज्ञ किया था ।

क) राजसूय　　ख) अश्वमेध　　ग) महायज्ञ　　घ) शांतियज्ञ

16. 'कुरूक्षेत्र' की कथावस्तु युधिष्ठिर और .... के वार्तालाप में ही समाप्त होती है।

क) अर्जुन　　ख) भीम　　ग) द्रौपदी　　घ) भीष्म

17. 'कुरूक्षेत्र' का कथानक .... सर्गो में विभाजित है ।

क) पांच　　ख) छ:　　ग) सात　　घ) आठ

18. छठे सर्ग में दिनकर जी धरती के लिए .... की प्रार्थना करते हैं ।

क) शांति　　ख) युद्ध　　ग) सुख　　घ) संपत्ति

19. 'कुरूक्षेत्र' काव्य की मूल प्रेरक समस्या .... की समस्या है ।

क) धर्म　　ख) आतंकवाद　ग) युद्ध　　घ) गरीबी

20. कुरूक्षेत्र के छठे सर्ग में कवि के चिंतन का विषय .... है ।

क) मनुष्य ख) धर्म ग) पृथ्वी घ) संस्कृति

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

उपधान	:	तकिया
पंथू जोहती	:	इंतजार करती
धर्मराज	:	युधिष्ठिर
श्वेत शिरोरूह	:	सफेद सिर के बाल
वीर गति	:	युद्‌ध भूमि में लड़ते हुए वीर की मृत्यु
भस्म राशि	:	चिता की राख
पार्थ	:	अर्जुन
कृपाण	:	तलवार
वरेण्य	:	श्रेष्ठ
दह्यमान	:	जलानेवाले
अर्जुन का लाल	:	अभिमन्यु
कंदरा	:	गुफा
कौन्तेय	:	कुंती के पुत्र – युधिष्ठिर
पारावार	:	सागर
मुलोच्छेद	:	जड़ तोडकर
प्रभंजन	:	तूफान
अंर्तव्योम	:	भीतर का आकाश, मन
पवन उनचास	:	प्रलय के समय चलने वाले पवन जो संसार का नाश कर देते हैं ।
शार्दूल	:	शेर जैसी हिंसा की भावना
कुलिश संघर्ष	:	वज्र से भयंकर संघर्ष
क्लीवसा	:	नपुंसक के समान
शायक	:	बाण

मुनि पुंगव	:	श्रेष्ठ मुनि
जगदहन	:	संसार की आग
जगदाह	:	संसार का नाश
लाक्षागृह	:	जिसमें पांडवों को ठहराकर दुर्योधन के आग लगवा दी थी, लाख का घर ।
केशकर्षिता	:	जिसके बाल खिंचे गए ।
फणीश	:	सर्पों का राजा
अनीति ध्वजकारी	:	अन्याय की ध्वजा उठानेवाला
क्रुद्धकाल	:	क्रोधित यमराज
जिघांसा	:	मारने की इच्छा
शिवा	:	पार्वती, कल्याणी
पन्नगराज	:	सर्पों का राजा
प्रणेता	:	जन्म देनेवाले
हुताशन शैल	:	ज्वालामुखी
दावाग्नि	:	जंगल की आग जो बड़ी भयंकर होती है ।
पार्थ–वध का प्रण	:	कर्ण ने अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा की थी ।
राधेय	:	कर्ण
धनुष्या	:	धनुष की डोरी
राजसूय	:	एक यज्ञ का नाम, जिसे करके युधिष्ठिर ने सब राजाओं को जीत लिया था ।
पीयूष वृक्ष	:	अमृत का पेड़
इंद्रप्रस्थ	:	पांडवों की राजधानी
दिग्गज	:	दिशा के हाथी, शक्तिशाली राजा
चित्र – खग	:	नकली पक्षी
लज्जा वसन	:	शरीर की लज्जा छिपानेवाले वस्त्र
बुद्धि विषाण	:	बुद्धि के तर्कों से उलझकर चुपचाप बैठा
हविष्	:	आहुति

वेदिका	:	बलि देवी
बलते हैं	:	जलते हैं, अपने-आप को बलिदान कर देते हैं ।
प्लावन भीत	:	शक्ति की बाढ से डरी हुई
हिम विमुक्त	:	बिना किसी उलझन के
रूधिकाक्त	:	खून से लथपथ
सैकत बीच	:	बालू में
शिखा छन्न	:	छिपी हुई स्नेह की ज्वाला
अरूणाभ	:	लाल आभा
न्याय दण्ड धर	:	न्याय के दण्ड को धारण करने वाले
विशिख लेखिनी	:	बाण की लेखनी
संक्रांतिकाल	:	द्वापर और कलियुग के बीच का समय
कलिकाल भाल	:	कलियुग का माथा, कलियुग का आरंभ
काल-गुहुर	:	समय की गुफा
विस्त्र	:	बहना (द्रव के लिए)
ऋत्विक	:	यज्ञ में वेद-मंत्रों का पाठ करने वाले
ऋचा	:	ऋग्वेद के मंत्र
आकाश-प्रवासी	:	भावना के संसार में डूबा हुआ
शुण्ड	:	सूँड जैसी शक्तिशाली लंबी भुजाएँ
अवतंस	:	गहने, श्रेष्ठ पुरूष
ऱ्हतरत्ना	:	जिसके रत्न छीन लिए गए हैं ।
अहि-दंशित	:	सांप से काटा गया ।
मुमूर्षु	:	मरनांतक रूप से घायल
कचबाल	:	द्रौपदी के बालों को खींचा जाना
अमत की धार	:	महात्माओं के उपदेश
वरुणेश	:	जल के देवता (वरूण)

श्रृगाल	:	गीदड
पंचाग्नि	:	पांच आग - शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श ।
वृक	:	घड़ियाल
अजा के छागल	:	बकरी के मेमने
उद्रिज - निय	:	वृक्षों के समान
स्वार्थ - शैल	:	स्वार्थ का पहाड़
मंदराचल	:	वह पर्वत जिससे देव-दानवों मे सागर मंथन किया था।
प्रक्षिप्त	:	उंडेला गया
जनाकीर्ण	:	मनुष्यों से भरे हुए
गोतीत	:	इंद्रियों से परे, गोचर- जो प्रत्यक्ष दिखाई-सुनाई देता है।
सुविकच	:	सुंदर खिले हुए
हत बंधु	:	जिनके संबंधी मारे जा चुके है
उपनिवेशवाद	:	दूसरे देश से आए हुए, उनके द्वारा अपनी शक्ति की प्रसार करने की विचारधारा ।

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. क) 23 सितंबर 1908
2. क) उर्वशी
3. ख) रामधारी सिंह
4. ख) सन् 1946
5. ख) उर्वशी
6. ख) महाभारत
7. क) प्रबंध
8. क) 13
9. ग) भीष्म
10. क) द्रौपदी
11. क) काल
12. ग) व्यासजी
13. ग) सात
14. घ) विनय की शोभा
15. क) राजसूय
16. घ) भीष्म
17. ग) सात
18. क) शांति
19. ग) युद्ध
20. क) मनुष्य

2.7 सारांश :

1. रामधारी सिंह दिनकर जी को वादमुक्त रूप में राष्ट्रीय काव्यधारा के एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में पहचाना जाता है ।
2. 'कुरूक्षेत्र' द्‌वितीय महायुद्‌धोत्तर काल में दिनकर जी की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है ।
3. 'कुरूक्षेत्र' की कथा का आधार : महर्षि व्यास रचित महाभारत से लिया गया है । प्रथम सर्ग में कुरूक्षेत्र का युद्‌ध समाप्त हो चुका है और युधिष्ठिर पश्चाताप करते हुए दिखाऐ देते हैं ।
4. 'कुरूक्षेत्र' की कथावस्तु युधिष्ठिर और भीष्म के वार्तालाप में ही समाप्त हो जाती है । क्यों कि उसमें घटनाएँ कम और चिंतन एवं बौद्‌धिकता की अधिकता है ।
5. युधिष्ठिर को विचारशील, आत्मविश्वासी, करूणामय, अहिंसावादी, विश्व-बंधुत्व के समर्थक, करूणा की मूर्ति के रूप में चित्रित किया है ।
6. पितामह भीष्म को धर्मनीतिज्ञ, कर्मयोगी, विचारों की शक्ति रखनेवाला, युद्‌ध के समर्थक, आदि रूपों में चित्रित किया है ।
7. 'कुरूक्षेत्र' की मूल समस्या है युद्‌ध और शांति की । जो इस प्रबंधकाव्य का मुख्य उद्‌देश्य है।
8. दिनकर जी की लोक-चेतना, राष्ट्रीयता तथा मानवतावादी धरातल से आगे बढती हुई 'कुरूक्षेत्र' में विश्व की एक शाश्वत तथा सबसे जीवंत समस्या पर केंद्रित हो गई है ।
9. 'कुरूक्षेत्र' के समस्त चिंतन केंद्र में मानव है, इसमें मानवतावादी स्वर प्रधान है ।
10. 'कुरूक्षेत्र' के माध्यम से दिनकर जी शांति की अभिलाषा व्यक्त करते हैं, साथ ही वे कामना करते हैं, कि युद्‌ध के भय से धरति मुक्त हो जाएगी । स्नेह एवं समता की नींव पर ही नवविश्व का निर्माण होगा, ऐसा उन्हें विश्वास है ।
11. 'कुरूक्षेत्र' का संदेश है कि युद्‌ध अटल है क्योंकि शोषण और अन्याय धरती पर निरंतर चलते रहते हैं। शोषण और अन्याय के विरुद्‌ध युद्‌ध करना न ही अधर्म है न ही पाप । इसलिए कर्म का, कर्तव्यपालन का प्रवृत्ति करना ही महत्त्वपूर्ण है ।
12. आत्मकल्याण के साथ मनुष्य परहितसाधन भी करे । लोकहित भावना की रक्षा करने के लिए तप, क्षमा, करूणा, त्याग आदि का त्याग भी उचित है । जनकल्याणार्थ विज्ञान का भी समुचित उपयोग होना जरूरी है ।
13. जब तक हर मनुष्य को न्यायोचित सुख सुलभ नहीं होता, तब तक संघर्ष होता रहेगा । परंतु मानवतावाद सिर्फ लोककल्याण की भावना में ही निहित है ।

2.8 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. 'कुरूक्षेत्र' प्रबंध काव्य का कथानक लिखिए ।
2. प्रबंध काव्य के तत्त्वों के आधार पर 'कुरूक्षेत्र' की समीक्षा कीजिए ।
3. 'कुरूक्षेत्र' के आधार पर युधिष्ठिर का चरित्र-चित्रण कीजिए ।
4. 'कुरूक्षेत्र' के माध्यम से युद्‌ध तथा अनेक आधुनिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है, स्पष्ट कीजिए ।

ब) ससंदर्भ के लिए उदाहरण :

सप्तम सर्ग

1. पुण्य-पाप .... दुहराकर । (पृष्ठ 98)
2. मृत्ति के अधूरे .... अश्रुकण में । (पृष्ठ 99)
3. ऊँचा उठ देखो .... व्यवधान है । (पृष्ठ 100)
4. न्यायोचित सुख .... चुराता । (पृष्ठ 103)
5. ब्रह्मा से कुछ .... श्रमजल से । (पृष्ठ 106)
6. धर्मराज .... सुखी बनाना । (पृष्ठ 119)
7. यहाँ मानती .... शूलों से? (पृष्ठ 126)
8. अकर्मण्य वह पुरूष......... अमर है । (पृष्ठ 132)
9. सुकृत - भूमि वन ही न .... चाहिए भाषा । (पृष्ठ 139)
10. मत सोचो दिन-रात.......... मरी है । (पृष्ठ 145)
11. आशा के प्रदीप .... स्वर्ग प्रीति से । (पृष्ठ 1460)

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. महर्षि व्यास द्‌वारा लिखित 'महाभारत' महाकाव्य पढिए ।
2. 'कुरूक्षेत्र' प्रबंध काव्य के आधार लघुनाटिका लिखने का प्रयास कीजिए ।
3. 'कुरूक्षेत्र' का मराठी में अनुवाद करने का प्रयास कीजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' – विजेंद्र नारायण सिंह
2. राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य–साधना – सं. प्रतापचंद ओसवाल
3. रामधारी सिंह 'दिनकर' का काव्य एक अनुशीलन – डॉ. गिरीश चंद्र पाल
4. हमारे प्रतिनिधि कवि – विश्वंभर 'मानव'
5. दिनकर और कुरूक्षेत्र – डॉ. तारकानाथ बाली

❑❑❑

इकाई 3

3.1 कुकुरमुत्ता

–सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

3.1.1 उद्देश्य

3.1.2 प्रस्तावना

3.1.3 विषय विवेचन

3.1.3.1 निराला का जीवन परिचय, व्यक्तित्व, कृतित्व और निराला के काव्य की विशेषताएँ

3.1.3.2 'कुकुरमुत्ता' कविता का परिचय

3.1.3.3 'कुकुरमुत्ता' कविता का आशय, प्रथम भाग

3.1.3.4 'कुकुरमुत्ता' कविता का आशय, द्वितीय भाग

3.1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.1.7 सारांश

3.1.8 स्वाध्याय

3.1.9 क्षेत्रीय कार्य

3.1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1) 'कुकुरमुत्ता' कविता के कथानक से परिचित होंगे ।
2) वर्ग–संघर्ष के कारणों को समझ पाएँगे ।
3) प्रगतिवादी काव्यधारा की विशेषताओं को समझ पाएँगे ।
4) निराला के प्रगतिवादी विचारों से परिचित होंगे ।

3.1.2 प्रस्तावना :

निराला जी की 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता दो भागों में विभाजित है । प्रथम भाग में नवाब के बगीचे का वर्णन है । नवाब ने अपने बाग में फारस से मँगवाया गया गुलाब का पौधा लगवाया था । वह गुलाब अपनी विशिष्टता से पूरे बाग की शान माना जाता था । वही गंदे में उगा हुआ कुकुरमुत्ता बडी अशिष्ट भाषा से गुलाब को ललकारता हुआ अपनी श्रेष्ठता एवं महत्ता सिद्ध करने की कोशिश करता है।

कविता के दूसरे भाग में निम्न वर्ग की बस्ती और वहाँ के निवासियों का वर्णन है । उस बस्ती में रहनेवाली मालिन की बेटी गोली और नवाब की बेटी बहार दोनों में मित्रता है । एक दिन दोनों बाग में घूम रही थी, तब गोली ने कुकुरमुत्ता देखकर बहार से उसके कबाब की स्वादिष्टता की जानकारी दी । गोली की बाते सुनकर बहार के मुँह में पानी भर आया । उसने कुकुरमुत्ते का कबाब खाने की इच्छा गोली के सामने प्रकट की । गोली की माँ ने कुकुरमुत्ते का कबाब बहार को खिलाया । बहार कुकुरमुत्ते के कबाब से संतुष्ट और आनंदित हो गई । बहार से कुकुरमुत्ते के स्वादिष्ट कबाब की जानकारी पाकर नवाब ने भी कुकुरमुत्ते का कबाब खाने की अपनी इच्छा प्रकट की । नवाब ने अपने माली से गुलाब के बदले कुकुरमुत्ता उगाने का आदेश दिया; परंतु माली ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि कुकुरमुत्ता उगाने से नहीं उगता वह स्वयं उगता है ।

समीक्षकों का मानना है कि 'कुकुरमुत्ता' प्रगतिवादी विचारों को अभिव्यक्त करनेवाली रचना है । इसमें गुलाब (शोषक) और कुकुरमुत्ते (शोषित) के प्रतीकों के द्वारा वर्ग संघर्ष का चित्रण किया गया है । गुलाब शोषक अभिजात्य वर्ग का और कुकुरमुत्ता शोषित-साधारण मनुष्य का प्रतीक माना गया है ।

3.1.3 विषय विवेचन :

3.1.3.1 निराला : जीवन परिचय :

छायावाद काव्य के महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का हिन्दी साहित्य में अद्वितीय स्थान है । उनकी प्रमुख साहित्य कृतियों का अनुशीलन करने से पहले उनके जीवन-चरित, व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होना सुविधाजनक होगा । अत: हम अधोलिखित पंक्तियों में महाकवि निराला के जीवन-चरित, व्यक्तित्व और कृतित्व को संक्षेप में देखने का प्रयास करेंगे ।

जन्मस्थान : महाकवि 'निराला' का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले के अंतर्गत आनेवाली 'महिषादल' रियासत में हुआ था ।

जन्मतिथि : निराला की जन्मतिथि के संबंध में विद्वानों में मतभिन्नता है । पं. राम नरेश त्रिपाठी का मानना है कि निराला का जन्म सं. 1955 (सन 1898 ई.) के माघ सुदी एकदशी के दिन हुआ था । डॉ. श्याम सुंदर दास माघ सुदी एकादशी को स्वीकारते हैं परंतु सं. 1955 के स्थान पर सं.1953 (सन 1896 ई.) को स्वीकारने का आग्रह करते हैं । डॉ. राम विलास शर्मा, डॉ. बच्चनसिंह आदि का मानना है कि

निराला का जन्म माघ शुक्ल एकादशी सं. 1953 (सन् 1896 ई.) में हुआ था । अधिकांश विद्वानों और निराला द्वारा स्वीकृत तिथि सं.1953 (सन् 1896 ई.) की बसंत पंचमी है ।

पूरा नाम : – निराला का बचपन का नाम सूर्यकुमार, सूर्यकांत तथा सुर्जकुमार था । उनका पूरा नाम 'सूर्यकांत रामसहाय तिवारी' था परंतु वे सूर्यकांत त्रिपाठी के नाम से पहचाने जाते हैं। 'मतवाला' पत्रिका में काम करते समय उन्होंने 'मतवाला' से तुक मिलाने के लिए अपने नाम के साथ 'निराला' शब्द जोड दिया था । तबसे 'निराला' उपनाम से ही अधिक चर्चित रहे हैं ।

माता–पिता :– सूर्यकांत की माता रूक्मिणी देवी सूर्यकांत के जन्म के बाद तीन वर्ष में ही भगवान को प्यारी हो गई थी । परिणामस्वरूप बचपन से ही सूर्यकांत को मातृ स्नेह से वंचित रहना पडा था । रूक्मिणी देवी का रंग सांवला शरीर औसत स्थूल, कद मँझोला, आँखे बडी तथा मुखाकृति आकर्षक थी । वह सात्विक स्वभाव की धर्मप्राप्त महिला थी । उनमें पति के प्रति गहरी सेवा भावना थी ।

निराली जी के पिताजी रामसहाय त्रिपाठी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के 'गढकोला' गाँव के निवासी थें । वे नौकरी हेतु महिषादल रियासत (बंगाल) में बस गए थे । महिषादल के राजा की नौकरी करनेवाले रामसहाय ने अपनी निष्ठा, लगन, ईमानदारी और प्रयत्नों के बल पर 'जमादार' का पद (100 सिपाहियों के प्रमुख) प्राप्त किया था । वे अक्खड एवं कठोर स्वभाव के थे । पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होने सूर्यकांत की माँ के साथ विवाह किया था । वह भी अधिक सालों तर जीवित नहीं रही । वह सूर्यकांत के जन्म के बाद तीन साल में ही मृत्यू का शिकार हो गई है । दो बीवियों की मृत्यू के कारण रामसहाय बहुत ही उदास, दुःखी और उद्विग्न रहते लगे थे । उनका कठोर स्वभाव और अधिक कठोर बन गया था । परिणामत: मातृ स्नेह से वंचित सूर्यकांत पितृ स्नेह से भी वंचित हो गए थे । पिता की कठोरता का शिकार एकमात्र संतान निराला को होना पडता था । निराला जी के पिताजी हनुमान के भक्त थे । वे रूढियों के कट्टर विरोधी थे मगर जातीय संस्कारों में पूर्ण निष्ठा रखते थे।

बचपन – माता पिता के स्नेह से वंचित होने के कारण निराला बचपन में बहुत ही शरारती थे । उनको बचपन में बंधनों से चीढ और स्वतंत्रता से प्रेम था । उनकी स्वच्छन्दता और पिता के स्वभाव की रूक्षता एवं कठोरता से निराली जी के स्वभाव में निरंकुशता आ गई थी । बेटे की निरंकुशता से पिता रामसहाय और भी कठोर होते गए और बात बात पर बेटे को पीटते रहें । वे बेटे को पीटते समय यह भी भूल जाते थे कि वे अपनी एकमात्र संतान को वे अपने क्रोध का शिकार बना रहे हैं । पिता के कठोर और रूखे व्यवहार के कारण निराला जी की निरंकुशता और मार खाने की आदत बढती ही गई जिससे उनमें सहनशीलता आ गई थी ।

शिक्षा – निराली जी की स्कूली शिक्षा का आरम्भ पाँच साल की अवस्था में हुआ था । उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बंगाली स्कूल से शुरू हो गई थी । बंगाली स्कूल में चार–पाँच साल तक पढाई के बाद उन्होने एक अंग्रेजी हाईस्कूल में प्रवेश लिया था । स्कूली शिक्षा में सूर्यकांत की रुचि नहीं थी । एण्ट्रेस तक आते–आते उन्होंने बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी के अनेक काव्यग्रंथों तथा रामायण–महाभारत एवं दर्शन संबंधी

अनेक ग्रंथों का पठन किया था । स्कूली शिक्षा से मन उचाट जाने के कारण उन्होंने बिना एण्ट्रेस पास किए स्कूली शिक्षा को अलविदा कहा ।

वैवाहिक जीवन – सूर्यकांत की उम्र 11 साल की होते ही उनका विवाह तय होकर १४ वर्ष की अवस्था से पहले ही चाँदपूर (जिला – फतहपूर, उत्तरप्रदेश) निवासी पं. रामदयाल दूविवेदी की ११ साल की बेटी मनोहरा देवी के साथ संपन्न हुआ था । मनोहरा देवी सुंदर, सुशील, साध्वी, हिन्दी साहित्य और भाषा के प्रति प्रेम रखनेवाली तथा गायनादि कलाओं में कुशल थी । वह स्वभाव से शांत, सुसंस्कृत और धार्मिक थी । उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रयासों के कारण ही हिन्दी कवि के रूप में निराला जी के व्यक्तित्व का विकास हुआ था । पत्नी मनोहरा देवी अपनी चिंता किए बिना पति को सौन्दर्य, संगीत तथा साहित्य की ओर प्रेरित करती थी ।

मनोहरा देवी के आगमन से निराला जी का पारिवारिक जीवन सुख–शांति से संपन्न बन गया था । एक दिन खान–पान को लेकर पति–पत्नी में झगडा हुआ । पत्नी मनोहरा देवी को पति की सामिष (मांसाहार) खाने की आदत पसंद नहीं थी । इसी बात को लेकर दोनों में अनबन हो गई और मनोहरा देवी अपने मायके चली गई। मायके में ही 'इन्फ्लुऐन्जा' की बीमारी से उनकी मृत्यू हो गई । पत्नी की अकाल मृत्यु से निराला जी बुरी तरह से टूट गए थे ।

संतान – मनोहरा देवी ने एक पुत्र (रामकृष्ण) और एक पुत्री (सरोज) को जन्म दिया था । सरोज की असमय पर मृत्यू होने के कारण निराली जी पर दु:ख का पहाड टूट पडा था ।

पारिवारिक जीवन – बचपन से मातृ स्नेह से वंचित निराली जी को पत्नी सुख का विरह भरी जवानी में झेलना पडा था । पत्नी की मृत्यु से उनका स्वभाव विक्षिप्त सा बन गया था । वे घण्टों स्मशान में बैठकर सोचते रहते थे और हड्डी, चूडी का टुकडा या राख मिल जाने पर उसे घण्टों तक दिल से लगाए घुमते थे ।

पत्नी वियोग से दु:खी निराला जी को पिता, चाचा, भाई, भौजाई, भतीजी की अकाल मृत्यू का भी दु:ख झेलना पडा था । उस समय उनकी आयु केवल 21 साल की थी । इस आयु में उन्हें अपने दो बच्चों और भतीजों की जिम्मेदारियों को उठाना पडा था । बडे धैर्य, दृढता और साहस से उन्होंने पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह किया था । पारिवारिक संकटों, बाधाओं और जिविका की समस्या से वे काफी हद तक त्रस्त रहते थे ।

नौकरी – व्यवसाय – परिवार की जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक निभाने के लिए निराला जी ने महिषादल के राजा की नौकरी करना शुरू किया था । नौकरी के साथ उनकी काव्य साधना भी शुरू थी । पारिवारिक समस्याओं के बढते दबाव के कारण उन्होंने महिषादल की नौकरी का त्यागपत्र दिया और वापस अपने गाँव लौट आए । जीविका चलने के लिए उन्होंने लेखन को आधार बनाया । जीविका के बोझ के कारण उन्होंने बाजार और प्रकाशकों की माँग के अनुसार लेखन कार्य शुरू किया परिणामस्वरूप उन्हें अपने स्वभाव के साथ समझौता करते हुए निम्न स्तर का लेखन करना पडा था ।

एक साल तक रामकृष्ण मिशन के दार्शनिक पत्र 'समन्वय' का संपादन करने के बाद निराला जी सेठ महादेव प्रसाद के 'मतवाला' के संपादक नियुक्त किए गए थे । वहाँ काम करते समय उन्होने 'मतवाला' के संपादक नियुक्त किए गए थे । वहाँ काम करते समय उन्होंने 'मतवाला' से तुक मिलाने के लिए अपना नाम 'निराला' किया था । उसी नाम से वे जाने जाने लगे और प्रसिद्ध भी हो गए । 'मतवाला' से त्यागपत्र देकर वे लखनऊ चले गए और पैसों के लिए सब कुछ लिखते रहें ।

आर्थिक संकटों का सामना करनेवाले निराला का शारीरिक स्वास्थ्य बिगडता चला गया । आर्थिक दुरवस्था, पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ, बीमारियाँ, विपरित परिवेश आदि अनेक कारणों से उनके मानसिक संतुलन पर विपरित परिणाम हुआ । उनके जीवन का अंतिम काल बहुत ही संकटों, बाधाओं और प्रतिकूल वातावरण का रहा था । वे नंगे पैर और नंगे सिर, कंधे में फटा हुआ कुरता, टाँगो में गंदी लुंगी पहनकर पैदल ही इलाहाबाद के लीडर प्रेस, इंडियन प्रेस से दारागंज आया - जाया करते थे । उनकी आर्थिक विपन्नता अंतिम दिनों में और भी बदतर बनती गई थी । महादेवी वर्मा ने साहित्यकार संसद में उनकी व्यवस्था की थी लेकिन वहाँ पर भी वे अधिक समय तक टीक नहीं पाए । वे दारागंज (इलाहाबाद) में रहने लगे थे तब उनका स्वास्थ्य गिरता गया । केन्द्र सरकार और राज्य सरकार ने उन्हें मासिक वृत्ति बाँध दी लेकिन वह उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नही थी ।

निराला : व्यक्तित्व :

हिन्दी साहित्य क्षेत्र के दैदीप्यमान व्यक्तित्व के धनी निराला जी का संपूर्ण जीवन का उनके व्यक्तित्व का विस्तार था । उनके व्यक्तित्व के निम्नलिखित पहलू उनकी पहचान थे -

प्रभावी व्यक्तित्व :

निराला बहुत ही सुंदर और पौरुष का प्रतीक थे । उनका शारीरिक गठन बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावी था । उनका कद छह फीट से भी अधिक उँचा पूरा, विशाल एवं पुष्ट था । उनका रंग गेहुँआ, ललाट विशाल और बाल लम्बे एवं आकर्षक थे । उनका व्यक्तित्व साधक ऋषि के समान लगता था । उनकी आँखों से दार्शनिक की तृष्णा झलकती थी । सरोजनी देवी नायडू इन्हें देखकर ग्रीक दार्शनिक समझ बैठी थी। एक ग्रीक महिला इन्हें देखकर ग्रीक देवता 'अपोलो' का अवतार मानने लगी थी । निराला जी की आँखे बहुत सतेज, विशाल, गंभीर और कमल पुष्प के समान थी । उनको देखनेवालों पर उनकी आँखों का अमिट प्रभाव पडता था । भीड में भी उनका प्रभावी व्यक्तित्व अपनी छाप छोडता था ।

अच्छे खिलाडी - लम्बे, चौडे, स्वस्थ एवं बलिष्ठ शरीर वाले निराला जी को बचपन से खेल- कूद, कुश्ती का शौक था । वे फूटबॉल, क्रिकेट के अच्छे खिलाडी थे । बन्दूक चलाने, घोडे की सवारी करने, हरमोनियम बजाने में भी वे विशेष रूचि रखते थे ।

मेजबानी के शौकिन - अतिथि का सत्कार - सम्मान करनेवाले निराला जी खाने-खिलाने के शौकिन थे । मित्रों को अपने हाथों से भोजन बनाकर खिलाना उनका प्रिय शौक था । मेजबानी को अपना पवित्र

कर्तव्य मानने वाले निराला मांसाहारी भोजन में विशेष रुचि रखते थे । पान, तम्बाकू सूरती खाने की आदत वाले निराला कभी-कभी मदिरा सेवन भी करते थे । अत्यधिक मेजबानी के कारण हमेशा उनको आर्थिक अभावों का सामना करना पडता था । उनके अनेक मित्र उनकी मेहमानदारी का अनुचित लाभ उठाते रहें परिणामस्वरूप निराला जी को गरीबी में ही जीवन-यापन करना पडा था । अतिथि को भगवान मानने वाले निराला जी अतिथि के लिए आवश्यक वस्तुएँ बाजार से स्वयं लाते थे । इतना ही नहीं मेहमानों के जूठे बर्तन माँजने में वे आनंद अनुभव करते थे ।

पहनावे के प्रति सजग – निराला जी अपने पहनावे के प्रति बहुत ही सजग रहते थे । पास में पैसा होने पर वे बढिया कपड़े खरिदते थे । कवि सम्मलनों तथा समाराहों में बढिया कुर्ता, महीन धोती, रेशमी चादर और घडी पहनकर जाना उन्हें अच्छे लगता था ।

संवेदनशील – गरीबों, दीन-दुखियों के प्रति निराला जी बहुत प्यार रखते थे । जरूरतमंदों को सब कुछ देना उनकी आदत थी । सम्मेलनों – समारोहों से लौटते समय वे भिखारियों को अपने कपडे, चादर, पैसे सब कुछ देते थे । गंगा नहाकर लौटते समय उन्होने धोती, लोटा तक दान दिया था । औरों की वेदना, यातना उनसे देखी नहीं जाती थी ।

उदार स्वभाववाले – संवेदनशील स्वभाव के निराला जी उदार स्वभाववाले थे । औरों के दु:ख से दु:खी होनेवाले निराला जी ने भावावेश में कपडे, गहने, पैसे, बर्तन सब कुछ दान में दिया था ।

स्वाभिमानी – निराला जी अपने स्वाभिमान के प्रति अत्यधिक सजग रहते थे । उन्हें हमेशा लगता था कि हिन्दी साहित्य जगत् ने उन्हें वह सम्मान नहीं दिया जिसके वे हकदार थे । फलत: उनके मन में आक्रोश का भाव रहता था । अपने स्वाभिमान की रक्षा की धुन में उन्होंने अनेक लोगों से शत्रुता मोल ली थी । अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए औरों पर प्रहार करनेवाले निराला जी चाहते थे कि उनके प्रहार झेलनेवाले उनके प्रहार की ओर अनदेखी कर उनकी सहायता करें ।

करूणा के सागर – संवेदनशील, भावुक, कवि ह्रदयवाले निराला जी करूणा के सागर थे । दीन-दु:खियों के प्रति उनके मन में अपार करूणा थी । उनका साहित्य और जीवन इसका साक्षी है ।

विरोधी तत्त्वों का संगम स्थल – निराला जी के व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी तत्त्वों का संगम एवं समन्वय हुआ था । अक्खडता के साथ सह्रदयता और कोमलता, विद्रोह के साथ सहनशीलता उनके व्यक्तित्व के अनोखे पहलू थे ।

युवकों के मार्गदर्शक – होनहार एवं प्रतिभाशाली युवकों के प्रति विशेष अपनत्व रखनेवाले निराला जी युवकों के मार्गदर्शन के लिए सदैव तत्पर रहते थे । उत्साही, सन्मार्ग पर चलनेवाले युवकों को प्रेरणा देने एवं मार्गदर्शन करने में उन्हें परम संतोष अनुभव होता था ।

पारदर्शक व्यक्तित्व – कथनी और करनी में समन्वय रखने वाले निराला जी भीतर और बाहर से एक समान थे । उन्होंने किसी भी बात को गोपन नहीं रखा था । उनके जीवन में किसी प्रकार का छिपाव या परदा नहीं था। उनका संपूर्ण जीवन पारदर्शी था । उनमें सच्चाई का तेज था ।

दरिया दिलवाले – शत्रुता, प्रतिशोध की भावना से दूर रहने वाले निराला जी दरिया दिलवाले इन्सान थे । उनपर कीचड उछालनेवालों को उन्होने माफ करते हुए अपने उदार ह्रदय का परिचय दिया था । उन्होंने प्रतिपक्ष का उत्तर क्रोध से न देकर प्रेम और अपनी रचनाशीलता से दिया था । उनका ह्रदय सब प्रकार से शुद्ध और निर्मल था। उनमें छल–कपट नहीं था । वे विरोधियों को भी सम्मान देते थे । वे औरों के हिस्से का भी दर्द, दु:ख अपने हिस्से में लेते थे ।

कबीर से तुलनीय – डॉ. भगीरथ मिश्र जी ने निराला जी की कबीर के साथ तुलना करते हुए उनमें कबीर के समान फक्कडपन, मस्तमौलापन, क्रान्तिकारी स्वर, स्वाभिमान की भावना, करूणा, तन्मयता, रूढि विद्रोह, निर्भीकता, ओजस्विता, संवेदनशीलता देखी थी ।

संगीत प्रेमी – निराला जी का कष्ट बहुत मधुर था । वे बचपन से सुस्वर गाते थे । उनका गायन सुनकर सुननेवाले झूम उठते थे । वे अच्छे गायक और संगीत के पारखी थे । मुक्तछंद में लिखी हुई उनकी कविता उनके कंठ से सुननेवाले उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे । अपने गायन से श्रोता को मंत्रमुग्ध करनेवाले निराला जी संगीतज्ञ एवं संगीत प्रेमी थे ।

विद्रोही – प्रथा, परम्पराओं और रूढियों के प्रति निराला जी के मन में विद्रोही विचार थे । बेटी की शादी में सामाजिक प्रतिबंन्धों का विद्रोह करनेवाले निराला जी ने साहित्यिक जीवन में छन्दबंधन का विद्रोह कर मुक्तछंद को अपनाया था । उनके कारण ही मुक्तछंद को सम्मान प्राप्त हुआ था ।

क्रान्तिकारी - सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक बंधनों का विद्रोह करनेवाले निराला जी क्रान्तिकारी कवि थे । उनके विचार और व्यवहार में क्रान्तिकारी भाव उपलब्ध होते थे ।

अध्ययन प्रिय – निराला जी अध्ययन प्रिय कवि थे । बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी भाषाओं पर अधिकार रखनेवाले निराला जी ने उक्त भाषाओं की श्रेष्ठ साहित्य कृतियों का गहन अध्ययन किया था । रवीन्द्रनाथ, तुलसीदास तथा अन्य अनेक कवियों की कविताएँ उन्हें कंठस्थ थी । उनके साहित्यकारों और भाषाओं का सूक्ष्म अध्ययन करनेवाले निराला जी साधक कवि थे ।

प्रकृति प्रेमी – ग्रामीण परिवेश से जुड़े निराला जी प्रकृति प्रेमी थी । छायावादी काव्य धारा के आधारस्तंभ निराला जी ने प्रकृति का अनेक रूपों में चित्रण किया है ।

हिन्दी प्रेमी – बंगाल में जन्मे निराला जी के मन में बंगला भाषा, साहित्य और प्रदेश के प्रति अत्यधिक प्रेम था। पत्नी की प्रेरणा से उनके मन में हिंदी के प्रति रुचि विकसित हो गई थी । वास्तव में हिन्दी उनकी मातृभाषा थी उसके प्रति पत्नी के कारण प्रेम विकसित हुआ था । परिणामस्वरूप हिन्दी की

उपेक्षा, अपमान करनेवालों के प्रति उनके मन में गुस्सा रहता था । हिंदी के सम्मान के लिए उन्होंने महात्मा गांधीजी और पण्डित नेहरू से भी झगडा किया था ।

परिवार का जिम्मेदार मुखिया – माता, पिता, चाचा, भाई, भौजाई, भतीजी की अकाल मृत्यू से निराला जी को परिवार की सारी जिम्मेदारियों का बोझ उठाना पडा था । उन्होंने अपनी जिम्मेदारियों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया था । उन्होंने लड़का, लड़की तथा भतीजों की देखभाल, परवरिश, विवाह सभी कुछ किया था । संतानों और भतीजों के भविष्य की सोचनेवाले निराला जी अपनी आमदनी परिवार के लिए खर्च करते थे ।

बेटी के प्रति अत्याधिक प्रेम – परिवार के प्रति प्रेम – स्नेह रखनेवाले निराला जी बेटी सरोज को विशेष चाहते थे । उन्होने सरोज की शादी सारे बंधनों और रूढियों को तोडकर की थी । उसकी अकाल मृत्यू से निराला का मनोबल ही टूट गया था ।

उक्त गुणों के साथ-साथ निराला जी कोमलता, सहृदयता, फक्कडता, अक्खडता, तेजस्विता, स्वच्छन्दता, आत्मीयता, प्रसन्नता, चिंतनशीलता, निर्भीकता, सहनशीलता, दार्शनिकता, ओजस्विता, स्पष्टता, प्रसन्नता, संवेदनशीलता, उदात्तता, स्पष्टवादिता, ममत्व, नवीन के प्रेमी, अत्याचार एवं शोषण के विरोधी, दानी आदि अनेकानेक गुणों से समृद्ध व्यक्तित्व के धनी थे । हिन्दी साहित्य जगत् उनकी समृद्ध साहित्य संपदा को हमेशा गौरवान्वित करता रहेगा ।

मृत्यू – गरीबी विपरित परिस्थितियाँ, बीमारियाँ, मानसिक असंतुलन विक्षिप्तता आदि कारणों से निराला जी धीरे-धीरे कमजोर होते गए और 15 अक्तूबर सन 1961 के दिन सुबह 9 बजकर 23 मिनिट पर हमेशा के लिए हिन्दी साहित्याकारों से लुप्त हो गए ।

निराला का रचना संसार

छायावाद के प्रमुख स्तंभ, प्रगतिवाद के सूत्रधार, प्रयोगवाद के समर्थक कवि निराला जी का रचना संसार विस्तृत एवं समृद्ध है। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानियाँ, निबंध, रेखाचित्र, जीवनियाँ, आलोचनात्मक निबंध, अनुवाद तथा नाटक सभी कुछ लिखे हैं । उनके साहित्य को विद्वान कई वर्गों में विभाजित कर विश्लेषित करते हैं। अधोलिखित पंक्तियों में हम निराला जी के साहित्य का विधागत परिचय प्राप्त करेंगे –

* **काव्य ग्रंथ (कविता संग्रह)** – 1) अनामिका (प्रथम भाग) 2) परिमल 3) गीतिका 4) अनामिका (द्वितीय भाग) 5) तुलसीदास 6) कुकुरमुत्ता 7) अणिमा 8) बेला 9) नए पत्ते 10) अपरा 11) अर्चना 12) आराधना, 13) सांध्यका कली 14) राग विराग (डॉ. राम विलास शर्मा द्वारा संपादित) ।
* **खंडकाव्य** – 1) तुलसीदास ।
* **उपन्यास –** 1) अप्सरा 2) अलका 3) प्रभावती 4) निरुपमा 5) चोटी की पकड 6) काले कारनामे 7) उश्रृंखल 8) चमेली ।

※ **कहानी संग्रह –** 1) लिली 2) सखी 3) चतुरी चमार 4) सुकुल की बीबी ।

※ **रेखाचित्र –** 1) कुल्ली भाट तथा बिल्लेसूर बकरिहा ।

※ **निबंध संग्रह –** 1) प्रबंध पद्म 2) प्रबन्ध प्रतिमा 3) चाबूक 4) प्रबन्ध परिचय ।

※ **आलोचनात्मक ग्रंथ –** 1) रवीन्द्र कविता कानन ।

※ **अनुवाद – कथा साहित्य –** 1) आनन्दमठ 2) कपाल कुंडल 3) चन्द्रशेखर 4) दुर्गेश नंदिनी 5) कुष्णकांत का बिल 6) युगलांगुलीया 7) रजनी 8) देवी चौधरानी 9) राधा रानी 10) विष वृक्ष 11) राज सिंह 12) महाभारत ।

※ **धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य –** 1) परिव्राजक श्री रामकृष्ण कथामृत (पाँच भाग) 2) विवेकानंद के व्याख्यान 3) राजभोग (अप्रकाशित) ।

※ **जीवनी साहित्य –** 1) ध्रुव 2) भीष्म 3) राणा प्रताप ।

※ **नाटक –** 1) समाज 2) शकुन्तला 3) उषा–अनिरुद्ध (तीनों नाटक अप्रकाशित हैं ।) ।

※ **रूपांतर –** 1) रामचरित मानस - (खडीबोली में रूपांतर)

※ **अन्य –** 1) हिन्दी - बँगला शिक्षक 2) रस अलंकार 3) वात्स्यायन कामसूत्र 4)) तुलसीकृत रामायण की टीका ।

※ **संपादन –** 1) मतवाला 2) सुधा 3) रंगीला ।

निराला के काव्य का सामान्य परिचय

उच्चकोटि की प्रतिभा के स्वामी निराला जी का हिन्दी साहित्यकोश में अद्वितीय स्थान है । छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की चर्चा उनके बिना अधूरी एवं एकांगी मानी जाती है । साहित्य की अनेक विधाओं को समृद्ध करनेवाले निराला जी की काव्य कृतियाँ यों है -

※ **अनामिका** - अनामिका निराला जी की प्रथम काव्य कृति है । इसका प्रकाशन सन् 1923 ई. में कलकत्ता के श्री. नवजादिक लाल द्वारा किया गया था । अनामिका में निराला जी की प्रारम्भिक 9 कविताएँ संग्रहित थी । अनामिका रचना अनुपलब्ध है मगर इसमें संग्रहित 'पंचवटी प्रसंग', 'जूही की कली', 'तुम और मैं' आदि का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस संग्रह की अधिकांश रचनाओं के विषय अध्यात्म और प्रेम से सम्बन्धित है । अनामिका का साहित्यिक मूल्य कम और ऐतिहासिक मूल्य अधिक है। यह हिंदी की प्रथम विशुद्ध स्वच्छन्दतावादी रचना मानी जाती है । इस संग्रह में संकलित रचनाओं में से अनेक रचनाएँ 'मतवाला', 'नारायण', 'समन्वय' नामक पत्रों में प्रकाशित हुई थी । इसमें प्रयुक्त 'मुक्तछन्द' के प्रयोग से हिंदी काव्य जगत् में हलचल मच गई थी ।

* **परिमल** – सन 1924 से 1927 ई. तक निराला जी द्वारा लिखित कविताओं का प्रकाशन 'परिमल' काव्य संग्रह के रूप में सन् 1929 ई. में हुआ था । परिमल में 48 कविताएँ संग्रहित हैं । इसमें से 7 कविताएँ अनामिका से ली गई हैं । परिमल की कविताओं के विषय हैं – प्रार्थना परक, प्रकृति संबंधी, प्रेम विषयक, नारी सौन्दर्य, देश प्रेम, आध्यात्मिक एवं सामाजिक । स्वयं निराला जी का मानना था की 'परिमल' में उनकी प्राथमिक अधिकांश रचनाएँ सुनी हुई रचनाएँ हैं। उन्होने इनको तीन खण्डों में विभाजित किया है । जैसे – सममात्रिक सानयानुप्रास कविताएँ, विषम मात्रिक साननुयाप्रास कविताएँ, स्वच्छन्द छन्द में लिखित कविताएँ । परिमल में संकलित 'बादल राग', 'धारा', 'रास्ते के फूल', 'कवि', 'महाराजा शिवाजी का पत्र' 'जागो एक बार', आदि कविताओं का विशेष महत्त्व है । शिल्प और छन्दगत नवीनता, ओज और प्रखरता आलोच्यसंग्रह की विशेषाएँ हैं ।

* **गीतिका** – गीतिका का रचनाकाल सन् 1936 ई है । रहस्यवादी गीतों की प्रधानता होनेवाले गीतिका में लगभग 101 गीत हैं जो विविध भावों में रचे गए हैं। सरल, प्रवाहमयी और संमलकृत भाषा, श्रृंगार और सौन्दर्य का चित्रण, अनेक छन्दों का प्रयोग गीतिका की विशेषताएँ हैं । इसमें से अधिकांश गीत शास्त्रीय संगीत के आधार पर लिखे गऐ हैं । जयशंकर प्रसाद ने गीतिका का गौरव करते हूए इसे 'हिंदी के लिए सुन्दर उपहार' कहा है ।

* **अनामिका (द्वितीय)** – सन् 1938 ई में प्रकाशित अनामिका (द्वितीय) प्रथम अनामिका से पूर्णत: भिन्न है । निराली जी ने यह नामकरण स्वर्गीय बाबू महादेव प्रसाद सेठ की याद में कृतज्ञता के हेतू किया है । इसमें संग्रहित 'राम की शक्तिपूजा', 'तोडती पत्थर', 'सरोज स्मृति', 'किसान की नई बहू की आँखे', 'वनबेला', 'दान', प्रेयसी आदि कविताएँ हिन्दी साहित्य का गौरव और निराला जी की अक्षय कीर्ति का मापदण्ड है । प्रस्तुत संग्रह में निराला जी की प्राय: सभी प्रवृत्तियॉ उपलब्ध होती है ।

* **तुलसीदास** – सन् 1938 ई में प्रकाशित 'तुलसीदास' निराला जी की प्रौढ काव्य कृति है । इस खण्डकाव्य के 100 छन्दों और 600 पंक्तियों में तुलसीदास के जीवन को आधार बनाया है । पत्नी के प्रति आसक्त तुलसीदास और पत्नी द्वारा फटकार के कारण उनके मन में उदित राम की भक्ति भावना का चित्रण तुलसीदास खण्डकाव्य का विषय है । व्यक्ति के अन्तर्मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के द्वारा सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन, प्रकृति का सजीव चित्रण, सामाजिक और पारिवारिक जीवन मी मार्मिक अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक उत्थान की कामना एवं प्रेरणा, देशप्रेम की भावना विकसित करता आदि तुलसीदास खंडाकाव्य के उद्देश्य हैं।

* **कुकरमुत्ता** – सन् 1943 ई में प्रकाशित कुकरमुत्ता शीर्षक संग्रह में 'कुकुरमुत्ता' नाम की एक लम्बी कविता और अन्य सात कविताएँ संकलित हैं । इसके द्वितीय संस्करण में अन्य कविताओं को हटाया गया है । इसमें से हटाई गई कविताओं को 'नये पत्ते' संग्रह में स्थान दिया गया है । कुकुरमुत्ता प्रगतिवादी विचारों की अभिव्यक्ति करनेवाली रचना है । इस व्यंगप्रधान रचना में चित्रित कुकुरमुत्ता दीन-हीन निम्न वर्ग

का और गुलाब अभिजात्य शोषक वर्ग का प्रतीक है । कुकुरमुत्ता गुलाब पर तीव्र प्रहार करता हुआ अपना महत्व, स्थान एवं उपयोगिता सिद्ध करता है ।

* **अणिमा** – सन् 1943 ई. में प्रकाशित 'अणिमा' में 44 कविताएँ संग्रहित हैं । इस संग्रह में व्यक्ति विशेष पर तथा अन्य विषयों पर कविताएँ हैं । व्यक्ति विशेष पर होनेवाली कविताओं में प्रमुख हैं – 'संत कवि रैदास', आचार्य रामचंद्र शुक्ल', 'कवि वर प्रसाद', 'भगवान बुद्ध' आदि । अन्य विषयों पर होनेवाली कविताओं में प्रमुख हैं – 'सहस्त्राब्धि', 'उद्बोधन' आदि । 'अणिमा' संग्रह में संकलित कविताओं के प्रमुख विषय अध्यात्म आत्म साक्षात्कार, महापुरूषों की वंदना आदि हैं । इस संग्रह से निराला जी की प्रगतिवादी विचारधारा की यात्रा का परिचय मिलता है ।

* **बेला** – सन् 1943 ई. में प्रकाशित बेला में निराला जी की 95 रचनाएँ संकलित हैं । इसकी अधिकांश कविताओं में उर्दू छन्दों का प्रयोग किया गया है । बेला के सभी गीत गेय हैं । इसके विषय श्रृंगारिक, दार्शनिक, सामाजिक, विनोदपूर्ण, राष्ट्रीय विचारों वाले एवं विनय भाव से सम्बन्धित हैं।

* **नए पत्ते** – सन् 1946 ई. में प्रकाशित नए पत्ते की कविताओं मे तीखा व्यंग्य है । सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक रूढियों और परम्पराओं पर करारा व्यंग्य करना कवि का उद्देश्य उपलब्ध होता है । 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'गरम पकौडी', 'कुत्ता भौंकने लगा' आदि रचनाओं से निराला जी की व्यंग्य और विनोदप्रियता स्पष्ट होती है ।

* **अर्चना** – आध्यात्मिक, सामाजिक, श्रृंगारिक, प्राकृतिक आदि विषयों से सम्बन्धित गीतों का संग्रह 'अर्चना' का प्रकाशन सन् 1950 ई. में हुआ था । आलोचकों ने अर्चना में संग्रहित गीतों को आत्मवादी गीत और जनवादी गीत के रूप में विभाजित किया है । इन गीतों में गेयता और संगीतात्मकता का प्रभाव उपलब्ध होता है । इसकी भाषा–शैली प्रभावी एवं उच्च कोटि की है ।

* **आराधना** – सन् 1951 और 1952 ई. में निराला जी द्वारा लिखित 96 गीत आराधना में सम्मिलित किए गए हैं । आराधना का प्रकाशन सन् 1953 ई. में हुआ था । गेयता और साहित्यिकता के सुन्दर समन्वय से युक्त आराधना के गीतों में विषय वैविध्य उपलब्ध होता है । आस्था के प्रभावी स्वरों से युक्त आराधना के गीतों का लक्ष्य महान है । ये गीत सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम के तत्त्वों से समृद्ध हैं ।

* **अपरा** – सन् 1950 ई. में प्रकाशित 'अपरा' पूर्व प्रकाशित काव्य संग्रहों की सुन्दर कविताऔं संकलन है । इसमें 78 कविताएँ हैं । उनमें से कई एक कविताएँ प्रथम 'अपरा' में ही प्रकाशित हो गई हैं । लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है । इस संग्रह से निराला जी के काव्य विकास का क्रमिक इतिहास उपलब्ध होता है । अपरा में छायावादी युग, प्रगतिवादी युग और प्रयोगवादी युग की प्रवृत्तियों और विभिन्न प्रयोगों का प्रतिनिधित्व करनेवाली रचनाएँ संकलित हैं ।

✻ **सांध्यका कली** – सन् 1969 ई. में प्रकाशित 'सांध्य का कली' में 68 रचनाएँ संकलित हैं । श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की स्थापना करनेवाले प्रस्तुत संग्रह में भक्ति, प्रेम, सौन्दर्य, श्रृंगार, प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित विषय हैं। सहज, सरल, प्रभावी भाषा इस संग्रह की विशेषता है ।

✻ **कुकरमुत्ता**– कुकुरमुत्ता के प्रथम संस्करण में कुकरमुत्ता शीर्षकवाली लम्बी कविता के साथ अन्य 7 कविताएँ संकलित थी । इसके द्वितीय संस्करण से उन सात कविताओं को हटा दिया गया है । केवल 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक वाली लम्बी कविता इसमें है । प्रथम संस्करण की हटाई गई कविताएँ 'नऐ पत्ते' में संकलित की गई हैं ।

✻ **राग–विराग** – राग–विराग डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा संपादित निराला जी की श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह है । शर्मा जी ने इसके संपादन में ऐतिहासिक कालक्रम पर ध्यान दिया है ।

उपर्युक्त काव्य कृतियों के साथ–साथ 'कविश्री', 'गीत गुंज' तथा खडीबोली में रूपांतरित 'रामचरित मानस' को निराला जी की काव्य कृतियाँ मानी जाती हैं ।

✻ **निराला के काव्य की विशेषताएँ –**

निराला जी बहुमुखी प्रतिभा के श्रेष्ठ कलाकार थे । छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद की तत्कालीन विशेषताएँ निराला जी की काव्य में उपलब्ध होती हैं ।

काव्य जगत् के व्यापक फलक पर अपनी अमिट तस्वीर बनानेवाले निराला जी के काव्य में उपलब्ध होनेवाली विषयगत तथा शिल्पगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं । यहाँ हमने पाठ्क्रम में सम्मिलित कविताओं को प्रधानता दी है ।

विषयगत विशेषताएँ –

✻ **वैयक्तिकता तथा आंतरिक अनुभूति –** छायावादी काव्य के प्रमुख सूत्रधार निराला जी ने काव्य की विषय–वस्तु के रूप में व्यक्तिगत जीवन को आधार बनाया है । उन्होंने अपने जीवन के निजी प्रसंगों, घटनाओं एवं व्यक्तिगत भावनाओं को काव्य वस्तु बनाया है । 'सरोज स्मृति' निराला के व्यक्तिगत जीवन की अभिव्यक्ति है । अपनी प्रिय पुत्री सरोज की अकाल मृत्यू से निराला जी की पूरी तरह टूट गए थे । सरोज के विरह से उद्भूत दुःख, वेदना, पीडा निराला जी की व्यक्तिगत अनुभूति थी, जिसकी अभिव्यक्ति 'सरोज स्मृति' के रूप में हुई है ।

✻ **विद्रोह का स्वर तथा स्वच्छन्दता –** प्राचीन एवं परम्परा के विरूद्ध विद्रोह तथा स्वच्छन्दता का चित्रण छायावादी काव्य की मूल प्रेरणा रही है । निराला जी अन्य छायावादी कवियों की तुलना में अधिक विद्रोही एवं स्वच्छन्दता के प्रेमी थे । साहित्यिक जीवन में संघर्ष करनेवाले निराला जी व्यक्तिगत जीवन में भी संघर्ष करते रहे थे । प्रिय पुत्री सरोज के विवाह में परम्पराओं को तोड़नेवाले निराला जी ने काव्य बंधनों को तोडकर मुक्तछन्द का प्रयोग किया था । उनकी स्वच्छन्द प्रियता सरोज स्मृति में निम्नलिखित रूप में व्यक्त हुई है –

'तुम करो ब्याह, तोडता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम
लग्न के पढूँगा स्वयं मंत्र
यदि पण्डित जी होंगे स्वतंत्र ।'

※ **वेदना – दु:ख की अभिव्यक्ति –** वेदना, दु:ख एवं करूणा की प्रभावी अभिव्यक्ति करनेवाले कवि के रूप में निराला जी का परिचय 'सरोज स्मृति' स्नेह निर्झर बह गया आदि कविताओं के द्‌वारा होता है ।

※ **सौन्दर्य चित्रण –** छायावादी कवि मूलत: प्रेम और सौन्दर्य के कवि माने जाते हैं । उनकी सौन्दर्य भावना सूक्ष्म एवं उदात्त है । छायावादी कवि निराला जी ने युवा सरोज के सौन्दर्य का चित्रण बहुत प्रभावी ढंग से किया है । सरोज में यौवनोचित चंचलता आ गई थी । अपने सौंदर्य के भार से वहा काँप रही थी । उसके उज्ज्वल सौन्दर्य के स्पर्श से समस्त दिशाएँ और वन प्रकाशित हो उठे थे । जैसे –

'कॉपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर ।'
'कर पार कुंज तारूण्य सुधर
आई लावण्य भार थर – थर ।'

निराला बेटी के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, संम्पूर्ण आकाश, पृथ्वी, वृक्ष, कलियाँ और कोंपले तेरे सौन्दर्य से सौंदर्यशाली बनकर तेरे सौन्दर्य का परिचय देने लगे थे ।

※ **रहस्य भावना –** निराला जी के काव्य में रहस्यवाद की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से उपलब्ध होती है । वास्तव में रहस्यवाद को छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में गिना जाता है । प्रकृति के सभी उपकरणों में चेतना का आरोप छायावाद की पहली सीढी है और किसी असीम के प्रति अनुराग जनित आत्म विसर्जन का भाव अथवा रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढी है ऐसा विद्‌वानों का मानना है । प्राय: सभी छायावादी कवियों के काव्य में रहस्यवाद उपलब्ध होता है । निराला जी छायावादी कवि होते के कारण उनके काव्य में रहस्यवाद का अंकन उपलब्ध होता है । निराला जी की सुप्रसिद्‌ध रचना सरोज स्मृति में सौन्दर्यमूलक रहस्य भावना उपलब्ध होती है । जैसे –

'धीरे धीरे फिर बढा चरण
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज तारूण्य सुधर
आई लावण्य भार थर – थर ।''

❊ रूढि विरोध – प्रगतिवादी विचारक निराला जी अपनी संस्कृति का दम्भ भरनेवाली को ललकारते रहें । वे शोषण मूलक और अंधविश्वासी रूढियों का विरोध करते रहें । उनका रूढि विरोध 'सरोज स्मृति' में स्पष्ट दिखाई देता है । जैसे –

'फिर सोचा मेरे पूर्वगण
गुजरे जिस राह, वही शोभत
होगा मुझको, यह लोक रीत ।'
'कुछ मुझे तोडते गत विचार
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते में हूँ अक्षय ।'

निराला की कुकुरमुत्ता रूढि विरोध रचना है । इसमें शोषण करनेवाली प्रथा-परम्पराओं का विरोध किया है । शोषणमूलक एवं अत्याचारी समाज व्यवस्था के प्रति निराला जी आक्रोश व्यक्त करते हैं ।

❊ विषम समाज व्यवस्था का विरोध – शोषण करनेवाली और विषमता का समर्थन करनेवाली समाज व्यवस्था का निराला विरोध करते हैं । वे पूंजीवादी और सामन्तवादी समाज व्यवस्था पर प्रहार करते रहे हैं। कुकुरमुत्ता शोषणमूलक और सामाजिक तथा आर्थिक विषमता के विरूद्ध एक व्यापक प्रतिक्रिया पर आधारित कविता है । निराली जी चाहते थे कि समाज का प्रत्येक मनुष्य सुखी हो । इसलिए वे शोषण और विषमता की नींव पर खडी व्यवस्था का विरोध करते रहें ।

❊ वर्ग संघर्ष का चित्रण एवं समर्थन – प्रगतिवादी काव्य में वर्ग संघर्ष का चित्रण होता है । प्रगतिवादी कवि निराला जी के कुकुरमुता काव्य में गुलाब और कुकुरमुते का संघर्ष वर्ग संघर्ष के रूप में चित्रित करते हैं । प्रथम खंड में गुलाब और कुकरमुत्ते का गुलाब कोई उत्तर नहीं देता है । इससे उच्चवर्गीय का ठंडा व्यवहार स्पष्ट होता है । कविता के द्वितीय भाग में चित्रित गुलाब पर कुकुरमुत्ते की विजय निराला जी के प्रगतिवादी विचारों को व्यक्त करती है । वर्ग संघर्ष में कवि निम्न शोषित वर्ग के पक्षधर बन गए है ।

❊ शोषक वर्ग के प्रति घृणा – शोषित शोषक संघर्ष में प्रगतिवादी कवि निराला जी शोषितों के पक्षधर रहे हैं। उनकी कुकरमुत्ता कविता में चित्रित गुलाब और कुकरमुत्ते का संघर्ष वर्ग संघर्ष के रूप में चित्रित है । इस संघर्ष में कवि निराला जी ने शोषित कुकुरमुत्ते के प्रति अपनी सहानुभूति चित्रित है । कुकुरमुत्ता गुलाब का विरोध करता हुआ कहता है –

'अबे । सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू दंगो आब
खून चूसा स्वाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटेलिस्ट ।'

कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का और गुलाब पूंजीपति शोषक वर्ग का प्रतीक माना जाता है । दोनों के संघर्ष में कवि ने कुकुरमुत्ते के प्रति सहानुभूति प्रकट की है ।

※ **प्रकृति चित्रण –** प्रकृति के प्रति प्रेम छायावाद का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्त्व है । समस्त छायावादी कवियों ने प्राय: प्रचलित सभी शैलियों पर प्रकृति के मनोरम वर्णन लिखे हैं ।

छायावाद के मेरूदण्ड निराला जी के काव्य में प्रकृति का बडा ही भव्य और उदात्त रूप अंकित हुआ है । बादलराग, जूही की कली, शेफालिका, नर्गीस, वनबेला आदि कविताएँ इसका प्रमाण है । आलम्बन, उद्दिपन, मानवीकरण, अलंकरण आदि रूपों में प्रकृति का प्रभावी चित्रण निराला जी की विशेषता है । कुछ उदाहरण देखिए –

मानवीकरण रूप में प्रकृति चित्रण – ‘कॉपी भर निज अलोक भार
काँपा वन, काँपा दिक् प्रान्तर
परिचय, परिचय, पर खिन्न सकल
नभ, पृथ्वी, द्रम कलि किसलय दल ।’

अलंकरण रूपमें प्रकृति चित्रण – ‘देखती मुझे तू हँसी मंद,
होठों में बिजली सी फॅसी ।’

आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण – ‘वह लता वही थी, जहाँ कला ।’

उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण

※ **प्रतीक योजना –** छायावादी कवि निराला जी के काव्य में प्रतीकात्मक शैली का प्रभाव प्रयोग हुआ है । शोषक-शोषित वर्ग का संघर्ष गुलाब और कुकुरमुते के प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुआ है । कुकुरमुत्ता सामान्य जन का प्रतीक और गुलाब अभिजात्य या पूंजीपति वर्ग का प्रतीक माना जाता है । कुकुरमुत्ते की बोली में ठेठ देशीपन, अकड और बडबोली पन है क्योंकि सामान्य जन में निश्चलता अकृतित्रमता और आत्मविश्वास होता है । कुकुरमुता बढ बढकर बकवास तो बहुत करता है परंतु प्रतिशोध लेने की शक्ति उसमें नहीं है, इसलिए वह गुलाब के लिए आशिष्ट जैसे शालीन संबोधन का प्रयोग करके ही रह जाता है । भारत का आम आदमी भी ऐसा ही है ।

※ **लाक्षणिक भाषा प्रयोग –** निराला जी ने लाक्षणिक भाषा का प्रयोग कर अपने काव्य को सुन्दरता से प्रस्तुत किया है ।

※ **छन्द योजना –** विद्रोही कवि निराला जी ने परम्परागत छन्द व्यवस्था का विरोध कर मुक्त छन्द का प्रयोग किया है । निराला के कारण हिन्दी साहित्य विश्व में मुक्त छन्द को स्थान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है ।

⁕ **शब्द प्रयोग –** विषयानुकुल हिंदी, अँग्रेजी, संस्कृत, बँगला शब्दों का प्रयोग करनेवाले निराला जी ने ग्रामीण बोलियों एवं स्थानीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है । तत्सम, तद्‌भव, देशी, विदेशी, अर्ध तत्सम, अर्ध तद्‌भव शब्दों का प्रभावी प्रयोग निराला जी की शिल्पगत विशेषता है ।

विम्बों का प्रयोग, अलंकारों का प्रयोग, संगीतात्मकता के साथ साथ क्रान्ति की भावना, नारी के विविध रूपों का चित्रण, नारी मुक्ति की कामना, मानवतावादी जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति, यथार्थवादी जीवन चित्रण, धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था, साम्यवाद का गौरव गान, वर्ग विहीन समाज स्थापना का सपना, सामाजिक कल्याण की इच्छा आदि अनेकानेक विशेषताएँ निराला जी के काव्य में मिलती है ।

3.1.3.2 'कुकुरमुत्ता' कविता का परिचय :

एक नवाब था । उसने अपने बगीचे का सौंदर्य बढ़ाने के लिए फारस से गुलाब मँगवाकर लगाए थे । उसका बगीचा बहुत बडा और देशी विदेशी फूलों-फलों और वृक्ष-लताओं से समृद्‌ध था । बगीचे में अनेक रंगबिरंगे फव्वारे शोभायमान थे । बगीचे की देखभाल के लिए अनेक माली और मजदूर तैनात थे ।

मौसम आने पर फारस अर्थात ईरान से मँगवाए गए गुलाब पर फूल खिल गए । उसके सौंदर्य से बगीचे की शोभा बढ गई थी । गुलाब अपने सौंदर्य और महत्त्व पर खुश था । उसके पास ही कुकुरमुत्ता उगा हुआ था । उसे गुलाब का महत्त्व स्वीकार नहीं था । उसे लगता था कि गुलाब गरीबों के श्रम, खून चूसकर बडा होता है । अत: वह गुलाब से कहता है तू कैपीटलिस्ट अर्थात पूंजीवादी है । तूने औरों के खून, खाद, श्रम का शोषण कर रंग और शोभा एवं सुगंध पाई है । तू काँटोंवाला होने के कारण औरों को चूभता है । तेरी चूभन से बचने के लिए तुझसे लोग दूर रहते हैं । तू बादशाहों, राजाओं, अमीरों का प्यारा होने के कारण साधारण लोगों में से दूर रहता है ।

कुकुरमुत्ता अपनी महत्ता, उपयोगिता स्पष्ट करता हुआ कहता है कि मैं स्वयं उगता हूँ उगाने की आवश्यकता नहीं है । वह अपना बड़प्पन सिद्‌ध करते हुए पैराशूट, सुदर्शन चक्र, छाता, पिरॅमिड, बडे बडे मंदिरों, भवनों और वास्तुओं में अपने अस्तित्व को दिखाता है । वह गुलाब को फटकारता है । उसकी दृष्टि में गुलाब शोषक-शासक का प्रतिनिधि है ।

कविता के दूसरे भाग में कुकुरमुत्ते के कबाब की प्रशंसा और गरीब मजदूर बस्ती का वर्णन है । नवाब की बेटी मजदूर की बेटी से कुकुरमुत्ते के कबाब की प्रशंसा सुनकर कबाब खाने की इच्छा प्रकट करती है और कुकुरमुत्ते का कबाब खाने पर खुश होती है । उससे कुकुरमुत्ते की प्रशंसा सुनकर नवाब भी कुकुरमुत्ते का कबाब चाहता है मगर मौसम न होने के कारण माली अपनी असमर्थता प्रकट करता है । माली की बात सुनकर नवाब गुलाब के स्थान पर कुकुरमुत्ता लगाने की बात करता है तब माली उसे समझाता है कि कुकुरमुत्ते अपने आप उगता है ।

प्रस्तुत कविता में चित्रित गुलाब शोषक वर्ग का और कुकुरमुत्ता शोषित वर्ग का प्रतीक है । निराला शोषित वर्ग के हमदर्द होने के उन्होंने कुकुरमुत्ते का महत्त्व अर्थात निम्न शोषित वर्ग का महत्त्व स्थापित करने का प्रयत्न किया है । संपूर्ण कविता वर्ग संघर्ष के विचारों को व्यक्त करती है ।

3.1.3.3 'कुकुरमुत्ता' कविता का आशय – प्रथम भाग

निराला की 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता प्रगतिवादी विचारधारा की रचना है । इसमें चित्रित कुकुरमुत्ता सर्वहारा, शोषित वर्ग का और गुलाब पूंजीपति शोषक वर्ग का प्रतीक है । दो भागों में विभाजित आलोच्च कविता का सरल अर्थ इस प्रकार है –

एक नवाब साहब थे । वे फूलों के शौकिन थे । उन्होंने अपने बगीचे लगाने के लिए फारस से गुलाब के पौधे मँगवाए थे । उन्होंने अन्य पौधों के साथ फारस से लाए पौधे लगवाए थे । उन्होंने बगीचे की देखभाल करने के लिए माली और नौकरों की नियुक्तियाँ कर फारस से लाए गए गुलाब की ओर विशेष ध्यान देने का आदेश दिया था ।

अच्छी देखभाल के कारण नवाब का पुष्पोधन गजनी (फारस) के बादशाह के पुष्पोद्यान के समान सुंदर लगने लगा था । फारस से लाए गए गुलाबों के कारण बगीचे के सौंदर्य में चार चाँद लग गए थे । नवाब ने अपनी पुष्पवाटिका को विशेष प्रकार से तैयार किया था । अनेक प्रकार के फूलों और क्यारियों से पुष्पवाटिका की सुंदरता और भी बढ गई थी । फारस से लाया गया गुलाब सिरमौर बनकर बगीचे का सौंदर्य बढा रहा था । बगीचे में जुही, बेला, चमेली, नरगिस, रातरानी, कमलिनी, चम्पा, गुलमेहन्दी गेंदा आदि देशी फूलों के साथ गुलशब्बो, गुलअब्बास, गुलखैरू आदि विदेशी फूल थे । वहाँ लाल, धानी, चम्पई, आसमानी, हरे, गुलाबी (फिरौजी), सफेद, पीले, बादामी, बासन्ती आदि अनेक रंगों के फूल खिले हुए थे । उस बगीचे में आम, लीची, संतरे आदि फलों के अनेक पेड थे । पेड पौधों की सींचाई की अच्छी व्यवस्था थी और अनेक फव्वारे वहाँ के सौंदर्य को शोभायमान बना रहे थे । खिलनेवाली कलियों से भीनी-भीनी गंध निकलती थी । उस गंध से गंधित हवा मंद-मंद चलती थी । प्रेम से झुलती हुई डालियों पर बुलबुले चहकती थी । उस बगीचे में अनेक प्रकार के पक्षियों ने अपने घरौंदे बनाए थे । वहाँ साफ-सुथरे और लम्बे रास्ते थे । रास्तों के दोनों ओर के ऊँचे-ऊँचे पेड घनी छाया देते थे । रास्ते इतने लम्बे थे कि उनका अंतिम छोर दिखाई देता था । उद्यान के बीचोबीच बना हुआ विश्रामगृह नवाब साहब के ऐश्वर्य की कहानी सुनाता था । वहाँ अनेक झरने, छोटी-छोटी पहाडियाँ तथा साफ सुथरी फुलवारियाँ उत्साह भर देती थी ।

मौसम आने पर फारस से लाया गया गुलाब का पौधा फूलों से लदकर खिल उठा । उसके खिलने का गंभीर प्रभुत्व पूरे बाग पर छा गया । उसके सौंदर्य के सामने अन्य फूलों का सौंदर्य उदास बन गया था । वहाँ पास की पहाडी की गंदगी में उगा हुआ कुकुरमुत्ता अपना सीना तानकर गुलाब को दुतकारते हुए कहने लगा, 'अबे, गुलाब सुन, तूने सुगंध, चमक और रंग अवश्य प्राप्त किए हैं, पर तू अपनी वास्तविकता को मत भूल । अरे असभ्य गुलाब याद रख कि तूने पूंजीपति के समान खाद का खून चूसकर ही सब कुछ प्राप्त किया है । औरों का खून चूसकर तू इस डाल पर गर्व से नाचने लगा है । कुकुरमुत्ता गुलाब को फटकारते

हुए कहता है तूने न जाने कितने लोगों का खून चूसा है । तू पूंजीपति के समान औरों के शोषण पर जीवित है । तुमने पूंजीपति के समान अपनी देखभाल के लिए अनेक गुलामों को रखा है । तुम्हारी सेवा के लिए रखे गए माली और नौकर केवल तुम्हारे लिए सर्दी-गर्मी सहने के लिए विवश बन गए हैं । तुम्हारा व्यवहार पूंजीपति के समान होता है । अपने पास आनेवाले के साथ पूंजीपति दुर्व्यवहार करता है । उसी प्रकार तुम भी तेरे पास आनेवाले के साथ व्यवहार करते हो । तुम पास आनेवाले को चूभते हो । तुम्हारा दुर्व्यवहार देखकर साधारण मनुष्य तुम्हारे पास आता नहीं है ।' राजाओं बड़े-बड़े शहंशाहों और अमीर का तू प्यारा होने के कारण तुम्हारे पास साधारण गरीब मनुष्य नहीं आता है । तू धनवानों के समान समाज से अलग-अलग है ।

कुकुरमुत्ता गुलाब को फटकारते हुए कहता है ये गुलाब ! यदि तूने खाद का रस प्राप्त न किया होता तो क्या तेरा अस्तित्व होता । तू तो एकदम नीच है । अगर तुझे दूसरों के रस-रूप का सहारा न मिला होता तो अभी-अभी तेरी जो कली विकसित हुइै है, वह कली भी मुरझाकर काँटा बन गई होती । अरे गुलाब ! तू व्यर्थ ही बडा तथा खानदानी बनने का घमंड करता है । तुझे रोज रोज वह नूरजहाँ चाहिए जो तेरा इत्र और सार निकाला करे अर्थात पूंजीपतियों को तो विलास पूर्ति के साधन चाहिए । गुलाब पूंजीपतियों के समान विलास-वासना में मग्न रहता है । विलास वासना के कुचक्र में फँसा मनुष्य पथ भ्रष्ट होकर विपरित दिशा में बह जाता है । जिसका कोई अंत नहीं है । अत: कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है तू अपने नीच व्यवहारों से लोगों को ऐसा पथभ्रष्ट कर देता है कि फिर उनके उद्धार की सारी संभावनाएँ समाप्त हो जाती है। तेरी संगत ही कुसंगत मानी जाती है । तेरी संगति में रहनेवाला ऐसी दुर्दशा को प्राप्त होता है कि उसके आश्रय और आराम के सारे स्वप्न बरबाद हो जाते हैं । तेरे साथ रहनेवाले मनुष्य को दिखावा कर जीना पडता है । आशय यह है कि पूंजीपति धनवान के साथ रहनेवाले साधारण मनुष्य को गुलामी विवशता का जीना नसीब होता है ।

कुकुरमुत्ता अपना महत्त्व और उपयोगिता सिद्ध करते समय गुलाब को अयोग्यता, पराधीनता, शोषक वृत्ति के लिए ताने देता है । कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है मैं स्वाभाविक-प्राकृतिक रूप से उगता हूँ और अपनी क्षमता से विकसित होता हूँ मगर तू पराधीन है । मैं डेढ बिता तक बढ गया हूँ और ऊँची पहाडी पर चढकर उगा हूँ । मुझे तेरी तरह किसी ने पाल-पोसकर नहीं उगाया है, अपितु मैं तो अपने आप ही जमीन से उग आया हूँ । मेरी किसी ने भी देखभाल नहीं की है और न ही मुझे किसीने दाना-पानी चुगाया है । तेरी तरह मेरी कलम नहीं उगाई जाती है बल्कि मेरा जीवन स्वयं ही है । तू बनावटी-नकली चीज है और मैं असली और मौलिक हूँ । तू बकरा और मैं तुझे मारनेवाला कसाई हूँ । तू रँगे लोमडी की तरह धोखेबाज है और मैं धुला हुआ अर्थात निर्मल हूँ । मैं पानी की भाँति सबके काम आता हूँ । मैं स्थाई हूँ और तू अस्थाई है । तू क्षणभंगूर और देखने भर की चीज है लेकिन मैं उपयोगी हूँ । तू किसी के काम न आने के कारण व्यर्थ है लेकिन मैं सबके काम आता हूँ । तू लोगों को बिगाड देता है लेकिन मैं लोगों को सहारा देकर उठाता हूँ । तू लोगों को नपुंसक बनाकर कर्तव्यबोध से दूर हटाकर उनकी रोटी छीन लेता है लेकिन मैं

परिश्रमी होने के कारण लोगों को कार्यप्रवण बनाकर एक के बदले तीन-तीन रोटियाँ देता हूँ । मेरे कारण दुनिया के काम शुरू है । शेर भी मेरे सामने गधा (तुच्छ) है ।

कुकुरमुत्ता अपना उपयोग एवं बडप्पन गुलाब से कहता है । वह समझाता है चीन में जिस छाते का प्रयोग किया जाता है वह मेरे ही स्वरूप की नकल करके बनाया गया है । भारत में जो छत्र का प्रयोग किया जाता है, उसमें भी मेरे ही आकार-प्रकार का दर्शन किया जा सकता है । कुकुरमुत्ता गुलाब से अपना लोहा मनवाने के लिए स्वयं के बडप्पन की बाते करता हुआ कहता है, गुलाब ! तू चारों ओर देख ले तुम्हे मेरा महत्त्व मालूम हो जाएगा । मैं सब जगह सीना तानकर उपस्थित हूँ । आज का पैराशूट भी मेरे ही रूप की नकल और उसका विकास है । विष्णु के हाथों में होनेवाले सुदर्शन चक्र में भी मेरा ही रूप है । मेरा टेढापन भी दुनिया के लिए उपयोगी है । अगर मुझे उलटा कर दिया जाए, तो मैं माता यशोदा की मथनी बन जाता हूँ । मेरे बडप्पन की कहानी बहुत लम्बी है । तू जरा पास आकर टेढा होकर देख ले तो मैं नक्शा बनाने का यंत्र या साधन बन जाऊँगा । मैं धनुष्य से खींचा गया राम का तीर दिखाई दूँगा या बड-बडे कामों में प्रयुक्त होनेवाले बलराम के हल के रूप में दिखाई दूँगा । प्रात: काल में उगनेवाले सूर्य के रूप में तथा रात को प्रकाशित करनेवाले चंद्रमा में तुम्हे मेरा ही रूप दिखाई देगा । इस कलियुग में मैं तुझे ढाल के रूप में दिखाई दूँगा । नाव के नीचे तले के रूप में और ऊपर तनी हुई पाल के रूप में मेरा ही रूप है । जिसमें सारी दुनिया अपने लिए तथा दूसरों के लिए अनाज तौलती है । मूँछों का बाँकापन तथा उन्मुक्त जुल्फों का टेढापन मेरे ही वक्रस्वरूप के परिचायक है । रुपया, अधा रुपया (पचास पैसे), पावली (पच्चीस पैसे), पाँच रुपये, दस रुपये आदि सिक्कों में मेरा ही रूप है । सभी स्थानों पर मैं ही विराजमान हूँ । मेरे ही आकार में धमाका करनेवाला बम बनाया जाता है । मैं ही सबको पार लगाता हूँ और मैं ही बीच धारा में डूब जाता हूँ । मैं ही डिब्बे का ढाँचा हूँ और पान में मैं ही चूना हूँ ।

कुकुरमुत्ता अपने अस्तित्व एवं उपस्थिति के बारे में गुलाब से कहता है, मैं उसी प्रकार स्वयंभू हूँ जिस प्रकार बेंजाइन का दर्शनशास्त्र है । जैसे 'ओम्' ब्रह्मावर्त (सरस्वती और दृशद्वती नदियों के बीच का प्रदेश) स्वत: बन गए हैं । वैसे मैं भी बन गया हूँ । जैसे दुनिया की निर्मिति हो गई वैसे ही मेरी भी निर्मिति हो गई है । अपने सर्वव्यापी अस्तित्व के बारे में कुकुरमुत्ता कहता है जैसे साडी पर सिकुडन अपने आप पड जाती हैं, जैसे साफ कपडे पर सफाई होती है उसी प्रकार में भी सर्वव्यापक हूँ । जैसे कॉस्मोपोलीटन, मैट्रोपोलीटन, फ्रायड और लेनिन आदि बन गए, उसी प्रकार मैं भी बन गया हूँ । दर्शन की जरूरत और उसकी पूर्ति मैं ही हूँ । सरसता में होनेवाला धोखा भी मैं ही हूँ । जैसे राजधानियों में रूस की राजधानी लेनिनग्राड का महत्त्व है, उसी प्रकार मेरा भी महत्त्व है । लेखकों में जैसे कई लोग भाग्यवान होते हैं, उसी प्रकार मैं भी हूँ ।

कुकुरमुत्ता अपने गुणों और रूपों का वर्णन कर अपना महत्त्व स्थापित करता है । वह कहता है, दोहरा हो जाने पर मेरा रूप शिव के डमरू का हो जाता है । एक ओर रहने से मैं वीणा बन जाता हूँ । कभी तो मैं वाद्यों की गंभीर ध्वनि बनकर निकलता हूँ । और कभी क्षीण ध्वनि बनकर गुँजता हूँ । मैं सक्षम पुरुष भी हूँ और निर्बल नारी भी हूँ । मैं मृदंग, तबला, सितार, तानपुरा और सुंदरियों का सूर-बहार हूँ । मैं लायर नामक अंग्रेजी बाजा भी हूँ । मुझसे ही लीरिक (गीतिकाव्य) की निर्मिति हो गई हे । संस्कृत, फारसी,

अरबी, ग्रीक, लैटिन भाषाओं में मिलनेवाले मंत्र, गजल और गीत सभी कुछ मैं ही हूँ । मुझ पर सभी समर्पित होते हैं । सभी मेरे लिए जीने-मरने को उत्सुक हैं । सभी मुझ पर फिदा होते हैं ।

कुकुरमुत्ता अनेक प्रयोगों और आकारों में अपने अस्तित्व तथा बहुज्ञता स्पष्ट करते हुऐ कहता है वायलिन, बेंजों आदि समस्त वाद्यों को बजानेवाला मैं ही हूँ । घण्टा, घण्टी, ढोल, डफ, घडियाल, शंख, तुरही, मँजीरे, करताल, कारनेट, क्लेरीअनेट, ड्रम, फ्लूट, गिटार, आदि वाद्य और इन्हें बजानेवाला हसनखाँ, बुद्ध, पीटर आदि भी मैं ही हूँ । मुझे ये सब जानते पहचानते मानते हैं ।

नृत्य-संगीत से अपना रिश्ता जोडते हुए कुकरमुत्ता अपना महत्त्व सिद्ध करता है । वह कहता है नृत्य-संगीत के सभी प्रकारों में मेरा अस्तित्व है । नाच में जो जीवन देता है, नर्तक के पैर में जो ताल-लय सुशोभित होती है, उसमें मेरे ही जीवन की झलक है । कथ्थक, कथकली, बाल डान्स हो या मनिपुरी, गरबा, बहेलिया डान्स हो तथा हाथ-पैर, गरदन, भवै, पैर आदि मटकानेवाला आफ्रिकन, यूरोपियन किसी भी प्रकार का नृत्य क्यों न हो, सब में मेरी ही बनावट (गढन) है । सभी हाव-भाव में मेरी ही प्रेरणा रहती है । विश्व के किसी भी छोर में, जहाँ कही भी शासकों में युद्ध हुए हैं । वहाँ मैंने ही पैतरे बदले हैं । सर्व प्रकार झगडे यहाँ तक कि पति-पत्नी के झगडे, वर्ग-संघर्ष के झगडे सब मेरे ही कारण हैं । जहाँ पर कोई सूदखोर-मुनाफाखोर सामान्य गरीब मनुष्य को नोच-खसोट करता हुआ सूद लेकर नोचता हुआ दिखाई देता है, वहाँ मेरा ही भैरव नृत्य चरम विकास पर पहुँचा जाता है ।

कुकुरमुत्ता अपने आपको गुलाब की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए रस, नृत्य और नाटकों में अपने आपको व्याप्त बताता है । वह गुलाब से कहता है तेरी तरह मेरे शरीर में हड्डियाँ, काँटे आदि कुछ भी नहीं है और न ही मेरे शरीर में किसी प्रकार की गाँठें ही हैं । मैं तो मात्र रस ही रस हूँ । मेरा रस चुराकर सारी दुनिया रसमय हो गई है । वाल्मिकी, व्यास जैसे ऋषियों ने मेरे ही रस का प्रयोग कर श्रेष्ठ ग्रंथों की रचना की है । कालिदास, भास जैसे महाकवियों ने मुझसे प्रेरणा लेकर उच्च कोटि की रचनाएँ निर्माण की है । फारस के श्रेष्ठ दार्शनिक कवि हाफिज, बंगाल के विश्वकवि रवीन्द्रनाथ जैसे विश्व विख्यात कवियों ने मेरे ही किनारे खडे होकर विश्व को देखा है । टी. एस. इलियट ने भी अपने सिद्धान्तों के रूप में मेरा ही वर्णन किया है । कुकुरमुत्ताने अपने आपको श्रेष्ठ साहित्यकारों को प्रेरणा देनेवाला सिद्ध किया है ।

कुकुरमुत्ता विश्व की श्रेष्ठ वास्तुओं के साथ भी अपना रिश्ता जोडता है । वह कहता है जन्म के साथ जिस प्रकार स्वाभाविक रूप से अम्मा, बुआ के रिश्ते जुड जाते हैं, उसी प्रकार सब बाते मुझसे जुडी हुई हैं । मिस्र के पिरामिड भी मेरी की शक्ल के नमुने हैं । प्रसिद्ध गणितज्ञ यूक्लिड भी मेरा ही शिष्य था । रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर, जगन्नाथ आदि तीर्थ स्थानों में जो सुंदर मंदिर हैं, मैं उन सबको निर्माण करनेवाला हूँ । जैसे सुवर्ण सब प्रकार के गहनों को निर्माण करता है, वैसे सभी का निर्माता मैं हूँ । दिल्ली का कुतुबमीनार, आगरे का ताजमहल, कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल, बगदाद की मस्जिद, दिल्ली की जामा मस्जिद, सैण्ट पीटर्स (इंग्लैड) का गिरजाघर तथा घण्टाघर आदि सभी के गुम्बदों की गढन पर मेरे अस्तित्व की मोहर लगी हुई है । आर्य, फारसवासी, इसाई आदि किसी भी नस्ल का व्यक्ति क्यों न हो, सभी पर मेरे व्यक्तित्व का प्रकाश पडा है । प्राचीन मध्यकालीन तथा आधुनिक काल के सभी लोगों का

साथ रिश्ता है । चीनी, जापानी, रूसी, अमेरिकन, अटैलियन, अंग्रेज, आदि सभी में मेरा ही व्यक्तित्व विकसित हुआ है । ईंट, पत्थर, लकडी या मकडी के जाले ताने-बाने कहीं के मकान हो, सभी मेरी ही छाप के घेरे की नकल मात्र है । सभी के सिरों को फँसानेवाला फँदा भी मैं ही हूँ । टर्की टोपी, दुपलियाँ टोपी, किश्तीनुना या अंग्रेजी टोपी सभी मेरी नकल पर बनी हैं । सभी प्रकार की टोपियों के अंग्रेजी टोपी सभी मेरी नकल पर बनी हैं । सभी प्रकार की टोपियों के विभिन्न आकारों-प्रकारों में भी मैं ही हूँ । अत: गुलाब मैं तुमसे बडा एवं श्रेष्ठ हूँ ।

कुकुरमुत्ता सर्वव्यापी परमतत्त्व के समान अपने आपको मानकर अपनी शेखी बघारता है । कविता के प्रथम भाग में कुकुरमुत्ते की बडप्पन की बाते हैं । वह गुलाब को फटकारता है ।

कुकुरमुत्ता कविता का आशय-द्‌वितीय भाग :

कुकुरमुत्ता शीर्षक कविता का दूसरा भाग लोककथा पर आधारित है । इस लोककथा के अनुसार नवाब के घर खाना बनानेवाली बंगालिन की बेटी के साथ नवाब की बेटी की मित्रता थी । एक दिन नवाब की बेटी ने बंगालिन सहेली के घर कुकुरमुत्ते का कवाब खाया । उसने अपनी माँ से कुकुरमुत्ते के कवाब की प्रशंसा की । माँ ने बंगालिन के घर जाकर कुकुरमुत्ते के कबाब खाए । नवाब ने कबाब की प्रशंसा सुनकर कुकुरमुत्ते का कबाब खाने की इच्छा प्रकट की लेकिन कुकुरमुत्ते का मौसम समाप्त होने के कारण उन्हे एक साल तक अपना मन मारकर रहना पडा ।

कविता के दूसरे भाग में चित्रित कुकुरमुत्ता बिल्कुल चूप है । वह न अपना महत्त्व प्रतिपादित करता है और न ही गुलाब को गालियाँ देता है । इस भाग की विषयवस्तु निम्न प्रकार की है -

बाग के बाहर कुछ झोपडे थे । वे अधबने थे । झोपडों की जगह गंदी थी । वहाँ पर नालियों का गंदा पानी जमा हुआ था । वह पानी सडा हुआ था । नाली में कीडे बिलबिले रहे थे । वहाँ पर हड्डियाँ बिखरी हुई तथा पंखों की गड्डियाँ पडी थी । कहीं पर मुर्गी और उसके अण्डे थे तो कहीं पर कडे धूप में सुख रहे थे । वहाँ की हवा में दुर्गन्ध भरी हुई थी । गंदगी से भरे झोपडों में जिन्दगी प्रसन्नता के गीत गा रही थी । गन्दी नालियों और सडे पानीवाली बस्ती में रहकर भी लोग प्रसन्न थे । बस्ती में रहनेवाले सब लोग नवाब के नौकर थे । वे अफ्रीका में निवास करनेवाले बहुत पुराने लोग थे । उन में खाना बनानेवाले, खाना परोसनेवाले, पहरा देनेवाले, घोडे की सेवा करनेवाले, पानी भरनेवाले, तथा सिपाही, नाई, धोबी, तेली, कहार, कुम्हार थे । उनमें कुछ हाथी को हाँकनेवाले, ऊँट हाँकनेवाले, गाडी हाँकनेवाले थे । उनमें हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं था । उनकी एक ही जाति थी गरीब मजदूर । वे एक परिवार के सदस्यों की तरह रहते थे । उन सारे मजदूरों का भाग्य एक समान था । वे एक जैसा शोषित जीवन व्यतीत करते थे । उस बस्ती में रहनेवाले बच्चे, बुढे, जवान, महिलाएँ, अधेड सभी का जीवन शोषितों एवं शापितों जैसा था । सभी का सुख-दुःख समान था । सभी साथ-साथ रोते, हँसते थे । वे हमेशा भूख की चिंता में रहते थे । वे नवाब की सेवा करते थे । उनमें से कुछ बाग की रखवाली और सिंचाई का काम करते थे ।

मजूदर बस्ती में मोना नामक औरत थी । वह माली की पत्नी थी । वह बंगाल की हरनेवाली थी । उसकी लड़की का नाम गोली था । गोली नवाब साहब की बेटी बहार की सहेली थी । बहार की दृष्टि में सारा संसार उसके आदेश का पालन करनेवाला था । वह कविता में ही बाते करती थी ।

गोली की बंगालिन माता बहुत सुशील और सभ्य थी । वह कविता में रूचि और गति रखती थी । उसे कविता का अच्छा ज्ञान था । वह साफ-सुथरी रहती थी । उसकी वाणी में मीठास थी । उसकी बाते सुनकर बहार खुश होती थी । मोना की बाते सुनकर बहार को ऐसा लगता था, मानो सरगम का राग और सारंगी की तान सुन ली है । मोना यह समझती थी कि मुझे अच्छा गुरू मिल गया है जो न मेरे कान पकडता है और न खींचता है । बचपन में ही गोली ने अपनी माता से बाते करने और जीवन व्यतीत करने का आकर्षक ढंग सीख लिया था । इसी कारण गोली और बहार की दोस्ती बनी थी । बहार का अधिक समय गोली और मोना के साथ व्यतीत होता था । वह सुबह शाम गोली के पास जाया करती थी । वह पूरे दिन भर अपनी कोठी से बंगालिन के घर तक अनेक चक्कर लगाया करती थी । गोली भी वैसाही करती थी । बहार और गोली मानो साथ-साथ रहती थी । दोनों का अधिकांश समय एक साथ व्यतीत होता था । दोनों अपनी-अपनी बात करती थी मगर कोई किसी की बात का बुरा नहीं मानती थी । दोनों के मन के तार और सुर मिल गए थे । दोनों आनंद से एक दूसरे पर बातों की चोट कर खिल-खिलाकर हँसती हुई खुशी से झूमती थी । उस समय वे दोनों की उम्र सात साल की थी ।

एक दिन बहार ने गोली से बाग में घूमने चलने का आग्रह किया । दोनों साथ-साथ धूप-छाँव की तरह बाग में घूमने गई । उस समय बहार की बाँह गोली के गले में पडी हुई थी । उनके साथ टेरियर नाम का कुत्ता था और एक नौकरानी भी थी । रास्ते में उन्हें कुँट से पानी भरनेवाली कुछ औरतें मिली । वे औरतें गोली और बहार को एक साथ देखकर घबरा गई । उनकी दशा ऐसी हो गई मानो उन्होंने अपने पतियों को अपराधी के रूप में अदालत में खडा देख लिया हो ।

पानी भरनेवाली एक औरत ने बहार और गोली को जाते हुए देखकर दूसरी से कहा देखो, वह मोना बंगालिन की बेटी गोली जा रही है । दूसरी एक औरत ने कहा 'गोली की माँ मोना बंगालिन क्रोध में भरी भैंस के समान है; परंतु वह नवाब साहब की आँखों में समा गई है । उन दोनों में नाजायज संबंध है । मोना हर दिन नवाब साहब के महल में जाती है । इसके भाग्य जाग गए हैं । इसकी आँखों में लाज शर्म नहीं रही है । ऐसी औरत मर जाए, उसे आग लग जाए तभी अच्छा होगा । नवाब साहब की कोठी से मोना की झोपडी में अच्छी चीजें और सामान प्रतिदिन में लाया जाता है । मोना के लिए आभूषण बन रहे हैं । उसके खाने में मांस-कबाब होता है ।' इतना कहकर पानी भरनेवाली औरतें अपने घडे लेकर चल पडी ।

बहार और गोली बाग में घूमने लगी । बहार मौलसिरी की छायादार पेड की छाया में कुछ देर तक बैठी रही । वह वृक्ष-लताओं के सौंदर्य को निहारती रही । उसने देखा कि कुछ तितलियाँ उड रही हैं, कुछ चीडियाँ डालियों पर बैठकर चहक रही हैं । मतवाले भौरे घूम रहे हैं । मकडी के जाल में फँसे हुए भौरे ने जाल तोडकर छुटकारा प्राप्त किया है । वह आकाश और पेड-पौधों का सौंदर्य निहारती रही ।

बहार गोली के साथ जिस बाग में घूमने गई थी, वहाँ बडे–बडे पेड थे । वे पेड बडे–बडे बादशाहों के समान लगते थे । उन पर खिले हुए फूलों को देखकर ऐसा लगता था मानो बादशाहों के समान उन्होंने ताज पहने हुए हैं । उसी समय माली ने बहार को एक गुलदस्ता दिया । बहार ने वह गुलदस्ता सुँघकर हँसते हुए गोली को दे दिया । वह थोडी देर तक बैंच पर बैठी रही । इसके बाद वहाँ उठकर वह लताओं के समूह की ओर चल पडी । उसने फ्रांस से लाए गए लिली नामक फूल को देखा और गुलबकावली के फूल को भी देखा । उसने लताओं पर खिले हुए बडे–बडे फूलों को देख लिया और वह गुलाब और जामुन के पेडों के बाग से आगे निकल गई । वह राहतूत के पेडों के बाई ओर से चलने लगी और आगे के बगीचे में पहुँच गई जहाँ पर गुलाब लगे हुए थे । उसने देखा कि गुलाब की टहनियों पर बडे–बडे फूल खिल रहे थे । सागर के समान दिलवाली बहार का दिल खिले हुए फूलों को देखकर प्रसन्न हुआ । उसके मन में खुशी की लहरें निर्माण हो गई । उस समय टेरियर नाम का कुत्ता पूँछ हिलाता हुआ बहार के पास आ गया । वह भी खुश था ।

वहाँ कुकुरमुत्ते को देखकर गोली चिल्लाती हुई बहार के पास आई थी । उसकी आवाज सुनकर बहार घबरा गई थी । गोली की आवाज बहार को बन्दूक की गोली के समान लगी थी । गोली की आवाज से बहार अपने गुलाब के प्रति होनेवाले प्रेम को भूल गई थी । बहार गोली को देखती ही रह गई । अपने शिकार पर टूट पडनेवाली बिल्ली के समान गोली कुकुरमुत्ते पर टूट पडी थी । उसने कुकुरमुत्ते को तोडकर अपनी ओढनी के आँचल में रख लिया था । दोनों काफी समय तक घूमती रही । गोली ने बहार से कहा तुम जी भरकर गुलाब के फूलों को देखती रहो, हम तो कुकुरमुत्ते का कवाब खाएँगे । उसने कुकुरमुत्ते के कबाब के स्वाद के बारे में कहा । वर्णन सुनकर बहार के मुँह में पानी भर आया । उसने गोली से पूछा 'क्या कुकुरमुत्ते का कबाब दुनिया की सभी तरकारियों से स्वादिष्ट होता है ? गोली ने उसका उत्तर हाँ देते हुए कहा कि कुकुरमुत्ते के कबाब का स्वाद स्वर्ग में प्राप्त होनेवाले फलों के समान होता है । सब सागों में कुकुरमुत्ते का साग श्रेष्ठ होता है ।'

गोली की बाते सुनकर बहार के मुँह में से लार टपकने लगी । उसने गोली से कहा कि मैं कुकुरमुत्ते का कबाब खाने के लिए तुम्हारे घर आ जाऊँगी । एक नौकरानी गोली को डाँटने लगी कि बहार की कबाब के बारे में मत बताओ लेकिन बहार ने नौकरानी को रोकते हुए कुकुरमुत्ते के साग के बारे में बहुत कुछ पूछना शुरू किया । गोली ने कहा बकरा, मुर्गा, तथा अन्य पक्षी कोई भी कुकुरमुत्ते की बराबरी नहीं कर सकते । सभी के सागों को कुकुरमुत्ते के साग के सामने हारना पड़ता है । कुकुरमुत्ते की सुगंध के सामने गुलाब की सुगंध कुछ भी नहीं है । कुकुरमुत्ते की सुगंध के सामने सारी सुगंधों को पराजित होना पड़ता है ।

गोली की बाते सुनकर बहार के मन में कुकुरमुत्ते का कबाब खाने की इच्छा तीव्र हो गई । वह गोली के पीछे उसके घर गई । उसके साथ टेरियर नाम का कुत्ता भी । गोली तानाशाह के समान आगे चलती रही और बहार भूखें अनुयायी के समान चलती रही ।

गोली की माँ मोना बंगालिन ने दरवाजा खोलकर सभी को अंदर बुलाया । उसने गोली के हाथ में कुकुरमुत्तों को देखा और प्रसन्न हो गई । गोली ने माँ से कुकुरमुत्तों का मांस के समान कबाब बनाने को

कहा। उसने माँ से कहा कि बहार कुकुरमुत्ते का कबाब खानेवाली है इसलिए अच्छा मसालेदार कबाब बनाओ और पतली-पतली रोटियाँ सेक देना ।

मोना बंगालिन चुल्हा जलाकर कवाब और रोटियाँ बनाने लगी तब गोली और बहार दुल्हा-दुल्हन का खेल खेलने लगी । वे दोनों कानी दासी को धोखा देकर अलग चली थी और कोठरी में पहुँची थी । दुल्हा-दुल्हन के खेल में टेरियर कुत्ता बाराती था । कोठरी में छिपकर गोली और बहार ने जो दुल्हा और दुल्हन का खेल था उसमें बहार दुल्हन और गोली दुल्हा बनी थी । दोनों प्यार से खेल रही थी । दुल्हा-दुल्हन का विवाह हो गया था ।

मोना बंगालिन ने नवाब साहब की नौकरानी को भी अलग से कुकुरमुत्ते का कबाब परोसकर खिलाया। नौकरानी को कुकुरमुत्ते का कबाब बहुत अच्छा लगा । मोना बंगालिन ने नौकरानी के हाथ धुलाए और पान देकर उसको विदा कर दिया ।

नवाब साहब ने अपनी बेटी बहार से कुकुरमुत्ते और उसके कबाब कल स्वादिष्टता के बारे में सुना तो उनका मन कुकुरमुत्ते का कबाब खाने के लिए ललचाने लगा । नवाब साहब ने नौकरानी तथा अन्य लोगों से कुकुरमुत्ते के कबाब के संबंध में पूछा । सभी से कुकुरमुत्ते की प्रशंसा सुनकर नवाब साहब ने तुरन्त माली को बुलाकर ताजा-ताजा कुकुरमुत्ता लाने का आदेश दिया ।

माली ने विनम्र भाव से नवाब साहब से कहा 'श्रीमान जी आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें । अब कुकुरमुत्ता नहीं रहा, कुकुरमुत्ता समाप्त हो गया । अब तो केवल गुलाब रह गए हैं ।' माली की बात सुनकर नवाब साहब आग बबुला हो गए और उन्होंने आदेश दिया 'जहाँ पर गुलाब है, वहाँ पर कुकुरमुत्ते उगा ले । हम भी सब लोगों के साथ कुकुरमुत्ता खाना चाहते हैं ।' नवाब साहब का यह आदेश सुनकर माली ने निवेदन किया - महाराज मुझे माफ करना, कुकुरमुत्ता उगाने से नहीं उगता वह अपने आप उगता है । अब एक साल के बाद ही कुकुरमुत्ता मिलेगा ।

3.1.4 स्वयु अध्ययन के लिए प्रश्न –

1) 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता में .... विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है ।

   1) आध्यात्मिक 2) प्रगतिवादी 3) रहस्यवाद 4) राष्ट्रीय

2) कुकुरमुत्ता कविता .... भागों में विभाजित है ।

   1) दो 2) तीन 3) चार 4) पाँच

3) कुकुरमुत्ता .... वर्ग का प्रतीक है ।

   1) शोषक 2) शोषित 3) अभिजात 4) पूंजीपति

4) गुलाब को .... फटकारता है ।

   1) नवाब 2) माली 3) कुकुरमुत्ता 4) गेंदा

5) बंगालिन की बेटी का नाम .... था ।

1) बहार 2) गोली 3) मोना 4) रानी

6) कविता के .... भाग में मजदूर बस्ती का वर्णन है ।

1) दूसरे 2) तीसरे 3) चौथे 4) प्रथम

7) .... उगाने से नहीं उगता । वह स्वयं उगता है ।

1) गुलाब 2) कुकुरमुत्ता 3) कमळ 4) आम

8) नवाब .... से गुलाब ले आए थे ।

1) फारस 2) चीन 3) अमेरिका 4) जापान

9) गरीबों का खून चूसकर .... का रंग लाल बन गया है ।

1) जामून 2) गुलाब 3) आम 4) लीली

10) गुलाब .... वर्ग का प्रतीक है ।

1) शोषक 2) शोषित 3) निम्न 4) गरीब

11) .... ने कुकुरमुत्ते का कबाब बनाया था ।

1) गोली 2) बहार 3) मोना बंगालिन 4) बेगम

12) गंदगी से भरे झोपडों में जिंदगी .... के गीत गा रही थी ।

1) शोक 2) दु:ख 3) प्रसन्नता 4) उल्हास

3.1.5 पारिभाषिक शब्द शब्दार्थ

कुकुरमुत्ता – एक वनस्पती (मराठी – आळंबी)

फारस – ईरान

मृदुल – कोमल

कैपीटलिस्ट – पूंजीपति

जानिब – तरह, समान

हरामी – बिना श्रम के सुखों का उपभोग करनेवाला

जनखा – नपुंसक, हिजडा

पैराशूट – हवाई जहाज से छलांग लगाने के साधन

बेंडा – तिरछा

फलसफा – दर्शन

रकीब – प्रतिद्वन्द्वी

प्रोलेटेरियन – सर्वहारा

क्लाइमेक्स	–	अन्तिम स्थिति
क्लियो पेट्रा	–	प्रसिद्ध पाश्चात्य सुंदरी
भास	–	संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार
टी. एस. इलियट	–	अंग्रेजी का कवि और आलोचक
हाफिज	–	उर्दू के दार्शनिक कवि का नाम
पर्शियन	–	ईरान के निवासियों का नाम
पिरामिड	–	मिस्त्र में शवों का सुरक्षित रखने हेतु बने भवन
युक्लीड	–	एक ग्रीक दार्शनिक का नाम
स्टीम वोट	–	भाप से चलनेवाली नाव
डिक्टेटर	–	तानाशाह
मैलसिरी	–	बकुळ
आशियाँ	–	घोंसला, बसेरा
चमन	–	बाग
रंगोआब	–	रंग और चमक
पोच	–	कमजोर
बालिश्त	–	फैले हुए पंजों के अंगूठे और कन्नी ऊँगली के बीच की नाप
कलम	–	जोड
कैंडा	–	खाका उतारने का यंत्र
गल्ला	–	अनाज
कल्ला	–	केश, घुंघराले बाल, कारनेट, क्लेरीअनेट, ड्रम, प्लूट, वायलिन, गीटर बैंजो
	–	ये पाश्चात्य बाजों के नाम है ।
रोमान्स	–	प्रेम
जहन्नुम	–	नरक
पिद्द	–	छोटा
ट्रेप	–	फंदा
किश्ती केप	–	नाव के आकारवाली टोपली
स्ट्रा	–	भूसा
मेट	–	चटाई

बासीली	–	बदबूदार
हमजोली	–	साथी
मथानी	–	काठ का एक प्रकार का दंड जिससे मधकर दहीसे मक्खन निकाला जाता है ।
फरमाबरदार	–	आज्ञापालक
सिटपिटाई	–	परेशान, घबराई हुई
कबाब	–	भूना हुआ मांस
रेज्ज	–	कतार
विहिश्त	–	स्वर्ग
कलिया	–	मांस
छोकडी	–	कम उम्र की लड़की
शौक	–	आनन्द

3.1.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

1) 2	2) 1	3) 2	4) 3	5) 26) 1 7) 2
8) 1	9) 2	10) 1	11) 3	12) 3

3.1.7 सारांश

1. निराला जी की 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता दो भागों में है । प्रथम भाग में गुलाब और कुकुरमुत्ते का वर्णन और कुकुरमुत्ते द्वारा अपने बडप्पन की बाते हैं । कुकुरमुत्ता अपना सर्वव्यापी अस्तित्व और महत्त्व स्पष्ट करता है । वह गुलाब की शोषक-पूंजीपति कहकर ताने देता है ।

2. कविता के दूसरे भाग में माली की बेटी गोली और नवाब साहब की बेटी बहार की मित्रता, बगीचे का सौंदर्य तथा कुकुरमुत्ते के स्वादिष्ट कबाब वर्णन है । बहार गोली के घर कुकुरमुत्ते का कबाब खाती है । उससे कुकुरमुत्ते की स्वादिष्टता की प्रशंसा सुनकर नवाब साहब कबाब खाने की इच्छा प्रकट करते हैं मगर कुकुरमुत्ते का मौसम समाप्त होने के कारण उनकी इच्छा अधूरी रहती है । वे गुलाब के स्थान पर कुकुरमुत्ते उगाने की बात करते हैं मगर माली उन्हें समझाता है कि कुकुरमुत्ता उगाने से नहीं उगता ।

3. कुकुरमुत्ता शीर्षक कविता निराला जी के प्रगतिवादी विचारों को व्यक्त करनेवाली रचना है । प्रगतिवादी काव्य धारा के प्रमुख आधार स्तंभ निराला जी प्रगतिवादी रूस की साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित और सर्वहारा वर्ग के पक्षधर बना गए थे । वे छायावादी से प्रगतिवादी बन गए थे । उन्होंने अपने काव्य में शोषित, उपेक्षित वर्ग का अपनत्व के साथ वर्णन किया है । विधवा, तोडती पत्थर, कुकुरमुत्ता, बेला, नये पत्ते, किसान की नई बहू की आँखे, भिक्षुक आदि अनेक रचनाओं में प्रगतिवादी स्वर मुखर होता है ।

4. कुकुरमुत्ता कविता के प्रथम भाग में कुकुरमुत्ता स्वयं के बारे में बहुत कुछ कहता है । वह अपना महत्त्व सिद्‍ध करते समय गुलाब को पूंजीपति शोषक कहता है मगर गुलाब कुछ भी नहीं कहता । यह अभिजात्य वर्ग की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है । गुलाब का ठण्डा व्यवहार अभिजात्य या शोषक वर्ग की मानसिकता की परिचायक विशेषता है । दूसरी ओर कुकुरमुत्ते की टेढ ऐसी अकड और खडी बोली देखने लायक है । उसकी निश्चलता, अकृतित्रमता और आत्मविश्वास शोषित उपेक्षित वर्ग की प्रतिक्रिया है । कवि निराला निम्न, शोषित वर्ग के पक्षधर होने के कारण कुकुरमुत्ते के द्‍वारा शोषित वर्ग की मानसिकता, महत्ता स्पष्ट की है ।

5. कविता के दूसरे भाग में भी कुकुरमुत्ते की उपयोगिता और गुलाब की महत्त्वहीनता चित्रित है । प्रगतिवादी कवि निराला कुकुरमुत्ते के समर्थन के द्‍वारा निम्न वर्ग का समर्थन करते हुए शोषित वर्ग की महत्ता स्पष्ट करते हैं ।

6. कुकुरमुत्ता एक प्रकार से निराला जी का ही प्रतीक है । निराला जी का जीवन कुकुरमुत्ते के समान अभावों, उपेक्षाओं और संघर्षो से भरा था । जिस प्रकार कुकुरमुत्ते को कोई सुविधाएँ नहीं मिलती उसी प्रकार निराला जी को भी पूँजीवादी एवं सामन्तवादी शोषक समाज से उन्हे अपनी साहित्यिक साधना के लिए कोई सुविधाएँ नहीं मिली थी । शोषक समाज के प्रतिनिधि प्रकाशकों ने उनका शोषण ही किया था । अपने शोषण की त्रासदी को निराला जी ने 'सरोज स्मृति' शीर्षक कविता में भी अभिव्यक्त किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि कुकुरमुत्ता शीर्षक कविता में चित्रित कुकुरमुत्ता गुलाब को नहीं स्वयं निराला जी पूंजीपतियों, सेठों, नवाबों, विलासी जीवन जीनेवालों को ललकार कर कहते हैं –

'अबे, सुन बे गुलाब !
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगो आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट'

7. पूंजीवादी व्यवस्था अर्थात कैपीटी लिस्ट व्यवस्था के प्रतिनिधि गुलाब को अपना परिचय देनेवाले कुकुरमुत्ता के रूप में निराला जी अपना ही परिचय देते हुए कहते हैं –

'देख मुझको, मैं बढा,
डेढ बालिश्त और ऊँचे पर चढा
और अपने से उगा मैं
बिना दाने का चुगा मैं ।'

8. निराला जी कुकुरमुत्ते के द्‍वारा अपना बडप्पन–महत्त्व प्रतिपादित करते हैं । कवि निम्न शोषित वर्ग की महत्ता, उपयोगिता एवं सर्व व्यापकता कुकुरमुत्ते के द्‍वारा अभिव्यक्त करते हैं । सामान्य की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए निराला जी ने कुकुरमुत्ते को प्रतिष्ठा एवं महत्त्व दिया है ।

9. सामान्य को प्रतिष्ठा देते समय निराला जी ने अभिजन या शोषक वर्ग की भाषा, शिल्प सौंदर्य के मानदंडों का भी त्याग किया है । उन्होंने कविता के अभिजात अवशेषों अर्थात काव्य के परंपरागत मानदंडो का त्याग किया है । उन्होंने छंद बंधन को अस्वीकार कर मुक्तछंद का प्रयोग किया है । उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों के साथ बोलचाल की खडीबोली के शब्दों का प्रभावी प्रयोग कवि ने किया है । कुकुरमुत्ता आम आदमी अथवा सर्वसामान्य शोषित वर्ग का प्रतीक है तो गुलाब शोषक समाज, सामन्ती, पूंजीपति एवं अभिजन वर्ग का प्रतीक है । कुकुरमुत्ते का बडप्पन प्रतीकात्मक है । शोषक गुलाब के समान सीमित है तो शोषित कुकुरमुत्ते की तरह बहुसंख्यक है । दोनों के संघर्ष में कुकुरमुत्ते की विजय शोषित वर्ग विजय का प्रतीक है ।

3.1.8 स्वाध्याय

3.1.8.1 **ससंदर्भ स्पष्टीकरण के उदाहरण**

1. ''अबे, सुन बे, गुलाब,
मूल मत जो पाई खुशबू रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है केपीटलिस्ट!''

2. ''सर सभी का फाँसने वाला हूँ ट्रेप
टर्की टोपी, दुपलिया या किश्ती-केप।
और जितने, लगा जिनमें स्ट्रा या मेट,
देख, मेरी नक्ल है अँगरेजी हेट।
घूमता हूँ सर चढा,
तू नहीं, मैं ही बडा।

3. ''देखो, वह गोली
मोना बंगाली की लडकी।
भैंस भडकी,
ऐसी उसकी माँ की की सूरत
मगर है नव्वाब की आँखों में मूरत।
रोज जाती है महल को, जगे भाग
आँख का जब उतरा पानी, लगे आग.
रोज ढोया आ रहा है माल-असबाब
बन रहे हैं गहने-जेवर

पकता है कलिया-कबाब।''

4. ''जैसी खुशबू
इसका वैसा ही सवाल,
खाते-खाते हर एक को
आ जाती है बिहिश्न की याद
सच समझ लो, इसका कलिया
तेल का भूना कबाब,
भाजियों में वैसा
जैसा आदमियों में नवाब।''

5. ''ऐसा खाना आज तक नहीं खाया।
शौक से लेकर सवाद
खाती रहीं दोनों
कुकुरमुत्ते का कलिया-कबाब।''

6. ''कुकुरमुत्ता चलकर ले आ तू ताजा-ताजा।
माली ने कहा, हुजुर
कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा हैं, आर्ज हो मंजूर,
रहे हैं अब सिर्फ गुलाब।
x x x x
x x x x
कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता।''

3.1.8.2 **दीघोत्तरी प्रश्न**

1) 'कुकुरमुत्ता' कविता के प्रथम भाग का आशय लिखिए।
2) 'कुकुरमुत्ता' कविता के द्‌वितीय भाग का आशय लिखिए।
3) 'कुकुरमुत्ता' प्रगतिवादी विचारों की अभिव्यक्ति करनेवाली रचना है - स्पष्ट कीजिए।
4) 'कुकुरमुत्ता' कविता की विशेषताएँ लिखिए ।
5) 'कुकुरमुत्ता' कविता की समीक्षा कीजिए ।

3.1.9 क्षेत्रीय कार्य

1) 'कुकुरमुत्ता और गुलाब' कविता के आधार पर दोनों के संवाद का लेखन कीजिए ।
2) निराला के प्रगतिवादी कविताओं का संकलन कीजिए ।

3.1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

1) निराला की साहित्य साधना - डॉ. राम विलास शर्मा
2) महाप्राण निराला - गंगा प्रसाद पाण्डेय
3) क्रान्तिकारी कवि - बच्चनसिंह
4) हिंदी की लंबी कविताओं का आलोचना पक्ष - राजेंद्रप्रसाद सिंह
5) निराला कवि और कथाकार - डॉ. सरजूप्रसाद सिंह, प्रा. रा. तु. भगत

❑❑❑

इकाई 3
3.2 सरोजस्मृति – सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

3.2.1 उद्देश्य ।
3.2.2 प्रस्तावना ।
3.2.3 विषय विवेचन ।
3.2.3.1 'सरोजस्मृति' कविता का परिचय ।
3.2.3.2 'सरोजस्मृति' कविता का आशय ।
3.2.3.3 'सरोजस्मृति' कविता की विशेषताएँ ।
3.2.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न ।
3.2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ ।
3.2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर ।
3.2.7 सारांश ।
3.2.8 स्वाध्याय ।
3.2.9 क्षेत्रीय कार्य ।
3.2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

3.2.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

1) निराली जी के जीवन – चरित एवं कृतित्व से परिचित होंगे ।
2) 'सरोज स्मृति' शीर्षक कविता के आशय से परिचित होंगे ।
3) पिता–पुत्री के रिश्ते की ऊर्जा, संवेदना, प्रेम से परिचित होंगे ।
4) शोकाकुल पिता की मानसिकता का ज्ञान होगा ।
5) छायावादी काव्य की विशेषताओं को समझ पाएँगे ।
6) निराला के संघर्षमय जीवन से परिचित होंगे ।

3.2.2 प्रस्तावना :

प्रिय पुत्री सरोज की मृत्यु के पश्चात दो वर्ष के बाद सन् 1935 ई. में रचित निराला का 'सरोज स्मृति' शीर्षक गीत विश्व के प्रसिद्ध शोक गीतों में से एक है । जब सरोज सवा साल की थी, तब उसकी माता की मृत्यु हो गई थी । माँ की छत्र छाया से वंचित सरोज नानी पार्वती देवी की आँखों का तारा बनकर

बड़ी हो गई थी । उसकी प्यारी, लुभावनी, भोली सुरत देखकर ही निराला जी ने दूसरे विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था । बड़े लाड–प्यार में पली सरोज की उम्र जब विवाह योग्य हो गई तब निराला जी ने समाज के नियमों, प्रतिबंधों, रूढियों को ठुकरा कर सरोज का विवाह पं. शिवशेखर द्विवेदी के साथ कर दिया था । विवाह के कुछ ही दिनों बाद 19 साल की सरोज भयंकर बीमारी के कारण भगवान को प्यारी हो गई । आर्थिक अभाव के कारण ही बेटी का ठीक इलाज न हो सका इस प्रकार की धारणा ने निराला के मन में घर कर दिया था । इसलिए वे हमेशा अपने आपको कोंसते रहें । सरोज की मृत्यु के वज्रपाल से निराला पूरी तरह टूट चुके थे । सरोज की यादें उन्हे विवश–व्याकुल बनाती रही । उन्ही यादों को 'सरोज स्मृति' के द्वारा कवि ने ताजा किया है । कवि की सारी वेदनाएँ, विवशताएँ, व्यथाएँ एवं दुःख–दग्ध हृदय की पीड़ा घनीभूत रूप में प्रस्तुत कविता के द्वारा अभिव्यक्त हो गई है ।

सरोज को सम्बोधित कर लिखी हुई इस रचना में कवि का संपूर्ण स्नेह, वात्सल्य अभिव्यक्त हुआ है । कोमल कली–सी अपनी बेटी पर विमाता की छाया न पड़े इसलिए पुनर्विवाह न करने का प्रण करने वाले निराला काल के विकारल थपडों के सामने पराजित हो गए । वे अपनी बेटी को खो बैठे । जीवन के इस कटु यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाले कवि ने सरोज की संपूर्ण जीवन लीला संवेदना और वात्सल्य के साथ चित्रित की है –

3.2.3 विषय – विवेचन :

3.2.3.1 सरोज स्मृति कविता का परिचय

सरोज स्मृति निराला द्वारा लिखित शोक गीत है । इस गीत का रचना काल सन् 1935 ई. है । निराला जी की एक मात्र बेटी 19 सरोज साल की आयु के पहले भयंकर बीमारी का शिकार होकर परलोक चल गई। निराला जी इस हादसे से उदास, दुःखी, विक्षिप्त से बन गए । दुःख के कारण उनका शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य गिर गया । वे हमेशा बेटी की यादों में खोए–खोए से रहने लगे । अपनी बेटी का ठीक इलाज करने की पीडा निराला जी को सताती रही ।

कवि निराला जी ने बेटी की मृत्यु के बाद दो वर्ष पश्चात् 'सरोज स्मृति' शीर्षक शोकगीत का सृजन किया है । इसमें मातृ स्नेह से वंचित सरोज की सब साल से उन्नीस साल तक की जीवन यात्रा के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के द्वारा पिता–पुत्री के स्नेह, वात्सल्य का चित्रण किया है ।

निराला जी ने अपने साहित्यिक जीवन के संघर्षों, प्रकाशकों के दुर्व्यवहारों तथा विषम सामाजिक – आर्थिक परिवेश का चित्रण भी प्रभावी ढंग से किया है । आर्थिक विपन्नता के कारण निराला जी को अनेक समस्याओं का सामना करना पडा था ।

छायावादी काव्य की विशेषताओं से पूर्ण 'सरोज स्मृति' का हिन्दी साहित्य जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वानों का मानना है कि 'सरोज स्मृति' हिंदी ही नहीं विश्व साहित्य के शोक गीतों की कोटि की अमूल्य निधि है।

3.2.3.2 सरोज स्मृति कविता का आशय –

कवि निराला जी अपनी स्वर्गस्थ बेटी सरोज को संबोधित करते हुए कहते हैं – हे बेटी अपने जीवन के उन्नीसवें वर्ष में प्रवेश करते ही तूने जीवन रूपी सतार को पार कर स्वर्गलोक में प्रवेश किया । हे बेटी तूने अपनी यौवन भरी दृष्टि से पिता को देखकर हमेशा के लिए आँखें मूँद ली । तू अपने पिता को दुःख की खाई में छोडकर हमेशा के लिए चली गई । हे मेरी गीता (गीतों की प्रेरणा) इस भौतिक संसार के नाम और रूप के बंधनों को तोडकर तूने उस अमर शाश्वत मृत्यु का वरण किया । अपने जीवन के अठारह वर्ष

सफलतापूर्वक पूर्ण कर तू ये कहकर मृत्यू रूपी नौका पर सवार हो गई – पिताजी में पूर्ण प्रकाश को प्राप्त कर रही हूँ । यह मेरा मरण न होकर मुक्ति हेतु परम ज्योति की शरण में अमर प्रयाण है ।

निराला सरोज से संबोधित करते हुए कहते हैं ''मैं दुनिया की मूक वेदना को सुननेवाला कवि हूँ । मैंने दिनरात सरस्वती के चरणों में अपने आपको समर्पित कर कुछ प्रकाश प्राप्त किया है । निराला जी ने सरोज को 'जीवित कविते' कहा है । वे कहते हैं हे मेरी जीवित कविते । अर्थात सरोज तू अभावों के सैकडों बाणों से घायल जर्जर अपने पिता को इस पृथ्वी पर छोडकर तू स्वर्ग चली गई । स्वर्ग जाते समय तूने क्या सोचा था ? क्या तू इस विचार से स्वर्ग चली गई कि जब मेरे पिताजी स्वर्ग का रास्ता पार करने में असमर्थ होंगे तो मैं उन्हे समर्थ होकर उनका हाथ पकड कर दुनिया के भयंकर अंधकार से पार कर दूँगी । इस संसार से विनय पूर्वक तेरा जाना इसी बात को स्पष्ट करता है । इसके अतिरिक्त तेरा मुझसे पहले जाने का कोई कारण नहीं है । तू यही सोचकर श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को आकाश के गहन अन्धकार को पार करके चली गई ।

अपनी विवशता, कमजोरी, गरीबी का उल्लेख करते हुए निराला जी कहते हैं – हे बेटी मैं तेरा गरीब बाप तेरे लिए कुछ भी नहीं कर सका । मैं धन कमाने के उपायों को जानता था, परंतु संकोचवश धन कमाने से दूर ही रहा । धन प्राप्ति के मार्ग पर के अनर्थों और अनुचित उपायों को देखकर मैं स्वार्थ – सिद्धि के युद्ध में सदैव पराजित होता रहा क्योंकि बेईमानी, धोखाधडी और अन्याय द्वारा धन प्राप्त करना मुझे अच्छा नहीं लगता । इसी कारण मैं इस संघर्ष में सदैव पराजित होता रहा । मैं कभी स्वार्थ सिद्धि में सफल नहीं बन पाया । मेरी अभावभरी जिंदगी के कारण मैं तुझे रेशमी वस्त्र न पहना सका और न तुझ को भरपेट दूध दही ही खिला सका । मैंने कभी गरीब के हाथ से उसका अन्न नहीं छीना । मैं किसी को आँखों से टपकते हुए आँसुओं को देख नहीं सका । मैंने अपने आँसुओं के दर्पण में सदा अपने स्वरूप और हृदय के भावों को प्रतिबिम्बित होत हुऐ देखा है ।

निराला जी अपने साहित्यिक जीवन के संघर्ष की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि – मैंने कई बार विनम्रतापूर्वक यह सोचा कि हिंदी के आलोचकों ने जो मेरा इतना विरोध किया है वह वस्तुत: मेरी पराजय नहीं है बल्कि यह हिंदी भाषा की 'स्नेह स्वरूप भेंट है जो श्रेष्ठ – उज्ज्वल रत्नों के हार के समान है जो इस अवस्था में भी मुझे उत्साहित कर रहा है । साहित्य के विशाल सागर में जहाँ साहित्य और कला के शुद्ध महल और कलापूर्ण भाव संग्रहित हैं उनको बढाने और विकसित करने में मैंने अपना योगदान दिया है । मेरे साहित्य को अन्य साहित्यिकों द्वारा रचे गए साहित्य के साथ तुलना करके देखने पर प्रमाणित हो जाएगा कि मेरा साहित्यिक योगदान औरों से किसी भी दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । मैंने गद्य-पद्य दोनों में समान अधिकार के साथ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । मैं अपनी कुशल लेखन कला द्वारा गरीबी का समाधान कर सकता हूँ किंतु काव्य को मैं अपनी जीविका का साधन नहीं बनाना चाहता और न ही अन्य निर्धनों को देखते हुए मैं ऐसा संकल्प कर सकता हूँ ।

निराला जी अपने साहित्यिक विरोधियों के संबंध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहते हैं वे श्रेष्ठ लोग जो सदैव मेरे साहित्यिक संघर्ष को देखत रहें थे । वे मेरे संघर्ष को देखते हुए हंसते रहे थे । मेरे ऊपर जब एक साथ सैंकडों अभावों के तीरों से प्रहार होने लगे, थे अर्थात एक के बाद एक दु:खों के पहाड़ मेरे ऊपर टूट पड रहे थे तब मैं चुपचाप बिना पलक झपकाए टकटकी बाँधे उन्हें देखता रहता था । मैं विरोधियों का शोरगुल समाप्त हो गया है । वे मेरा कुछ भी नहीं बिगाड सके हैं । मेरे विरोधी अपने उस क्रोध भरे युद्ध में पराजित होक चुप बैठे हैं । उनका कष्ट रूद्ध हो गया है । उनकी वाणी मौन हो गई है ।

अपने विरोधियों के आक्रमण से विचलित न होनेवाले निराला जी कहते हैं मेरे विरोधियों द्वारा लांछित मेरी कृतियों की शोभा और भी अधिक प्रकाशित होगी । मैंने हमेशा यही सोचा कि विरोधियों के व्यंग्य बाणों से निर्मित दुःखो से जीवन का सौंदर्य अत्यधिक निखरेगा । मेरे साहित्य द्वारा जीवन में प्रेरणादायक सूर्य का उदय होगा । देखना यह है कि सरस्वती इन दुःखों के क्षणों में अपने सुंदर हाथों में कला की सुंदर कुची लेकर कैसे-कैसे रंग भरती है ? अर्थात मैं कैसी-कैसी काव्य कृतियों की निर्मिति करता हूँ ? आलोचकों द्वारा लांछित मेरी कृतियाँ माँ सरस्वती को स्वीकार है । वह मेरी रचनाओं के ऊपर स्नेह से भरी तुलिका फेर कर स्पृहणीय बना देती है ।

जीवनभर आर्थिक अभावों का सामना करनेवाले निराला जी अपने बेटी की योग्य परवरिश नहीं कर सके थे । अपनी विवशता स्पष्ट करते हुए निराला जी कहते हैं धन कमाने में असमर्थ होने के कारण मैं अच्छी तरह से तुम्हारी देखभाल-परवरिश नहीं कर सका । मैं तुम्हे यथोचित सुख नहीं दे सका; तेरी बाल अभिलाषाएँ भी पूर्ण नहीं कर सका । मैं तुम्हारी छोटी छोटी आशाएँ पूर्ण करने में असमर्थ रहा हूँ ।

अपने बेटी की उपस्थिति याद करते हुए निराला जी बेटी से कहते हैं, कुछ दिन तक जब तू मेरे साथ रही थी, तब तुने अपने गौरव से मेरा सिर झुका दिया था । जब मैं पहली बार अपने घर का आँगन छोडकर बाहर गया, तब तू अपने पिता के घर में पूर्ण स्थिर भाव से बनी रही । मालूम नहीं है कि तेरे उस रूप को देखकर मेरी आँखों से आंसू क्यों छलक आए । मैं तेरी कोई भी इच्छा-मांग पूरा नहीं कर सका, इस बात की पीडा मन में ही दबाकर तू छोटी-छोटी साँसे लेकर कुछ कहती थी । मैं मन की उस वेदना को समझता था । मैं जैसे-जैसे अपने रास्ते पर आगे बढता रहा था तब तू मेरी ओर अपनी नजर जमाकर उसे बार-बार हटा लेती थी ।

निराला जी अपनी छोटी बेटी की बाल लीलाओं को याद करते हुए कहते हैं, ''जब तू सवा वर्ष की नाजुक मुलायम अबोध बालिका थी तभी से अपनी माँ को पहचानने लगी थी । इससे तेरी ज्ञानार्जन की चंचल लालसा प्रकट होती थी । तेरी माँ तुम्हारी चंचल अदाओं को देखकर बार-बार तेरे मुख को चूम लेती थी, जिससे उनके जीवन में नवीन उमंगों को संचार होता था । जब तेरी माँ अपने संपूर्ण सांसारिक कार्य पूर्ण करके इस दुनिया को हमेशा के लिए छोडकर चली गई, तब तू अपनी नानी की गोद में पलने के लिए चली गई ।''

तू अपनी नानी के पास रहकर अनेक प्रकार के खेल खेलती रही थी । तू अपनी बाल लीलाओं से नानी का घर आनंद से भरती रही । जब तेरा भाई तुझे मारता था तो तू वेदना से व्याकुल होकर रोने लगती थी तब कमल की पंखुडियों के समान तेरी सुन्दर आँखों से छलछल कर आँसू टपकने लगते थे । तेरे उन आँसुओं को देखकर तेरा भाई तुझको प्यार से समझाता हुआ मनाकर गंगातट ले जाता था । फिर तुम दोनों भाई-बहन गंगातट की रेत पर देर तक खेलते थे । तू भाई का हाथ पकडकर चंचल गति से उसके साथ उछलती कूदती हुई चलने लगती थी । सरोज की निर्मल मुस्कुराहट को देखकर निराला जी कहते हैं, जब तू भाई के साथ गंगा किनारे जाती थी तब तेरे आँसूओं से धुले और मुस्कुराहट से उज्ज्वल मुख को देखकर उस समय गंगा की धवल तरंगे तुझमें अपना विस्तार देखती थी । आशय यह है कि गंगा की लहरें देखकर सरोज आनंद विभोर होती थी ।

शोक मग्न निराला जी संपादकों का उनके प्रति होनेवाला व्यवहार देखकर सरोज को संबोधित करते हुए कहते हैं - जब तू नानी के घर अपनी बाल लीलाओं में मग्न रहती थी, तब मैं अपने कवि जीवन को सफल बनाने की व्यर्थ कोशिशों में व्यस्त रहता था । मैं शांतिपूर्वक मुक्त छन्दों में अपनी काव्य रचना करता था परंतु संपादक मेरी मुक्त छन्द की रचनाओं के प्रति उदासीनता का भाव दिखाकर एक-दो पंक्तियों में

उसका उत्तर लिखकर वापस लौटा देते थे । संपादकों द्वारा वापस लौटाई गई रचनाओं को मैं दु:खी मन से स्वीकार कर विभिन्न दिशाओं और आकाश की ओर ताकता रहता था । मैं अपने आँगन में लम्बे समय तक बैठकर सम्पादकों के गुणों का स्मरण करते हुए घण्टों व्यतीत करता था । मेरी आदत बन गई थी कि मैं पास की घास को नोचता हुआ यों ही बिना सोचे-समझे नोची हुई घास को अज्ञात दिशाओं में इधर-उधर फेंकता रहता था । मैं अपने आक्रोश को घास को नोचकर व्यक्त करता रहता था । गीत के इस भाग में निराला जी ने संपादकों के व्यवहार से निर्मित अपनी मानसिक वेदना और आक्रोश की मार्मिक अभिव्यक्ति की है । इससे कवि की मानसिकता का सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है । चिंता और उदासी में खोए हुए मनुष्य की क्रियाकलापों का चित्रण कवि ने करते हुए अपने मनोवैज्ञानिक ज्ञान का परिचय दिया है ।

शोक मग्न स्थिति में निराला जी सरोज से जुडी अनेक घटनाओं एवं प्रसंगों को याद करते हैं । वे सरोज से संबोधित करते हुए कहते हैं । मुझे आज भी याद है कि प्रात:कालीन सुंदर धूप तुझ पर पड रही थी और तू परी के समान चंचल बनी हुई खेल रही थी । तू अपने को निहारती रहती थी । मैं दो वर्ष बाद दूर देश से चल कर अपनी आँखों से तुम दोनों बालकों को देखने के लिए तेरी नानी के यहाँ गया हुआ था ।

मैं बाहर आँगन में फाटक के भीतर मोढे पर बैठा था । उस समय मेरे हाथ में मेरी जन्म कुण्डली थी। उस कुण्डली में मेरे दो विवाहों का योग पढकर मैं हसता था । भाग्य के इस लेख को झूठा सिद्ध करने की मेरी प्रबल इच्छा थी । मैं कुण्डली के भाग्य के अंकों को खण्डित करना चाहता था । मैंने पूर्ण निश्चित होकर अपने भविष्य के कार्यक्रम पर विचार किया ।

अपने दूसरे विवाह के प्रस्ताव निराला कैसे टालते हैं इसकी जानकारी देते हुए वे कहते हैं - सरोज की माँ की मृत्यु के बाद मेरे अनेक रिश्तेदारों और स्नेही जनों ने मुझे समझाया था कि मैं किसी पढी-लिखी सुन्दर लड़की से विवाह कर लूँ । नई शादी से मेरा जीवन सुखी और आनन्दी हो जाएगा । इसलिए इस प्रकार के विवाह के मेरे पास अनेक प्रस्ताव आए थे, परंतु मैंने उन सबको विनम्रतापूर्वक अस्वीकार किया था । मेरा नकारात्मक - प्रतिकूल उत्तर सुनकर भी अनेक लोग अनुकूल उत्तर पाने की आशा करते थे । उनकी आँखों से याचना के भाव झलकते थे । उनसे जब मैं निस्संकोच होकर यह कह देता था कि मैं मंगली हूँ । मेरी कुण्डली में मंगली होने की बात सुनकर विवाह का प्रस्ताव लेकर आनेवाले मुडकर चुपचाप चले जाते थे ।

इस बार एक ऐसे सज्जन मेरे विवाह का प्रस्ताव लेकर आए जो किसी भी प्रकार अपनी जिद छोडने के लिए तैयार नहीं थे । उन्हें समझाने पर भी वे मानने के लिए तैयार नहीं थे । मुझे लगा कि मैं बडे संकट में फँस गया हूँ । मेरे मन में प्रस्तावित वधु के नयनों का आकर्षण निर्माण हुआ था । मेरी सास भी मुझे समझाने लगी कि लडकीवाले बडे नामवाले और धनवान है । लडकी शिक्षित और सुन्दर है । लड़की ऐन्ट्रेस पास है । विवाह का प्रस्ताव लेकर आए हुए सज्जन यह अवस्था शादी के लिए सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि लड़की की अवस्था 18 वर्ष है ।''

निराला जी कहते हैं कि सास भी मुझे समझाने लगी कि 'आपके लिए यह उचित होगा कि आप इस विवाह का प्रस्ताव ठुकराएँ नहीं, अपितु इसे स्वीकार कर अपना जीवन सुखी बनाइए ।'' सास की बात सुनकर मेरी नजर ढीली पड गई अर्थात विवाह न करने का मेरा निश्चय कमजोर हो गया । मेरा मन दूसरी शादी के लिए तैयार होनेवाला था उसी समय सरोज तू सजीव मूर्ति के समान खिलखिलाती हुई मेरे पास आई । मुझे एकदम होश आया और मैं विवाह के बंधन पर विचार करने लगा । मुझे दूसरा विवाह बंधन लगने लगा ।

मैंने अपनी जन्मकुण्डली तुझे दिखाते हुए कहा यह लो । उस कुण्डली को देखकर तू मेरे पास आ गई तब मैंने तेरे हाथ में अपनी कुण्डली देते हुए कहा – 'लो, इससे खेलो' । उसी समय मेरी सास स्नान करके, अपने बाल खोले हुए, सुन्दर वेश धारण किए हुए तथा मुख पर रहस्यभरी अर्थात गंभीर भाव से मुस्कुराती हुई मेरे पास मेरे होनेवाली विवाह से संबंधित बातचीत करने के लिए आ गई । उनके आते ही मैंने प्रसन्नतापूर्वक उस ओर इशारा किया जहाँ तुने किए हुए मेरी जन्म कुण्डली के टुकडे बिखरे हुए पडे थे । मेरी सास उन टुकडों को आश्चर्यचकित होकर देखने लगी थी तब सरोज तूने उन टुकडों को इकट्ठा करके उन पर बैठकर खेलना शुरू किया था ।

निराला जी अपनी बेटी के यौवन का भावपूर्ण एवं संयत वर्णन करते हुए कहते हैं – धीरे-धीरे तू बचपन की दहलीज को पार कर यौवन के सुंदर कुंज में प्रवेश कर गई थी । तू नव युवती बन गई थी । तेरा शरीर जवानी के सौंदर्य से आकर्षक बन गया था । तुझमें यौवन सुलभ चंचलता आ गई थी । माथे के नव वीणा पर मधुर राग मालकोश के कोमल स्वर झंकृत हो उठे थे । तू रात्रि के कोमल स्वप्न के समान मन्द गति से ऊषा के जागरण छन्द के समान गुंजारित हो उठी । अपने ही सौंदर्य के भार से तू काँप उठी । तेरे उस उज्ज्वल सौंदर्य का स्पर्श प्राप्त करके समस्त दिशाएँ और वन चेतनामय हुआ । संपूर्ण आसमान, धरती, पेड-पौधे, कलियाँ – कोपले तेरे उस सौंदर्य से सौंदर्यशाली बन कर तेरे सौंदर्य का परिचय देने लगे । मानो ऐसा लगता था तेरी आँखों से तेरे मनोभाव झलक रहे थे । तेरी आँखों को देखकर ऐसा लगता था, मानो तरी आँखो में पाताल लोक की राजधानी भोगावती (नाग लोक की राजधानी) चालन करने लगी है । तेरी दृष्टि ऐसी थी, मानो कल-कल करता हुआ जल खेल-खेल में नीचे से ऊपर आ रहा हो ।

निराला जी अपनी पुत्री सरोज के गुणों एवं सौंदर्य का सुंदर वर्णन करते हैं । वे सरोज के वीणा-वादन और गायन कला की प्रशंसा करते हुऐ कहते हैं – हे बेटी जैसे ही तूने यौवन की दहलीज पर कदम रखा वैसे ही तू अपनी माता के समान मधुर कंठ से मधुरता और सौंदर्य का वर्षाव करने लगी । तेरे कंठ से माँ के कंठ के समान कोमलता, मिठास और पिता के ओज भरे स्वर का संपूर्ण गौरव समाहित हो उठा था । तेरे स्वर को सुनकर ऐसा लगता था मानो तेरे स्वर से मेरे गीत-संगीत में छिपी भावना की आग जन्मजात गायिका के रूप में तेरे कंठ में समाकर सत्कार हो उठी हो ।

निराला सरोज के कंठ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं मालूम नहीं है । संगीत के कौनसे संस्कार तुम पर हो गए ? उचित संगीत शिक्षा के अभाव में यह सब कैसे हुआ ? संगीत की गौरवशाली अभिव्यक्ति तेरे कंठ से कैसे हुई ? मैं तो केवल एक कोयल की बालिका के बारे में यह जानता हूँ कि वह कौवे के घोंसले में पलती है और उडने में समर्थ में होने पर अपने मधुर कंठ से अपने चारों ओर के शांत प्रदेश को गुंजारित करने लगती है । उसी प्रकार तूने मेरे जीवन-घर को मुखरित किया है ।

सरोज विवाह योग्य होने पर निराला जी के सास ने निराला जी से सरोज को अपने साथ ले जाने और उसके विवाह का सुझाव दिया था । निराला सरोज को अपने साथ ले आए । उस समय की यादे ताजा होने पर निराला जी कहते हैं – तेरी सुन्दरता मेरी आँखों में समा गई और तू मेरे काव्य की प्रेरणा बन गई । एक अज्ञात वायु से संपूर्ण वातावरण भर गया । संपूर्ण पेड-पौधे, वृक्ष-लता, फूल-पत्ते उस वातावरण से आन्दोलित एवं मोहित हो गए । वह वायु तेरे बालों और यौवन से पूर्ण सुंदर शरीर को चूमने लगी । तू इन क्रियाओं को टकटकी बाँधकर अर्थात यौवन सुलभ चंचलता से देखने लगी । मैं समझ गया कि तेरे जीवन की आवश्यकता क्या है।

एक दिन तेरी नानी अर्थात मेरी सास ने अवसर देखकर मुझसे कहा – भैया ! अब हमारा वश नहीं रहा। सरोज को पालना-पोसना हमारा काम था, वह हमने पूरा कर दिया । अब तो अच्छा घर-वर देखकर

सरोज की शादी करना तुम्हारा काम है । तुम्हारा यह काम पुण्य का होगा । अब तुम कुछ दिन इसे अपने साथ लेकर रहो और कुल - शील के अनुरूप कोई वर ढूँढ कर इसकी शादी कर दो । उसमें हम तुम्हारी पूर्ण सहायता करेंगे ।

तेरी नानी की बात सुनकर और समझकर मैं चुपचाप ही रहा, मैंने न हाँ कहा और न ही ना । मैं कुछ जबाब न देकर मौन ही रहा । मैं तुझको अपने कलेजे से लगाकर ले चला जैसे कोई भिखारी सोना लेकर चलता है । तू मेरे जीवन की स्वर्ण-झंकार के समान बहुमूल्य थी । तू मेरे जीवन की अमूल्य संपत्ति थी । तू उज्ज्वल प्रकाश की ज्योति थी । मैं तुझे विमल प्रकाश की ज्योति को अपने घर ले आया ।

मैं बार-बार तेरे विवाह के बारे में सोचता रहा परंतु कान्य-कब्जों का विचार आते ही मन में बार-बार धिक्कार का भाव निर्माण हुआ । मेरे मन में यह बात बार-बार आने लगी कि कान्यकुब्ज कुल के ब्राह्मण अपने कुलों के लिए कलंक हैं । ये जिस पतल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं । इनके हाथ में अपनी लड़की को देना दु:ख का विषय होगा क्योंकि विषय-वासना से युक्त इनकी बेल में विष के ही फल लगेंगे । कान्यकुब्ज बालक तो कान्यकुब्ज की परम्पराओं का पालन करनेवाला होगा । कान्यकुब्जों की सारी बुराइयाँ उसमें होंगी । कान्यकुब्ज कुल जलता हुआ मरूस्थल है । इसमें सुख शांति बिल्कुल नहीं है । फिर मैंने सोचा कि पूर्वजों के रास्ते पर चलना ही मेरे लिए शोभनीय होगा । अत: पुरूषों की रीति के अनुसार कन्या के विवाह की रस्म अदायगी कर देनी चाहिए। वास्तव में मुझको पुरानी विचारधारा के विरूद्ध आचरण करने में किसी प्रकार का भय नहीं लगता था, तथापि मैं पुरानी रीति-नीति का भार उठाने में भी अपने आपको असमर्थ पाता था । यह निश्चित है कि मैं अपने भीतर ऐसी विजय की भावना नहीं निर्माण कर सकूँगा जो व्यर्थ ही बन्धु-बान्धवों के साथ स्नेह के संबंध बाँधने में समर्थ होती है, अर्थात मुझको उन लोगों की सब बुराइयाँ सहन ही न की जाएँगी । इससे बात बिगड जाएगी ।

निराला जी अपनी बेटी सरोज का विवाह कान्यकुब्जों के साथ करना नहीं चाहते । वे परम्पराओं को तोड़कर अपनी बेटी के विवाह प्रसंग की चर्चा करते हैं । वे कान्यकुब्जों की बुराइयाँ करते हुए कहते हैं, इन कान्यकुब्जों के फटे हुए पैरों में यमुना के कटे-फटे किनारों के समान बिवाइयाँ होती हैं । ऐसे पैरों की पूजा में न कर सकूँगा । निराला जी कान्यकुब्जों के दुर्गुणों और बुरी आदतों की जानकारी देते हुए कहते हैं - कान्यकुब्जों के पैर उन लोगों के मुख के समान रहते हैं जो उधार या हराम की कमाई खा-खाकर मोटे और चिकने पड जाते हैं । निराला का मानना है कि कान्यकुब्ज निर्लज्ज और हरामखोर होते हैं । इन लोगों के पैर तेल पिए हुए चमडे के जूतों को एक तरफ ठेलकर बाहर निकलते हैं । इनके पैर जूतों की दुर्गंध से युक्त होते हैं और इनसे आनेवाली दुर्गंध प्राण-लेवा होती है । मुझसे यह कभी नहीं हो सकेगा कि मैं अच्छी गंध और सुगन्धित वायु से अपरिचित अन्धे व्यक्ति के समान इन लोगों दुर्गंध भरे पैरों को पूज सकूँ । मुझमें ऐसा करने की शक्ति और इच्छा नहीं है। मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है कि मैं अपनी पार्वती के समान सुन्दर सरोज का विवाह शिव समान किसी अनघड, गन्दे व्यक्ति के साथ कर दूँ ।

कान्यकुब्जों के कुल में बेटी का विवाह न करने की सोचनेवाले निराला कहते हैं - फिर मुझे याद आया कि कभी पहले मुझे एक युवक मिला था । वह विद्वान, सज्जन, अच्छा साहित्यकार तो था ही और कान्यकुब्ज ब्राह्मण भी था । वास्तव में किसी दैवी विधान के कारण वह मुझे मिला था । अपनी भलाई के लिए मुझे वही युवक आत्मीय, स्वागतयोग्य एवं वंदनीय लगा । बस, उसी पर मेरा सारा ध्यान जम गया और उसके प्रति मेरे मन में स्नेह का स्रोत बहने लगा । मैंने तुरन्त आकर मिलने के लिए उसको पत्र लिखा । मेरा पत्र पाते ही वह नवयुवक प्रसन्न मन से मुझसे मिला । मैंने उस युवक से स्पष्ट कहा कि इस समय मेरे हाथ एकदम खाली हैं; मेरे पास धन नाम की कोई चीज नहीं है । मेरे पास देने लायक कुछ भी नहीं है । मेरा पूरा समय साहित्यिक गतिविधियों में चले जाने के कारण मैं ठीक प्रकार अर्थार्जन नहीं कर पा रहा हूँ ।

मैं यदि पूर्वजों से मिले हुए समस्त धन को अर्पण कर दूँ तो धन के लोभी अमीर कान्यकुब्जों के यहाँ विवाह कर सकता हूँ । परंतु मेरी ऐसी इच्छा नहीं है । मैं नहीं चाहता हूँ कि दहेज देकर मूर्ख बनूँ तथा विवाह के नाम पर घर पर बारात बुलाकर खातिरदारी में फिजूलखर्चा करूँ ।

निराला उस युवक से कहते हैं, – मेरे पास देने योग्य कुछ भी नहीं है, तुम मेरी बेटी से विवाह कर लो । मैं समाज के नियमों को तोड़कर यह विवाह करना चाहता हूँ । अगर पण्डितजी विवाह के मंत्र पढने से इन्कार कर देंगे तो मैं स्वयं उन मन्त्रों को पढूँगा । वैसे मेरे पास जो कुछ है, वह सब कुछ सरोज का ही है, इसे याद रखो।

निराला जी सरोज के विवाह का वर्णन करते हुए कहते हैं – सरोज तेरे विवाह में पण्डित जी मंत्र पढने के लिए तथा अन्य निमंत्रित साहित्यिक, मित्रगण एवं दूसरे लोग भी प्रसन्नता से आए । उन्होंने एकदम नवीन पद्धति वाले इस विवाह को देखा । तेरे ऊपर कलश का पवित्र जल छिडका गया । मेरी ओर देखकर तू धीरे से मुस्कराई और तेरे होठों पर स्पन्दन की एक लहर बिजली की तरह लहरा गई । तेरी मन्द मन्द मुस्कान देखकर लगा जैसे तेरे होठों में बिजली की धडकनें काँप गई हो । तेरे दिल में अपने पति की सुन्दर छबि भर कर फूल रही थी और तेरा दाम्पत्य भाव मुखर हो रहा था । एक गहरी निश्वास लेकर तू मानो खिल उठी । तेरा एक-एक अंग भविष्य के विश्वास की आशा में बँधकर निश्चल हो उठा । नम्रता से झुकी हुई तेरे नयनों से प्रकाश रेखा उतरकर तेरे होठों पर थर-थर काँपने लगी ।

कवि निराला जी नव विवाहित सरोज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैंने अपनी निराकार श्रृंगार भावना को तेरे रूप में साकाररूप प्राप्त करते हुए देखा । उस समय मैंने तेरी वह धैर्यवान एवं शीलवान मूर्ति देखी । वह मेरे प्रथम यौवन श्रृंगार के समान थी । मैंने उसमें उस श्रृंगार को देखा जो निराकर रह कर मेरी कविता में रस की उमड़ती हुई धार के समान प्रस्फटित हो उठा था । उसमें वह संगीत गूँज रहा था, जिसको मैंने अपनी पत्नी के साथ मिल कर गाया था । वह संगीत आज भी मेरे प्राणों में रागरंग भर रहा था । मेरी वही श्रृंगार भावना तेरे रूप में सत्कार हो उठी थी । आज आकाश अपने ऊपर रहने के स्वभाव को छोडकर नीचे आकर पृथ्वी के साथ एक हो गया था । सारी प्रकृति दाम्पत्य भाव में बदल गई थी ।

विवाह के बाद सरोज को विदा करते समय निराला जी का मन भारी हो उठता है । वे कहते हैं, तेरा विवाह हो गया । उस अवसर पर हमारे सगे-सम्बंधी नहीं आए, क्योंकि उनको निमंत्रण या बुलावा नहीं भेजा था । अत: न तो तेरे विवाह के गीतों से घर गूँज उठा और न ही दिन रात का जागरण किया गया । फिर भी एक मौन संगीत जीवन के स्वर में आकर अवश्य धरती पर अवतरित हो रहा था । मैंने तुझको विवाह के समय पर माँ जो शिक्षाएँ दिया करतीं हैं वे सारी दी थी । इतना ही नही, तेरे लिए फूलों की शैय्या मैंने ही बनाई थी । मैंने मन में सोचा था कि कण्व ऋषि के समान मैं भी अपनी शकुन्तला को विदा कर रहा था । परंतु मेरी कन्या शकुन्तला से भिन्न थी – मैंने तुझको भिन्न प्रकार की शिक्षा दी थी । तेरे जीवन और यौवन की कलाएँ भी शकुन्तला से सर्वथा भिन्न ही हैं ।

कुछ दिन ससुराल में रह कर तू प्रसन्नतापूर्वक अपनी नानी की प्रेममयी गोद में जा बैठी । वहाँ तुझे मामा-मामी का अपार स्नेह मिला जैसे बादलों का जल धरती को मिलता है । तेरे मामा-मामी ही सुख-दु:ख में तेरे साथी रहें । वे सदा तेरे लालन-पालन में लगे रहें । वह लता रूपी तेरी माता भी वही की थी, जिसमें तू कली के रूप में खिली थी । तू उन्ही लोगों के स्नेह की गोद में पली-खिली थी । अपने जीवन के अंतिम समय में भी तूने उसी स्नेहमयी गोद में शरण ली और सुन्दर नेत्रों को बन्द करके तू महाप्रयाण कर गई ।

कवि निराला अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु पर अपनी सारी वेदना एवं पीडा व्यक्त करते हुए कहते हैं, हे बेटी तू मुझ भाग्यहीन का एक मात्र सहारा थी । आज दो वर्षों बाद तेरी स्मृति में व्याकुल होकर मैं वह बात प्रकट कर रहा हूँ जो बाते मैंने आज तक कभी नहीं कही । दु:ख ही मेरे जीवन की कहानी रही है । मेरा धर्म यदि बना रहे, तो मेरे सम्पूर्ण कर्मों पर भले ही बिजली टूट पडे । मैं सदा अपने दीन जीवन के धर्म का निर्वाह इसी प्रकार करता रहूँ । मेरे समस्त कार्य शीतकाल में मुरझा जानेवाले कमल की पंखुडियों की भाँति भले ही नष्ट हो जाएँ। हे बेटी ! मैं अपने पुराने जन्मों के समस्त पुण्य कर्मों को अर्पित करके तेरा तर्पण करता हूँ । तुझे श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ ।

सरोज जीवन भर दु:खी रही । वह बचपन से माँ के वात्सल्य से वंचित रही । पिता के अभावों के कारण उसके जीवन की अनेक खुशियाँ अधूरी ही रहीं और विवाह के बाद कुछ ही समय बाद वह मृत्यु का शिकार हो गई । सरोज की इस दु:खद जीवन-कहानी से निराला पर वज्रपात हुआ जिससे वे पूरी तरह से टूट जाते हैं । 'सरोज स्मृति' निराला के इसी वेदना - दर्द की कहानी है ।

3.2.3.3 'सरोज स्मृति' कविता की विशेषताएँ -

प्रबंध एवं महाकाव्यों की विशेषताओं से समृद्ध 'सरोज स्मृति' निराला जी की प्रमुख रचना है । इस लम्बी कविता में एक पिता की अपनी बेटी के प्रति होने वाली संवेदना और अन्तर्वेदना करूण स्वर में अभिव्यक्त हुई है । पाठक की आँखें नम करनेवाली 'सरोज' हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है । निराला जी के साहित्यिक संघर्षों तथा आर्थिक और सामाजिक विषमता को मुखर करनेवाली प्रस्तुत रचना में निराला जी की निराशा तथा पराजय का स्वर ध्वनित होता है ।

सरोज की अकाल मृत्यु के पश्चात दो वर्षों बाद लिखी हुई 'सरोज स्मृति' के प्रारम्भ में ही निराला जी ने इसका रचना काल देते हुए कहा है 'युग वर्ष बाद' अर्थात दो वर्ष बाद । माता, पिता, पत्नी तथा अन्य अनेक रिश्तेदारों की मृत्यु और आर्थिक विपन्नावस्था से घायल निराला जी 'दु:ख ही जीवन की कथा रही' कहते हुए अपनी वेदना को मुखर करते हैं । जीते जी बेटी की इच्छाएँ पूरी न करने और ठीक ढंग से उसकी परवरिश न करने का दु:ख निराला जी बेटी की मृत्यु के बाद श्राद तर्पन भी नहीं कर पाए । इस व्यथा एवं अन्तर्वेदना को मुखारित करते हुए निराला जी कहते हैं -

'हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा साथ
इस पथ पर मेरे कार्य सकल
हो भ्रष्ट शील के से शतदल
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तर्पण ।'

अपनी बेबसी, असहायता, असमर्थता व्यक्त करते हुए निराला जी अपने आपको कोसते हुए अभिशाप देते हैं -

'हो भ्रष्ट शील के से शतदल ।'

इस शोकगीत के प्रारम्भ में कवि सरोज की मृत्यू का चित्रण करते हैं । इससे उनकी चिंतनशील और दार्शनिक दृष्टि शोक की आवेगात्मक तीव्रता को दिव्य स्तर तक पहुँचा देती है । जैसे -

'ऊनविंश पर जो प्रथम चरण

तेरा वह जीवन सिन्धु तरण
तनये, जी कर दृकपात, करूण
जनक से जन्म की विदा अरूण
गीते मेरी, तज रूप राम
वर लिया अमर शाश्वत् विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टदशाध्याय ।'

केवल 18 साल पूर्ण कर अर्थात जीवन गीता के 18 अध्याय पूर्ण कर सरोज मृत्यु का शिकार हो गई थी । उसका उल्लेख करते हुए कवि ने उसे लिए 'गीते' संबोधन कर प्रयोग कर उसका अपने जीवन में होनेवाला महत्त्व स्पष्ट किया है ।

'तनये, जी कर दृकपात करूण' कहते हुए निराला जी जीवन की विषमता दिखाते हुए अपने प्रौढ शिल्प कुशलता का परिचय देते हैं । कवि का व्यक्तिगत दु:ख शब्द रूप में फूट पडता है । कवि भावावेश में अपनी बेटी की परलोक यात्रा का उल्लेख करते हुए कहते हैं –

'जीवित कविते, शत शर जर्जर
छोड कर पिता को पृथ्वी पर
तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार
जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह अक्षम अति, तब मैं सक्षम,
तारूँगी कर गह दुस्तर तुम ।'

निराला जी सरोज का उल्लेख 'जीवित कविते' के रूप में कर उसके अस्तित्व के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं । निराला जी को शक्ति, ऊर्जा देनेवाली सरोज पिता से पहले स्वर्ग पहुँच गई तो पिता निराला जी उसे पूछते हैं 'क्या अपने अक्षम पिता को मार्ग दिखाने के लिए तू उनके पहले पहुँच गई ? निराला जी अपने को अक्षम और सरोज को सक्षम कहते हुए अपनी बेबसी एवं स्थिति का परिचय देते हैं ।

अपनी आर्थिक दुरवस्था और पुत्री विहीन पिता की आंतरिक वेदना, लाचारी, असहायता स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए निराला जी कहते हैं –

'धन्य, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका ।'

अपनी बेटी के लिए कुछ न कर सकने की कसक उन्हें पीडा देती रही । वे अपनी पराजय और बेबसी के कारणों को देते हुए कहते हैं –

'लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर ।'

सामाजिक और काव्य के क्षेत्र में पारम्परिक रूढियों को तोडनेवाले साहसी और अपराजेय निराला जी मृत्यु के आगे अपनी हार स्वीकारते हैं । मृत्यु की वास्तविकता से परिचित होकर निराला जी सरोज से

सम्बोधित करते हुए कहते हैं – 'तू अठारह वर्ष की जीवन गाथा पूर्ण नाम और रूप को त्याग कर शाश्वत विराम के लिए चली गई । तुम्हारा जाना मरना न होकर ज्योति से खिलनेवाले 'सरोज' (कमल) का ज्योति में विलीन हो जाना था ।

निराला जी सरोज के संपूर्ण जीवन को याद करते हैं । उन्हे याद आता हैं कि सरोज जब सवा साल की थी तब केवल अपनी माँ को पहचानती थी । उसी समय सरोज की माँ (मनोहरादेवी) इन्फ्लुएंजा के प्रकोप का शिकार होने के कारण सरोज को नानी की गोद में विश्राम मिला । ननिहाल में पलनेवाली सरोज की बाल लीलाओं का इतना सुन्दर चित्रण हिन्दी साहित्य में नहीं के बराबर है । बालक जीवन के चित्रण में फँसे कवियों ने बालिका के चित्रण की ओर अनदेखी की है । नानी की छाया में पलनेवाली सरोज भाई रामकृष्ण से दो–तीन साल से छोटी थी । छोटे भाई–बहनों में झगडा होता था । भाई द्वारा पीटने पर सरोज व्याकुल होकर रोने लगती थी । दोनों की बाल सुलभ लीलाओं से नानी का आँगन महक उठता था । निराला के इस चित्रण से निराला जी के मनोविज्ञान के ज्ञान का परिचय होता है ।

'सरोज स्मृति' गीत निराला जी के रूढि–विरोधी अजेय व्यक्तित्व के साथ उनके अतुलनीय साहस से परिपूर्ण मनोजगत् की याद दिलाता है । निराला जी ने बेटी के यौवन का चित्रण बडे धैर्य और संयत शब्दों में किया है । उन्होने सजगता, सावधानी, कोमलता तथा निर्दोष रीति से सरोज के शारीरिक सौंदर्य और भावजगत के परिवर्तन अंकन करते हुए कहा है –

'धीरे–धीरे फिर बढा चरण
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज तारूण्य सुधर
आई, लावण्य भार थर – थर
काँपा कोमलता का सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर ।'

धीरे–धीरे विकसित होनेवाले बेटी के यौवन का चित्रण निराला जी ने बडे संयत और गंभीर भाव से किया है । जिससे उनके पिता की तस्वीर में और भी निखार आया है । सरोज के यौवन चित्रण में पिता और कवि का अपूर्व समन्वय उपलब्ध होता है ।

माँ की मृत्यु के बाद अपनी नानी की गोद में पलनेवाली सरोज जब तेरह साल की हो गई तब नानी ने सरोज के पिता (निराला) जी से कहा कि 'अब तक मैंने सरोज का पालन–पोषण किया है, अब इसके लिए योग्य जीवन साथी ढूँढकर इसका विवाह करना तुम्हारा धर्म है । तुम कुछ दिन इसे अपने साथ लेकर अपने घर रहो । विवाह में हम उत्साह से तुम्हारी मद्द करेंगे ।' सास की बाते सुनकर निराला जी के मुँह से बोल न फूटा। विवश भाव से वे सरोज को अपने घर गढाकोला ले चले । उस समय की मानसिकता का चित्रण करते हुए निराला जी कहते हैं –

'ले चला साथ मैं तुझे कनक
ज्यों भिक्षुक लेकर, स्वर्ण झनक
अपने जीवन की, प्रभा विमल
ले आया निज गृह – छाया तल ।'

धनहीन, गरीब निराला जी के पास सरोज वैसे ही थी जैसे किसी भिखारी के पास सोने का खजाना हो और उसे यह डर रहता है कि उसके पास का सोना कोई चुरा न ले । यह डर स्वाभाविक होता है । आर्थिक अभावों से संघर्ष करनेवाले निराला जी के जीवन में स्वर्णभूषणों की झंकार से सरोज का आगमन हुआ था । वह उनके जीवन की अमूल्य संपत्ति थी । उनके भाग्यहीन जीवन की व तकदीर थी । उसके आने से निराला जी का जीवन और घर अलौकिक तेज से भर गया था । इससे निराला जी के जीवन में सरोज के महत्त्व स्पष्ट होता है ।

निराला जी अपनी बेटी को कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में देना नहीं चाहते थे । उन्होंने कान्यकुब्जों के दुर्गुणों और बुरी आदतों के कारण ऐसा सोचा था । बेटी के विवाह को लेकर चिंतित निराला जी ने अपने पूर्व परिचित पं. शिवशेखर द्विवेदी को योग्य समझकर उन्हें घर बुलाकर अपनी बेटी का विवाह उनके साथ कर दिया । इससे उनकी चिंता और अपने समाज का उनका निरीक्षण स्पष्ट होता है ।

रूढि-परम्पराओं को तोडकर बेटी का अन्तर्जातीय विवाह करने का साहस निराला जी में था लेकिन योग्य वर मिलने पर उन्होंने कान्यकुब्ज कुल में बेटी का विवाह किया था । प्रगतिवादी विचारक होने के कारण उन्होंने अनेक कर्मकाण्डों और विधियों को पुरोहितों से पूर्ण न करवाकर स्वयं पूर्ण करने का विचार किया था ।

सरोज की शादी में अनेक साहित्यिक मित्रों को निमंत्रण दिया था मगर रिश्तेदारों को नही बुलाया गया था । रिश्तेदारों की भीड न होने के कारण शादी के समय होनेवाली भागदौड और शोरगुल नहीं था । निराला जी ने सरोज की सेज सजाई थी । एक संवेदनशील कवि हृदय के पिता उस समय की सारी मानसिकता का प्रभावी एवं सुन्दर चित्रण निराला जी ने किया है ।

विवाह के समय अपने क्रान्तिकारी पिता को देखकर सरोज हल्के से हँस रही थी । उस समय ऐसा लगता था उसकी हँसी में बिजली उलझकर रह गई हो । सरोज की आँखों में अपने प्रिय की छबि झूल रही थी । उसके दिल की धडकने तेज हो गई थी और लज्जा के कारण आँखे झुकी हुई थी । उसके होठ थर-थर काँप रहे थे । इस संपूर्ण वर्णन में चित्रात्मक भाषा का प्रभावी प्रयोग निराला जी ने किया है । वर्णन पढते समय पाठक के सामने तूलिका और रंगों से बना हुआ एक गतिशील चित्र उपस्थित होता है ।

बेटी की बिदाई करते समय निराला जी को कण्व और शकुंतला की याद आती है । लेकिन वे अपने को कण्व से अलग मानते हुए अपनी गहरी वेदना सामने रखते हैं । उनकी वेदना एक मध्यमवर्गीय अभावग्रस्त पिता की वेदना है । प्रस्तुत कविता में अंकित निराला जी व्यथा की गहराई कविता के स्तर को ऊपर उठा देती है ।

निराला जी ने व्यथा और वेदनाओं का चित्रण करते समय पिता की समस्त मनोदशाओं का चित्रण किया है । बेटी की अकाल मृत्यु पर पिता का अपने आपको कोसना, बेटी के बचपन से मृत्यु तक की सारी घटनाओं को याद करना, बेटी के गुणों की याद करना आदि से शोक में डूबे हुए पिता की सारी मनोदशाएँ प्रकट होती हैं । निराला जी को प्रकाशकों और हिन्दी साहित्य जगत् से अपेक्षित सम्मान नहीं मिला था । जिसका वे हकदार थे । जीवन में मिली उपेक्षा और असफलता के कारण निराला जी के मन में कुण्ठा भर गई थी । जिसका चित्रण कवि ने सरोज स्मृति में किया है ।

नव वीणा पर गाया जानेवाला 'मालकोश' बिम्ब कवि की प्रतिभा परिचायक है । वीणा के साथ प्रयुक्त 'नव' विशेषण से सरोज के नव यौवन की अभिव्यक्ति हो गई है जैसे -

'ज्यों मालकोश नव वीणा पर ।'

बिम्ब योजना की दृष्टि से निराला जी सिद्‌ध हस्त कवि माने जाते हैं । उन्होने सरोज स्मृति गीत में अनेक सुन्दर बिम्बों का प्रयोग किया है जैसे -

'नैश स्वप्न ज्यों तू मंद-मंद
फूटी ऊषा जागरण छन्द
कॉपा वन, कॉपा दिक् प्रसार
परिचय, परिचय पर खिला सकल
नभ, पृथ्वी द्रुम कलि किसलय दल ।'

सुन्दरता और माधुर्य का गहराई से वर्णन करनेवाले निराला जी द्‌वारा प्रयुक्त विकसित यौवन के लिए 'नैश स्वप्न' का बिम्ब उच्च कोटि का है । कवि दृष्टि सरोज के यौवन आगमन को इसी रूप में देखती है । प्रात:कालीन जागरण के गीत की तरह लावण्य भार से युक्त यह यौवन संपूर्ण सृष्टि से संपृक्त है । बेटी के सौन्दर्य रूप का यह विश्वव्यापि अलौकिक सौन्दर्य चित्रित कर कवि ने दिव्यता, पवित्रता का समावेश किया है । मृत कन्या की यादों के आवेग से तटस्थ होने के कारण ही निराला इस प्रकार का चित्रण करने में सफल बन गए हैं ।

प्रभावी प्रतीकों का प्रयोग निराला जी की विशेषता है । लाल रंग दु:ख का प्रतीक माना जाता है । कवि ने सरोज की विदा का वर्णन करते समय - 'जनक से जन्म की विदा 'अरूण' का प्रयोग कर दु:ख भाव को दिखाया है । 'वज्रपात' बडे संकट का प्रतीक माना जाता है । कविने बेटी की मृत्यु के दु:ख की तीव्रता दिखाने के लिए वज्रपात शब्द का प्रयोग किया है । बिजली, ऊषा, कलि, नदी, नीला रंग आदि प्रतीकों का प्रयोग कर कवि ने चंचलता, विकास, कोमलता, व्यापकता, सर्व समावेशकता आदि भावों की अभिव्यक्ति की है ।

निराला जी छन्द बंधन को अस्वीकार करते रहें । उन्होंने मुक्त छंद को प्रतिष्ठा देने का सफल प्रयास किया है । सरोज स्मृति में कवि निराला जी ने मुक्तछन्द का प्रभावी प्रयोग किया है । वास्तव में मुक्त छन्द का प्रयोग निराला जी द्‌वारा हिन्दी साहित्य को दी हुई देन के रूप में देखा जाता है ।

लावण्य भार के कोमलता पर थर-थर काँपने में एक अनुपम सौंदर्य है जो युवावस्था में सुन्दरता को घोषित करता है जैसे -

'धीरे धीरे फिर बढा चरण
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज तारूण्य सुधर
आई लावण्य भार थर थर
काँपा कोमलता का सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर ।'

मालकोश राग गम्भीर भावों को कोमलता से अभिव्यक्त करते समय प्रयुक्त किया जाता है । कवि ने मालकोश शब्द के प्रयोग के द्‌वारा सरोज के कोमल सौन्दर्य का चित्रण किया है । सरोज के नव यौवन के लिए मालकोश उपमा अलंकार का प्रयोग कर निराला जी ने युवावस्था की संकोच मिश्रित गम्भीरता, स्वर की कोमलता एवं मृदुता को चित्रित किया है । अलंकार युक्त भाषा छायावादी कवियों की प्रमुख विशेषता मानी जाती है । सरोज स्मृति छायावादी विशेषताओं से युक्त रचना होने के कारण इसमें अनुप्रास (मामा-

मामी, सदा-समस्त, पथ-पर, रूदा-समर आदि), यमक (जीवन-जीवन, सुधर-थर, सकल-दल आदि), रूपक (जीवन सिन्धु, स्वार्थ समर, स्नेह की कूची, देह के बाँध आदि), उपमा (परी चपल, नैश स्वप्न, ज्यो मालकोश, शतदल आदि), पुनरुक्तिप्रकाश (धीरे-धीरे, थर-थर, मंद-मंद, परिचय-परिचय आदि), उत्प्रेक्षा (ज्यो अपार) विरोधाभास (लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर, जीवन में नवजीवन आदि) ध्वनि साम्य (शरण-तरण, कर-कर, गद्य-पद्य, वांघित-लांछित, इधर-उधर आदि) आदि शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का सुन्दर प्रयोग उपलब्ध होता है ।

छायावादी कवियों ने अपने काव्य में समाज-चित्रण की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत हर्ष, विषाद को ही प्रधानता दी है । निराला जी की सरोज स्मृति में वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति का स्वर प्रमुख है । अपनी बेटी और उससे जुडी यादों में व्यक्तिगत सुख-दुःख, वेदना-विरह की तथा उनके व्यक्तिगत जीवन संघर्ष की कहानी में वैयक्तिक भावनाओं का ही चित्रण हुआ है ।

वेदना, दुःख एवं करूणा की अभिव्यक्ति छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति सरोज स्मृति कविता के प्रारम्भ से अंततक उपलब्ध होती है ।

रहस्यभावना छायावादी काव्य में उपलब्ध होती है । छायावादी कवि निराला जी की रचना सरोज स्मृति में सरोज के सौंदर्य के रहस्यात्मक चित्रण में रहस्य भावना का समावेश हुआ है ।

छायावाद की एक प्रमुख विशेषता के रूप में विद्रोह या स्वच्छन्दता का उल्लेख किया जाता है । निराला जी छायावाद के प्रमुख हस्ताक्षर होने के कारण उनके काव्य में विद्रोह या स्वच्छन्दता का स्वर स्वाभाविकता से आया है । जैसे -

'तुम करो ब्याह, तोडता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम
लग्न के पढूँगा स्वयं मंत्र
यदि पण्डित जी होंगे स्वतंत्र ।'

प्रकृति चित्रण, सौन्दर्य प्रियता, मानवतावादी विचार धारा, कोमलकांत संस्कृतनिष्ठ शब्दावली, ध्वनात्मक शब्द विधान, संगीतात्मकता का सुन्दर निर्वाह, अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग, चित्रात्मकता, नारी उत्थान की विचार धारा, सामाजिक और आर्थिक विषमता के प्रति आक्रोश, आदि भावगत एवं शिल्पगत विशेषताओं से मुक्त सरोज स्मृति शीर्षक गीत का हिन्दी शोकगीत साहित्य में शीर्षस्थ स्थान है ।

3.2.4 स्वय् अध्ययन के लिए प्रश्न -

1) 'सरोज स्मृति' .... गीत है ।
   1) अभियान   2) भक्ति   3) श्रृंगार   4) शोक
2) सरोज की परवरिश .... ने की थी ।
   1) पिता   2) माता   3) नानी   4) मौसी
3) निराला .... कुल से थे ।
   1) कायस्थ   2) कान्यकुब्ज   3) अग्रवाल   4) वाल्मिकी
4) निराला की जन्म कुण्डली के .... ने टुकडे किए थे ।
   1) पत्नी   2) बेटी   3) बेटे   4) सास

5) सरोज की मृत्यु .... में हो गई थी ।

1) मायके 2) ससुराल 3) ननसाल 4) अस्पताल

6) सरोज के पति का नाम .... था ।

1) पं. शिवशेखर द्विवेदी 2) पं. राम सहाय द्विवेदी

3) पं. शिवराम द्विवेदी 4) पं. शिवशेखर त्रिपाठी

7) निराला जी ने सरोज की मृत्यू के पश्चात् .... वर्ष बाद 'सरोज स्मृतिगीत' लिखा था ।

1) दो 2) तीन 3) चार 4) पाँच

8) निराला जी ने अपने दूसरे विवाह का प्रस्ताव .... कहकर टाल दिया था ।

1) गरीब होने की बात 2) बूढे होने के बात

3) मंगली होने की बात 4) कुण्डली फाड डालने की बात

9) सरोज की नानी का नाम .... था ।

1) मनोहरादेवी 2) पार्वतीदेवी 3) छायादेवी 4) महादेवी

10) मृत्यु के समय सरोज ने .... साल की आयु पूर्ण की थी ।

1) 24 2) 15 3) 18 4) 12

3.2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

तनये	-	तनया, बेटी
स्तब्धान्धकार	-	गहन अंधकार
समाभ्यस्त	-	गद्य और पद्य लिखने में समान रूप में अभ्यासवाला
तूलिका	-	कुची, ब्रश
उत्पल दल दृग	-	कमल की पंखुडियों जैसी आँखे
एन्ट्रेस	-	दसवीं कक्षा
गीते	-	गीतों की प्रेरणा देनेवाली
तरणि	-	नौका
तूर्णचरण	-	तीव्र गति से
चीनांशुक	-	रेशमी वस्त्र
विमला	-	सरस्वती
उपार्जन	-	कामना
सैकत	-	बालू, रेली
चपला	-	बिजली
उन्मुक्त केश	-	खुले बाल
हलोत्साह	-	निराश
तान्बे	-	छरहरे बदनवाली

मौन प्रान्तर	–	शांत स्थान
कुलांगार	–	वंश को आग लगानेवाले
गिरजा	–	पार्वती
न्यस्त	–	रक्षक, साथी
सम्बल	–	सहारा
पिक	–	कोयल
अजिर	–	आँगन
भारचर	–	उज्ज्वल
भाग्य अंक	–	प्रारब्ध
आलोक	–	प्रकाश
द्रुम	–	वृक्ष
विषय बेलि	–	जहर की बेल
गो	–	यद्यपि

मंगली : ऐसे ग्रह में उत्पन्न होनेवाला व्यक्ति जिसका जीवन ज्योतिषशास्त्र के अनुसार संकटों एवं असफलताओं से भरा हुआ माना जाता है । मंगली लडके का विवाह मंगली लड़की के साथ करने से अशुभ नहीं होता ऐसा माना जाता है ।

मालकोश : एक प्रकार का मधुर राग

भोगावती : पाताल में बसाई गई नाग नोक की राजधान, नदी ।

चमरौंधे : देशी जुते जो गाँववाले पहनते हैं ।

कछार : नदी किनारे की कटी–फटी जमीन ।

3.2.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

1) 4 2) 3 3) 2 4) 2 5) 3 6) 4 7) 1 8) 3 9) 2 10) 3

3.2.7 सारांश

1. द्वितीय अनामिका में संग्रहित 'सरोज स्मृति' निराला जी का प्रसिद्ध शोक गीत है । प्रिय पुत्री की मृत्यु के बाद दो वर्ष के पश्चात् लिखे हुए इस गीत में कवि ने बेटी के सवा साल से मृत्यु तक के जीवन को दिया है । सवा साल की आयु में सरोज माँ की छत्र छाया से वंचित हो गई थी । उसकी परवरिश नानी ने की थी । उसकी भोली, प्यारी, लुभावती सूरत देखकर निराला जी ने पुनर्विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार किया था । सास की सूचना और आग्रह पर निराला जी बेटी को अपने साथ अपने घर ले आए थे । उन्होंने समाज के प्रतिबंधों को ठुकराकर बेटी का विवाह पं. शिवशेखर द्विवेदी के साथ कर दिया था । विवाह के बाद कुछ ही दिनों में सरोज भयंकर बीमारी का शिकार हो गई ।

2. बेटी की अकाल मृत्यु से निराला जी पूरी तरह टूट पडे थे । सरोज की यादें उन्हे विवश–व्याकुल करती रही । उन्हीं यादों को 'सरोज स्मृति' के रूप में कवि ने ताजा किया है । कवि की सारी संवेदनाएँ,

विवशताएँ, व्यथाएँ एवं पीडाएँ घनीभूत होकर प्रस्तुत गीत के द्वारा प्रकट हुई है । सरोज को सम्बोधित कर लिखी हुई इस रचना में कवि का संपूर्ण स्नेह, वात्सल्य अभिव्यक्त हुआ है ।

3. निराला जी ने सरोज के जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन संवेदना के साथ किया । सरोज की बचपन की यादें, उसकी भाई के साथ की नोंकझोक तथा बाल लीलाओं का वर्णन है । हिन्दी साहित्य में बेटी की बाल लीलाओं का इतना प्रभावी चित्रण न के बराबर है । अधिकांश कवियों ने बेटों का चित्रण किया है । निराला जी ने बेटी का बहुत ही सुंदर चित्रण किया है । सरोज की शादी, उसकी सेज सजाने की यादें संवेदनशील पाठक को द्रवित करती है ।

4. निराला जी ने प्रस्तुत कविता के द्वारा अपने साहित्यिक जीवन के संघर्षों और कान्यकुब्जों की मानसिकता का भी वर्णन किया है । स्वार्थी कान्यकुब्जों के कुल में बेटी ब्याहने की इच्छा निराला की नहीं थी । मगर उनके विचारों, भावनाओं से मेल खानेवाले पं. शिवशेखर द्विवेदी के साथ सरोज का ब्याह करते समय उन्होंने अपने मत को छोड दिया था । अर्थाभाव के कारण बेटी की ठीक इज्जत न कर सकने की कचोट, बेबसी उन्होंने स्पष्ट की है ।

5. मुक्त छंद में लिखी हुई 'सरोज-स्मृति' शीर्षक रचना छायावादी कवि की समस्त विशेषताओं से समृद्ध रचना है । आत्मानुभूमि, आत्मवेदना, करुणा, प्रकृति, चित्रण, लाक्षणिक भाषा प्रयोग, अलंकारिक भाषा, प्रतीकों का प्रभावी चित्रण आदि विशेषताओं के साथ-साथ सामाजिक विषमता के प्रति आक्रोश नारी के प्रति सहानुभूति, अत्याचार का विरोध आदि अनेक विशेषताएँ आलोच्च कविता में उपलब्ध होती हैं ।

3.2.8 स्वाध्याय

1) 'सरोज स्मृति' कविता का आशय लिखिए ।
2) 'सरोज स्मृति' कविता की विशेषताएँ लिखिए ।
3) 'सरोज स्मृति' कविता की समीक्षा कीजिए ।

3.2.9 क्षेत्रीय कार्य

1) हिंदी शोकगीतों की सूची बनाइए ।
2) निराला की अन्य दो लम्बी कविताओं को प्राप्त कर पढिए ।

3.2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए ।

1) निराला की साहित्य साधना - डॉ. राम विलास शर्मा
2) आधुनिक काव्य - डॉ. गोकाककर, डॉ. कुलकर्णी
3) निराला काव्य का देवता - विश्वम्भर मानव
4) कवि निराला कला और कृतियाँ - विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
5) निराला - संपादक - पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
6) निराला कवि और कथाकार - डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र, प्रा. रा. तु. भगत
7) हिंदी की लंबी कविताओं का आलोचना पक्ष - राजेंद्रप्रसाद सिंह

❑❑❑

इकाई 4

यशोधरा – मैथिलीशरण गुप्त

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवरण

1.3.1 मैथिलीशरण गुप्त का जीवन परिचय

1.3.2 'यशोधरा' का परिचय एवं आशय

1.3.3 'यशोधरा' का कथानक

1.3.4 'यशोधरा' में चरित्र-चित्रण

1.3.4.1 यशोधरा का चरित्र-चित्रण

1.3.4.2 सिद्धार्थ का चरित्र-चित्रण

1.3.4.3 नन्द का संक्षिप्त परिचय

1.3.4.4 छन्दक का संक्षिप्त परिचय

1.3.4.5 राजा शुद्धोदन का संक्षिप्त परिचय

1.3.4.6 महाप्रजावती का चरित्र-चित्रण

1.3.5 'यशोधरा' की विशेषताएँ

1.3.6 मैथिलीशरण गुप्त के 'यशोधरा' काव्य में भाव एवं कला पक्ष

1.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :–

इस गीति–काव्य को पढने के बाद आप –

1. मैथिलीशरण गुप्त जी के जीवन परिचय तथा रचना संसार से परिचित हो जाएँगे।
2. 'यशोधरा' गीति काव्य के कथानक से परिचित हो जाएँगे।
3. 'यशोधरा' के प्रमुख पात्र यशोधरा, सिद्धार्थ के चरित्र से परिचित हो जाएँगे।
4. यशोधरा की वेदना से परिचित हो जाएँगे।
5. यशोधरा काव्य के अनुभूति पक्ष से परिचित हो जाएँगे।
6. यशोधरा काव्य की विशेषताओं से परिचित हो जाएँगे।
7. यशोधरा के कला एवं भाव पक्ष से परिचित हो जाएँगे।

1.2 प्रस्तावना :–

मैथिलीशरण गुप्त जी म. प्र. द्विवेदी युगीन कालखण्ड के महत्वपूर्ण कवि हैं। श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' और मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युगीन कालखण्ड के प्रतिनिधि रचनाकार है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सर्वप्रथम खडी बोली हिन्दी में रचना कर खडी बोली का पक्ष लिया। अपनी 'सरस्वती' पत्रिका में खडी बोली के कवियों को प्रोत्साहन दिया। प्रारंभ में खडी बोली के छन्द की भी एक समस्या थी। उस समय के लोगों ने उन छन्दों को जिनमें कि ब्रजभाषा में कविता होती थी उसे उपयुक्त नहीं समझा। खडी बोली की कविता में ब्रजभाषा की भाँति शब्दों को तोडने की प्रवृत्ति नहीं थी। द्विवेदी संस्कृत छन्दों के पक्षधर थे। उन्होंने इस संदर्भ में कई लेख लिखे और स्वंय संस्कृत छन्दों में कविता की। संस्कृत छन्दों को अपनाने से कविता ने अपने बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने में एक कदम आगे बढाया। बाद में इसी संस्कृत शैली को पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने सरलतापूर्वक अपनाया। द्विवेदी जी की कविता में इतिवृत्तात्मकता (गद्य जैसी भाषा और स्थूल वर्णन की विशेषता) अधिक थी। उनपर मराठी कविता का अधिक प्रभाव था। वास्तव में द्विवेदी जी का महत्व उनके कवि होने में अधिक प्रभाव था। वास्तव में द्विवेदी जी का महत्व उनके कवि होने में अधिक नहीं है जितना कवि–निर्माता होने में है। गुप्त जी ने उनका यह ऋण मुक्त कंठ से स्वीकार भी किया है।

'करते तुलसीदास भी कैसे मानस–नाद?

महावीर का यदि, उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।'

उपदेशात्मकता उस समय की प्रवृत्तियों में से एक थी। आर्य समाज और राष्ट्रीय उत्थान इस बात के लिए कुछ अंशों में उत्तरदायी है। पं. नाथुराम शर्मा 'शंकर' में आर्य समाज के प्रभाव से ही उपदेशात्मकता का प्राचुर्य था। इस प्रवृत्ति का प्रभाव तत्कालीन काव्यधारा में दिखाई देता है। रीतिकाल की प्रतिक्रिया

स्वरूप उपदेशात्मकता स्वाभाविक थी। हिन्दी उस समय अन्य प्रांतीय भाषाओं से टक्कर लेना चाहती थी और अपनी श्रेष्ठता दिखाने का यह सुलभ रास्ता था।

'साकेत' के बाद 'यशोधरा' गुप्त जी की दूसरी महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। यह एक चंपूकाव्य भी है। इसमें नाटकीयता भी है। शैली की दृष्टि से भी यह कृति विशिष्ट है। इस कृति में नारी के सच्चे त्याग के आदर्श का चित्रण किया गया है -

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यहीं कहानी -

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'

इन दो पंक्तियों में यशोधरा की सारी जीवनगाथा का सार आता है। इस रचना में भारतीय नारी के गौरव के अनेक पक्ष रचनाकार ने कुशलता के साथ चित्रित किए हैं।

1.3 विषय विवरण :-

1.3.1 मैथिलीशरण गुप्त का जीवन परिचय :-

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त 1886 के दिन एक वैश्य परिवार में चिरगांव उत्तरप्रदेश में हुआ था। उनके माता-पिता का नाम क्रमशः सेठ रामचरण और काशीबाई था। माता-पिता दोनों वैष्णव थे। पाठशाला में खेलकूद में अधिक लगाव होने के कारण पढाई अधूरी ही रही। उन्होंने घर में ही बंगला, हिन्दी और संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। उनके पिता भी कवि थे। बारह वर्ष की अवस्था में ब्रजभाषा में 'कनकलता' नाम से उन्होंने कविता लिखना शुरू किया। बाद में वे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के सम्पर्क में आए। द्विवेदी जी से प्रेरणा पाकर उन्होंने खडी बोली हिन्दी में काव्यलेखन का श्रीगणेश किया। अपनी कविताओं के कारण इन्हें बहुत लोकप्रियता मिली। उनकी कविताएँ खडी बोली हिन्दी में 'सरस्वती' पत्रिका प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गई।

उन्होंने चिरगांव में सन 1911 में 'साहित्य सदन' नाम से स्वयं की प्रेस शुरू की और झाँसी में 1954-1955 में 'मानस मुद्रण' की स्थापना की। गुप्त जी ने प्रेस की स्थापना कर अपनी रचनाएँ प्रकाशित करना शुरू किया। उनकी प्रेस का नाम 'साहित्य-सदन' था। इन्हीं दिनों वे राष्ट्रपिता गांधीजी के सम्पर्क में आए। गांधी जी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की। 16 अप्रैल 1941 को व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने के कारण गिरफ्तार कर लिए गए। पहले उन्हें झाँसी और बाद में आगरा जेल में रखा गया। किन्तु आरोप सिद्ध न होने के कारण उनको सात महिनों के बाद छोडा गया। सन 1948 में आगरा विश्वविद्यालय से उन्हें डी. लिट. की उपाधि से सम्मानित किए गया। सन 1952 से सन 1964 तक वे राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए। सन 1953 में उन्हें भारत सरकार ने 'पद्मविभूषण' से सम्मानित किया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सन 1962 में अभिनंदन ग्रंथ भेट किया तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा डी. लिट. से

सम्मानित किये गये। वे वहाँ मानद प्रोफेसर के रूप में नियुक्त भी हुए। हिन्दी भाषा में लेखन आरंभ करने से पूर्व उन्होंने 'रसिकेन्द्र' उपनाम से ब्रजभाषा में कविताएँ, दोहें, चौपाई, छप्पय आदि छन्द लिखे। यह रचनाएँ 1904-1905 के बीच 'वैश्योपकारक' (कलकता), 'वेंकटेश्वर' (मुंबई) और 'मोहिनी' (कन्नौज) जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। उनकी हिन्दी में लिखी रचनाएँ 'इन्दु', 'प्रताप', 'प्रभा' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही। 'प्रताप'में 'विदग्ध ह्रदय'नाम से उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

इसी वर्ष प्रयाग में 'सरस्वती' की स्वर्ण जयंती समारोह का आयोजन हुआ जिसकी अध्यक्षता गुप्त जी ने की थी। सन 1963 में उनके अनुज सियारामशरण गुप्त के निधन से गुप्त जी को गहरा सदमा पहुँचा। 12 दिसम्बर 1964 ई. को उन्हें दिल का दौरा पडा। गुप्त जी ने दो महाकाव्य, उन्नीस खण्डकाव्य, काव्यगीत और नाटक लिखे। उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना, धार्मिक भावना और मानवीय उत्थान प्रतिबिम्बित है।

द्विवेदी युगीन कविता में मानवसेवा में ईश्वर सेवा का रूप व्यंजित हुआ। कवियों ने मानव सेवा के द्वारा ही ईश्वर सेवा का रूप हमारे सामने रखा। यहाँ तक की भगवान राम को भी मानव रूप में ही व्यक्त किया गया। गुप्त जी भी मानव रूप में चित्रित राम को ईश्वर मानते हुए लिखते हैं -

'राम तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?'

इसलिए गुप्त जी के 'साकेत' महाकाव्य में राम ईश्वरत्व का संदेश देने नहीं आते, वरन मानव को ईश्वरता प्राप्त कराने आये हैं -

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल ही स्वर्ग बनाने आया।'

इसलिए लक्ष्मण के द्वारा 'पंचवटी' काव्य में कवि ने यह कहा भी है -

'मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी कह सकता हूँ।'

किन्तु पतित को पशु कभी नहीं कह सकता है। यह मैथिलीशरण गुप्त जी की अवधारणा भी और उनका व्यक्तित्व भी उस विचारधारा से प्रभावित था जो उनके कृतित्व में भी नजर आता है।

गुप्त जी की 'साकेत' महाकाव्य रचना निम्न पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं -

(1) हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार सन 1935

(2) मंगला प्रसाद पुरस्कार, हिन्दी सहित्य सम्मेलन 1937

कुल मिलाकर गुप्त जी का व्यक्तित्व कवि, नाटककार, अनुवादक, और राजनेता, समाजसुधारक, स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा के रूप में हमारे सामने उभरता है जो अपनी एक अमीट छाप छोड देता है।

मैथिलीशरण गुप्त जी का कृतित्व :-

गुप्त जी ने अपने जीवन समय में महाकाव्य, खण्डकाव्य, काव्यगीत और नाटक लिखे हैं जिनका विवरण -

1. **काव्य :** साकेत, यशोधरा, पंचवटी, जयद्रथ वध, भारत भारती, द्वापर, सिद्धराज, नहुष, अंजली और अर्घ्य, अजित, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला, किसान, कुणाल गीत, गुरू तेगबहादूर, गुरूकुल, जयभारत, युद्ध, झंकार, पृथ्वीपुत्र, वक संहार, शकुंतला, विश्ववेदना, राजा प्रजा, विष्णु प्रिया, उर्मिला, लीला, प्रदक्षिणा, दिवोदास, भूमिभाग, लीला
2. **नाटक :** सैरन्ध्री, राजा-प्रजा, विरहिणी, हिडिम्बा, रत्नावली, रंग में भंग, वनवैभव, विकट भट, वैतालिक, शक्ति, स्वदेश संगीत, हिन्दू, चंद्रहास,
3. **अन्य :** उच्छवास (कविताओं का संग्रह), पत्रावली (पत्रों का संग्रह), मंगल घट, त्रिपथगा, तिलोत्तमा
4. **अनुवाद**

4.1 'मधूप' उस उपनाम से संस्कृत और बांग्ला के कुछ नाटकों का गुप्त जी ने अनुवाद किया है -

भास के नाटक	गुप्तजी के नाटक
स्वप्नवासवदत्ता	अनद्य
प्रतिमा	चरणदास
अभिषेक	तिलोत्तमा
अविमारक	निष्क्रिय प्रतिरोध

4.2 बांग्ला भाषा में मायकेल मधुसूदन दत्त ने जो नाटक लिखे थे उनका अनुवाद गुप्त जी ने किया है-

1. मेघनाथ वध
2. विहरिणी वज्रांगना

4.3 नवीनचंद्र सेन का नाटक पलासी का युद्ध - अनुवाद गुप्त जी ने किया है। संस्कृत कवि हर्षवर्धन की 'रत्नावली' का भी अनुवाद गुप्त जी ने किया है। अमर खय्याम की रूबाइयों का अनुवाद गुप्त जी ने किया है।

4.4 फूटकर रचनाएँ - 'केशों की कथा', 'स्वर्ग सहोदर' यह दोनों रचनाएँ 'मंगलघर' में संग्रहित है।

उपर्युक्त सभी नाटक इस बात का प्रमाण है कि गुप्त जी अनुवाद कला में बहुत निपुण थे।

अन्त में, गुप्त जी की पहली रचना कोलकाता से प्रकाशित 'वैश्योपकारक' में 1904 ई. में प्रकाशित हुई। उन्होंने खडी बोली हिन्दी को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। गाँधी विचारधारा से प्रभावित गुप्तजी राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत माने जाते हैं। राष्ट्रभक्ति, उपेक्षित महिलाओं का नायकत्व, श्रम की मूल्य के रूप में स्वीकृति, स्वदेश प्रेम, भारतीय संस्कृति के अतीत का गुणगान तथा धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक जागरण उनके काव्य की विशेषताएँ हैं। युग और राष्ट्र की नवीन स्फूर्ति एवं जागृति के स्मृतिचिहन हिन्दी में सर्वप्रथम गुप्त जी के काव्य में दिखाई देते हैं तथा कवितात्मकता और नाटकीयता इनकी कविता में स्पष्ट झलकती है। गुप्त जी ने अपनी काव्यधारा के माध्यम से मनुष्य को प्रगतिपथ पर चलने का संदेश दिया है।

1.3.2. 'यशोधरा' का परिचय एवं आशय :-

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित 'यशोधरा' १९३२ ई. में प्रकाशित हुई। यह रचना सिद्धार्थ अर्थात तथागत बुद्ध और उनकी पत्नी यशोधरा के जीवनपर आधारित प्रबंध काव्य रचना है। इस रचना के माध्यम से मैथिलीशरण गुप्त ने एक ओर सिद्धार्थ की महानता को स्पष्ट किया है तो दुसरी ओर सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा की करूण गाथा को यहाँ प्रस्तुत किया है।

कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र के रूप में सिद्धार्थ का जन्म हुआ। वही आगे भगवान तथागत के नाम से प्रसिद्ध हुए यहाँ तक का उनका सारा जीवन प्रवास इस प्रबंध काव्य में चित्रित हुआ है।

'यशोधरा' राहुल की माता गोपा के महान त्याग एवं बलिदान की अमर कथा है। इस रचना में गीत, कविता, नाटक, गद्य-पद्य, तुकांत-अतुकांत सब कुछ है। यशोधरा के महान त्याग को उद्धाटित करना ही प्रस्तुत रचना का मुख्य उद्देश्य रहा है।

'भगवान बुद्ध और उनके अमृत-तत्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल जननी के दो-चार आँसू ही उन्हें इसमें मिल जाए तो बहुत समझना।'

राजा शुद्धोधन भी यशोधरा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं -

'गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।'

इस काव्य की शुरूआत मंगलाचरण से ही जाती है। गुप्त जी वैष्णव कवि हैं और अन्य वैष्णव कवियों की तरह गुप्त जी ने राम, कृष्ण, बुद्ध आदि को एक ही ब्रह्म का अवतार घोषित किया है। वैष्णव भक्त मुक्ति नहीं भक्ति चाहते हैं और यहाँ भक्ति को अत्याधिक महत्व दिया है।

मंगलाचरण के बाद कवि गुप्त जी ने विवेच्य कृति को सोलह खण्डों में विभाजित किया है और 'सिद्धार्थ' से इसका आरंभ होकर 'बुद्धदेव' में इसका समापन हो जाता है। एक तरह से यह सिद्धार्थ के बुद्धदेव बनने तक की यात्रा हे किन्तु इस यात्रा की मुख्य धारा यह यशोधरा का अतुल्य त्याग ही है।

कथानक का आरंभ 'सिद्धार्थ'से होता है और इससे सिद्धार्थ की चिंतनशीलता दिखायी देती है। संसार में रूग्णता, बुढापा और मृत्यु देखकर सिद्धार्थ चिंतित हो उठते हैं और इससे किस प्रकार मुक्ति प्राप्त होगी यही उनका चिंतन इस खण्ड का मुख्य विवेचन है। किसी बूढे व्यक्ति को देखकर सिद्धार्थ को अपनी प्रिय पत्नी यशोधरा की याद आती है और वे मन में सोचते हैं कि मेरी सुन्दर यशोधरा को भी इस प्रकार से बुढापा त्रस्त करेगा और क्या वह भी बुढापे की शिकार हो जाएगी? इसलिए वे मुक्ति की खोज में संसार से दूर जाने का प्रण करते हैं और मुक्ति के लिए परित्याग का विचार करते हैं।

'महाभिनिष्क्रमण' सिद्धार्थ निद्रा मग्न यशोधरा एवं पुत्र राहुल को छोडकर छन्दक को साथ लेकर चलते हैं। छन्दक सिद्धार्थ को छोडकर वापस आते हैं। सिद्धार्थ के वीतराग होकर चले जाने के कारण संपूर्ण कपिलवस्तु नगर शोक सागर में डूब जाता है। यशोधरा, नन्द, महाप्रजावती, शुद्धोधन, छन्दक और पौरजन नागरिक सभी शोकातुर होकर अपनी भावनाओं को प्रकट करते हैं।

प्रातः समय जब यशोधरा को सिद्धार्थ के चले जाने का समाचार मिलता है, उसका हदय घायल हो जाता है। वह अपने मन की वेदनाओं को इन शब्दों में प्रकट करती है, 'नाथ आप कहाँ गए हो ? अब भी अन्धेरा छाया हुआ है और नींद से जागकर मैंने क्या प्राप्त किया, जो सुन्दर जीवन स्वप्न था उसे भी मैंने गंवाया है।' यशोधरा की वेदना केवल इतनी ही है कि उसके पति इसको कुछ कहे बिना चल गए। अगर वे मुझसे कहकर जाते तो मैं उनके राह में बाधा नहीं बनती। वह एक क्षत्राणी है इससे वह स्वयं उन्हें भेज देती। उसके पति अगर सिद्धि पाने के लिए गए हैं तो यह गौरव की बात है परंतु उसे दुःख इस बात है वे चोरी-चोरी चले गए।

'सिद्धि हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात
पर चोरी-चोरी गए, यहीं बडा व्याघात
सखि! वे मुझसे कहकर जाते।
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रियतम को प्राणों के प्रण में
हमीं भेज देती है रण में
क्षात्र-धर्म के नाते
सखि! वे मुझसे कहकर जाते।'

यशोधरा बहुत स्वाभिमानी नारी है। वह अपने पति के रास्ते का रोडा बनना नहीं चाहती। उसका कथन है कि उसके स्वामी सुख से सिद्धि प्राप्त करें और भूलकर भी यशोधरा के दुःख से दुःखी न हो। क्योंकि यशोधरा को इसी बात का विश्वास है कि वे अवश्य लौटकर आयेंगे और साथ में यशोधरा के लिए अवश्य

ही कुछ अनुपम भेंट लेकर आयेंगे। उसके स्वामी जो भी प्राप्त करेंगे उसमें उसका भी निश्चित ही ही हिस्सा होगा।

यशोधरा को अपने पति पर गर्व है और यह स्वाभिमानी नारी है इसलिए सास-ससुर के कुछ पूछने पर वह मौन रहेगी और सब कुछ सहन करेगी। जब कोई पति अचानक घर छोडकर चला जाता है तो लोग प्रश्न जरूर उपस्थित करते हैं और इसका अपवाद ढूँढने से भी नहीं मिलेगा।

सिद्धार्थ के बंधु नन्द भी यह समाचार सुनकर व्यथित हो जाते हैं। सिद्धार्थ उनको छोडकर चले गए हैं, यह नन्द पर सबसे बडा अत्याचार है ऐसा स्वयं नन्द मानते हैं। वे उनकी थाती राहुल पर सब कुछ निछावर करने के लिए तैयार है। नन्द की भी वही वेदना है जो यशोधरा की है।

माता महाप्रजावती के दुःखों कोई की अन्त नहीं है। महाप्रजावती ने ही सिद्धार्थ को अपना दूध पिलाकर पाला था इसलिए उसकी व्यथा की कोई सीमा नहीं है। महाप्रजावती को प्रतीत होता है कि सारा जग उन्हें कैकेयी मानकर कैकेयी के साथ उनकी तुलना करेगा। क्योंकि कैकेयी की वजह से भगवान श्रीराम को चौदह वर्ष बनवास जाना पडा था और बाद में सारा रामायण घटित हुआ।

राजा शुद्धोधनभी दुःखी हैं। उनके लिए साथ राज्य कारोबार और धन-दाम सब कुछ व्यर्थ और शून्य के बराबर हो जाता है। वे यशोधरा से अपनी मन की टींस और वेदनाओं को स्पष्ट करते हुए कहते हैं यशोधरा तुम्हारे पास बहुत धैर्य है, मेरे पास धैर्य नहीं है। अब तुम ही बताओ यशोधरा, धैर्य के लिए मैं क्या करूँ?

कपिलवस्तु नगरी के नागरिक और पौरजन अर्थात कपिलवस्तु की प्रजा भी शोक में डूबकर विलाप करती है। पौर जनों का कथन है कि हमारा भाग्य खोटा है। हमें लाभ तो दिखायी देता है किन्तु अंत में हमे टोटा ही होता है। जिस प्रकार भगवान राम प्रजाजनों को रोता हुआ छोडकर वन चले गए थे, ठीक उसी प्रकार सिद्धार्थ आज हमें छोडकर बन चले गए हैं और हम उनकी स्मृतियों में रोत-कलपते रहें है। सभी लोग इस तरह शोक में डूब गए थे, उसी समय सिद्धार्थ का सारथी छन्दक लौट कर आता है और सिद्धार्थ के संन्यास ग्रहण की बात सब को बताता है। सिद्धार्थ ने अपने केश काट डाले और संन्यास ग्रहण किया है। उन्होंने आप सभी के लिए यह संदेश भेज दिया- 'मेरी कोई चिन्ता न करे, मेरे मन में जरा-सा भी भय नहीं है। जैसे ही सिद्धि प्राप्त हो जाएगी मैं वापस आऊँगा। अब मेरे पास क्लेश सहने की क्षमता नहीं है किन्तु आप सभी मेरे हैं और हर जीव का कल्याण हो सही मेरा घर छोडने के उद्देश्य है।' सहीं अर्थ में यहीं से असली कथा शुरू होती है और कथानक के विकास का आरंभ हो जाता है। अपने पति पर गर्व करनेवाली एक स्वाभिमानी पत्नी और राहुल की माता के रूप में यशोधरा अब सामने आती है।

यशोधरा अपने योगी पति सिद्धार्थ की तरह पूर्ण वियोगिनी और योगिनी भी बन जाती है। वह सिर के बाल काट देती है, अंजन, अंगराग, वस्त्रभूषण आदि सारे शृंगार छोड देती है। अब उसे हाथ में केवल चार चूडियाँ और सिन्दूर के बिन्दु की जरूरत है। इसके पास मलिन गुदडी में राहुल जैसा लाल (रत्न) है।

यशोधरा का महान त्याग और आदर्श यहाँ प्रकट होता है। सिन्दूर का बिन्दु उसके पति अर्थात सिद्धार्थ का सब जंजाल जला देगा इसका उसे पूरी तरह से न केवल भरोसा अपितु उसे इस बात पर विश्वास भी है।

यशोधरा एक आदर्श वियोगिनी है। वह अपने पति को न ताने देती है और न उनकी आलोचना करती हैं। उसे अपने पति पर गर्व है, वह पति की साधना में बाधा पहुँचाना नहीं चाहती। वह पतिव्रता नारी है इसलिए उसके मन में कोई भय नहीं है। प्रियतम वन में हैं और यशोधरा घर में तप कर रही है। उसे यह पूरा विश्वास भी है कि उसके भगवान उसके पास अवश्य आयेंगे। उसकी यहीं अवधारणा है कि भक्त कही नहीं जाते अपितु भगवान को ही भक्त के पास आता पडता है। यशोधरा के अनुसार –

'भक्त नहीं जातें कही, जाते हैं भगवान्
यशोधरा के अर्थ है, अब भी यह अभिमान।।'

आगे यशोधरा यह भी कहती है –

'उन्हें समर्पित कर दिये, यदि मैंने सब काम
तो आवेंगे एक दिन विश्चय मेरे पास
यहीं इसी आँगन में
सखि, प्रियतम वन में।'

ऋतुओं में परिवर्तनहोता रहता है किन्तु उन ऋतुओं में भी यशोधरा को अपने प्रिय पति की तपस्या ही दिखायी देती है। उसे 'तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उडाता' आते दिखायी देता है। पावस में स्वामी की दृष्टि और बिजली की चमक में उसे प्राणेश्वर की विश्व-वेदना के प्रति कसक दिखायी पडती है।

यशोधराको प्राणेश्वर का विकास शरद में दिखायी देता है और चांदनी के समान अपने पति की यश-कीर्ति संसार में फैली हुई नजर आती है। हेमंत में गिरते हुए पत्ते देखकर उसे यह प्रतीत होता है कि उसके प्रीतम का त्याग देखकर ही यह पतझड का आगमन हुआ है। परंतु वियोग की पीडा असह्य हो जाती है और यशोधरा के सामने संयोग की मधुर स्मृतियाँ जाग जाती है। और –

'उनका यह कुंज-कुटीर वही, झडता उड अबीर जहाँ
अलि, कोकिल, कीरशिखी सब हैं सुन चालक की रट 'पीव कहाँ'
अब भी सब साज समाज वहीं, तब भी सब आज अनाथ यहाँ
सखि, जा पहुँचे सुध-संग कहीं, यह अन्ध सुगन्ध समीर वहाँ।'

यशोधरा का राहुल जननी का रूप न केवल महत्वपूर्ण है बल्कि गौरवपूर्ण भी है। वह राहुल के साथ रहकर पति की विरह व्यथा को भूलने का प्रयास करती है। अपने पुत्र राहुल के साथ अपना अधिकाधिक समय बिताती है और उसके साथ ही रहती है। यशोधरा के दिन राहुल की सोहबत संगत में इस कदर बीत

जाते हैं किन्तु वह सिद्धार्थ को भूल नहीं पाती। सिद्धार्थ का विरह उसे सालता रहता है फिर भी वह प्रीतम की सिद्धि में बाधा बनना नहीं चाहती। क्योंकि –

'मुझे मिलोगे भला कहीं तो
वहाँ सही, यदि यहाँ नहीं तो
जहाँ सफलता, मुक्ति वहीं तो,
यशोधरा की बात रहें
गए हो तो यह ज्ञात रहें।'

यशोधरा के हदय में पीडा तो बहुत है और किसी आँधी के समान पीडा के झोंके आते हैं किन्तु उनमें इतनी क्षमता नहीं है कि वे उसके पैर अखाड कर उसका जीवन अस्त व्यस्त करें। उसका प्रियतम सिद्धार्थ उसकी उपेक्षा कर, उसके उचित अधिकारों की अवहेलना करके चला गया, यह बात उसके मन एवं हृदय में किसी काँटे के समान चुभती रहती है। इस अवमान के जबाब में उसने यह सोच लिया है कि चाहे कुछ भी हो किन्तु वह अपने प्रण पर अटल रहेगी और अपने सिद्धान्त एवं आदर्श से जरा सी भी नहीं हिलेगी। उसका यह प्रण राजा शुद्धोदन के समझाने बुझाने पर भी अटल और अडिग रहता है। उसे यह भी ज्ञात है कि उसके स्वामी उसके बहुत नजदीक आगे हैं उसकी आँखों से आसूँ धारा बहती रहती है, उसके प्राण तडपते रहते हैं फिर भी वह जहाँ की तहाँ पडी रहती है। उसके मन में बहुत व्याकुलता है किन्तु वह जरा भी विचलित नहीं होती।

यशोधरा की साधना भी पूर्ण हो जाती है और तथागत को खुद उसके पास पधारना पडता है। तथागत यह मान लेते हैं जिस तरह से उन्होंने यशोधरा का त्याग किया था, उसमें उनकी ही दुर्बलता थी –

'माना, दुर्बल ही था, गौतम छिपकर गया निदान
किन्तु शुभे परिणाम भला ही हुआ सुधा-संधान
क्षमा करो सिद्धार्थ शाक्य की निर्दयता मेरी जान
मैत्री-करूणा-पूर्ण आज वह शुद्ध बुद्ध भगवान।'

भगवान बुद्ध नारी की महिमा एवं महत्ता को स्वीकृति देते हुए कहते हैं –

'दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी
भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से।
क्षीण हुआ वन में क्षुधा से मैं विशेष जब
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से।
आया जब मार मुझे मारने को बार-बार

अप्सरा-अनीकिनी सजाये हेम-हीर से।

जुझा मुझे पीछे कर पंचशर वीर से।'

यशोधरा अपने प्रिय पुत्र राहुल को तथागत को दान के रूप में सौंपती हुए अपने महान त्याग का परिचय देती है। वह तथागत से कहती है -

'तुम भिक्षुक बनकर आए थे, गोपा क्या देती स्वामी ?

था अनुरूप एक राहुल ही रहे सदा यह अनुगामी।

मेरे दुःख में भरा विश्वसुख, क्यों न भरूँ फिर मैं हामी।

बुद्ध शरणं, धर्म शरणं, संघ शरणं गच्छामिऽ।'

यहाँ इस रचना का समापन होता है। इस रचना में यत्र-तत्र-सर्वत्र यशोधरा ही दिखायी देती है। यशोधरा अपने पति के लिए सब कुछ छोड देती है और अन्त में अपने इकलौते पुत्र राहुल को भी दान के रूप में तथागत को सौंपती है।

जब पति भिक्षु बनकर सामने आता है तो उसे क्या देना चाहिए ? अपने पुत्र को, अपने सबसे प्रिय को वह अपने पति को दान में देती है। यही भारत की नारी की गौरव यात्रा है जिसे गुप्त जी ने सफलता पूर्ण रूपायित, रेखांकित किया है।

1.3.3 'यशोधरा' का कथानक :-

विषय वस्तु से ही कथ्य का निर्धारण होता है। वर्ण्य विषय लेखक के ध्येय का निर्धारण करता है। वर्ण्य से अभिप्राय है - जिसका वर्णन किया गया हो, जो वर्णन करने के लिए योग्य हो अथवा जिसे लेखक अपनी रचना के माध्यम से समझ पाया हो तो विस्तार से बयान करना चाहता हो यह उस कृति का कथ्य होता है। कथ्य में गतिशीलता अधिक होती है। कथ्य शब्द संस्कृत की 'कथ्य' धातु से बना है जिसका अर्थ है कहना। रचनाकार युगीन परिवेश के साक्षात्कार से करके अपने समाज का निरीक्षण करता है और उचित-अनुचित को ध्यान में रखते हुए समाज के समुचित विकास की ओर संकेत करता है। साहित्यकार स्त्रष्टा एवं द्रष्टा होता है। वह समाज की संभावनाओं को लक्ष्य करके अपने पाठकों से जो भी कुछ कहता है वही उसके साहित्य का कथ्य कहलाता है। समीक्षक इसके अनुशीलन द्वारा ही कृति का विश्लेषण करता है। इससे लेखक की मनोवृत्ति और परिस्थिति को जानना अनिवार्य है।

कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के यहाँ पुत्र के रूप में भगवान बुद्ध का अवतार हुआ था। उनकी जननी महामाया देवी (मायादेवी) ने उन्हें जन्म देकर मानो कृतकृत्य होकर इस संसार से विदाई ली थी। शुद्धोदन की दूसरी रानी महाप्रजावती गौतमी जो मायादेवी की सगी बहन थी, उसने ही बचपन से सिद्धार्थ का पालन पोषण किया था। इसलिए लोग सिद्धार्थ को गौतम के नाम से भी पहचानते थे। महाप्रजावती की ओर एक संतान थी जिसका नाम नन्द था। नन्द सिद्धार्थ के सौतेले भाई थे।

राजकुमार का मूल नाम सिद्धार्थ था किन्तु गौतमी के द्वारा पालन पोषण होने के कारण उनका दूससा नाम गौतम अधिक प्रचलित हुआ। सिद्धि प्राप्ति के बाद गौतम को बुद्ध कहा जाने लगा। सुगत, तथागत और अमिताभ यह तीनों बुद्ध के ही नाम हैं जिनका रचनाकार ने सिद्धार्थ के लिए प्रयोग किया है।

बचपन से ही गौतम में वीतराग के लक्षण प्रकट होने लगे। शिक्षा-प्राप्ति के बाद उसमें और भी वृद्धि हुई। शुद्धोदन को इस बात की सदैव चिन्ता रहती थीं इसलिए गौतम को संसारी बनाने के लिए उन्होंने गौतम का विवाह कर देना उचित समझा। काफी खोज और छानबीन करने के बाद देवदह की राजकुमारी यशोधरा जिसे गोपा भी कहते थे, उनकी वधु बनने के लिए योग्य सिद्ध हुई।

महाराज दण्डपाणि ने वैवाहिक सम्बन्ध को स्वीकृति देने से पहले गौतम की विद्या बुद्धि के साथ, गौतम के बल और वीर्य की भी परीक्षा ली। सिद्धार्थ ने शास्त्र शिक्षा के साथ शस्त्र शिक्षा भी ग्रहण की थी। किन्तु शास्त्रों की ओर से पुत्र का रूझान और झुकाव देखकर राजा शुद्धोदन की चिन्ता और भी बढने लगी। दण्डपाणी द्वारा ली गई परिक्षाओं में सिद्धार्थ अनायास ही उत्तीर्ण हुए। मानस की एक चौपाई है -

'कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना, रहा विवाहु चाप आधीना
टूटत हीं धनु भयउ बिबाहु, सुर नर नाग बिदित सब काहु।'

मुनि ने कहा - हे चतुर नरेश सुनो। यों तो विवाह धनुष के आधीन था; धनुष के टूटते ही विवाह हो गया। देवता, मनुष्य, नाग सब किसी को यह मालूम है।

'टूटत ही धनु भयउ बिबाहु' के अनुसार यशोधरा के साथ सिद्धार्थ का विवाह हो जाता है।

पिता शुद्धोदन ने उनके लिए एक ऐसा प्रासाद बनवाया था, जिसमें सभी ऋतुओं के योग्य सुख के साधन एकत्र थे। किसी रास-रंग और आमोद-प्रमोद की कोई कमी नहीं थी। परन्तु बुद्ध भगवान इसके लिए अवतीर्ण नहीं हुए थे। परमेश्वर के अवतार का एक निश्चित लक्ष्य होता है और लक्ष्य जब तक पूर्ण नहीं होता वह स्वस्थ नहीं बैठते। शुद्धोदन का प्रयास था जीवन में जो भी कुछ सुन्दर, शोभन और सजीव है उस पर ही सिद्धार्थ की दृष्टि पडे। एक दिन सिद्धार्थ रथ में बैठकर कपिलवस्तु नगर का भ्रमण करने हेतु निकलते हैं तब पहले दिन एक रोगी को दूसरे दिन एक वृद्ध को और तीसरे दिन एक मृत व्यक्ति को देखकर संसार की इस गति पर गौतम को बडी ग्लानि और करूणा आई। दुःख क्या है इसका सिद्धार्थ को तब तक पता ही नहीं था। इसलिए उन्होंने अपनी सारथी छन्दक से इस संदर्भ में पूछताछ की तब छन्दक ने सभी बातों का सिद्धार्थ के सामने खुलासा किया। पहले ही सिद्धार्थ चिन्तनशील व्यक्ति थे, बाद में उनकी चिन्ता में वृद्धि हुई और सिद्धार्थ बार-बार सोच विचार करते रहे।

यशोधरा से उन्हें एक पुत्ररत्न राहुल की प्राप्ति हुई थी। अभी उसके जन्म का उत्सव भी पूरा न हुआ था कि कपिलवस्तु में उनके गृह-त्याग का शोक छा गया। रोगी, वृद्ध और मृत व्यक्ति को देखने के बाद गौतम खिन्न हुए। और उन्होंने इसका उपाय खोजने के लिए एक दिन अपना घर छोड दिया। उनके इस प्रयाण को

महाभिनिष्क्रमण कहते हैं। रात को अपने सेवक सारथी छन्दक के साथ कन्थक नामक अश्वपर सवार होकर सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु नगर का त्याग किया।

जिस प्रकार रूग्ण, वृद्ध और मृतक को देखकर वे चिंतित हुए थे, उसी प्रकार एक दिन एक तेजस्वी सन्यासी को देखकर उन्हें संतोष भी हुआ था। अपने राज्य की सीमा पर पहुँचकर उन्होंने राजकीय वेश-भूषा छोडकर संन्यास धारण कर लिया और रोते हुए छन्दक को कपिलवस्तु लौटा दिया। सब के लिए उनका यहीं संदेश था कि मैं सिद्धि लाभ करके लौटूंगा।

सिद्धार्थ वैशाली और राजगृह में विद्वानों का सत्संग करते हुए गया पहुँच गए। राजगृह के राजा बिम्बसार ने उन्हें अपने राज्य का अधिकार तक देकर रोकना चाहा, परन्तु वे तो स्वयं अपने राज्य का त्याग करके आए थे। सिद्धि-लाभ करने के बाद बिम्बसार को दर्शन देना उन्होंने स्वीकार कर लिया।

राजगृह से पाँच ब्रह्मचारी भी तप करने के लिए उनके साथ आए थे जो पंचभद्रवर्गीय के नाम से प्रसिद्ध है। निरंजना नदी के किनारे गौतम ने तपश्चर्या आरम्भ की। बरसों तक वे कठोर साधना करते रहे परन्तु सिद्धि प्राप्ति का समय अभी नहीं आया था।

सिद्धार्थ का विगलितवसन शरीर आतप, वर्षा, शीत और क्षुधा के कारण अवश और जड हो गया कि चलना फिरना तो दूर, उसमें हिलने डूलने को शक्ति भी न रह गई। विचार करने पर उन्हें यह मार्ग उपयुक्त न जान पडा और उन्होंने मिताहार स्वीकार करके योग साधन करना उचित समझा। किन्तु उनके साथी पाँच भिक्षुओं ने उन्हें तपोभ्रष्ट समझकर उनका साथ छोड दिया।

न गौतम ने उनकी आलोचना की ओर ध्यान भी नहीं दिया क्योंकि वे निन्दा-स्तुति से उपर उठ चुके थे। परन्तु देह की दुर्बलता के कारण वे भिक्षा माँगने के लिए भी न जा सकते थे। इधर उनके शरीर पर वस्त्र भी नहीं था। उसकी उन्हें आवश्यकता भी नहीं थी। परन्तु लोक में भिक्षा करने के लिए जानेपर वे लोग मर्यादा का विचार वे कैसे छोडते? किसी प्रकार पास के स्मशान से एक वस्त्र उन्होंने प्राप्त किया और उसे पहन लिया।

गाँव की कुछ लडकियाँ उन्हें आहार दे जाती थी। उस आहार के कारण उनमें चलने-फिरने की शक्ति आ गई। सुजाता नामक एक स्त्री ने उन्हें बडे सुस्वाद खीर भेंट की थी। उसे खाकर भगवान बुद्ध बहुत तृप्त हुए थे।

एक दिन निरंजना नदी के दूसरे किनारे पर जाकर एकान्त में उन्होंने एक अश्वत्थ वृक्ष देखा। यह स्थान उन्हें समाधि के लिए बहुत उपयुक्त जान पडा। अन्त में वही वृक्ष बोधिवृक्ष कहलाया और वहीं समाधि में निर्वाण का तत्व उनको दृष्टिगोचर हुआ। इसके पहले स्वयं मार (कामदेव) ने उन्हें उस मार्ग से हटाना चाहा क्योंकि वह विषय वासनाओं के विरोधी मार्ग था। सुन्दर अप्सराएँ उनके सामने प्रकट हुई परन्तु वे ऐसे ऋषि-मुनि नहीं थे कि अपने पथ से हट जाते और भ्रष्ट हो जाते। मार ने केवल लुभाने की चेष्टा नहीं की, बल्कि उन्हें डराया, धमकाया भी था। कितनी ही विभीषिकाएँ उनके सामने आई, परन्तु वे अटल रहे। स्वयं

जीवनमुक्त होकर भगवान ने जीव मुक्ति के लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया। कर्मकाण्ड के आडम्बर की अपेक्षा सदाचार को सिद्धार्थ ने प्रधानता दी और यज्ञ के नाम पर होने वाली जीव हिंसा का घोर विरोध किया। जो पाँच भिक्षु उनका साथ छोडकर चले गए थे, उन्हीं को सब से पहले भगवान के उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संसार भर जिसकी धूम मच गई, काशी के पास सारनाथ में ही आरंभ में धम्मचक्र प्रवर्तन हुआ। वे भिक्षु इन दिनों वहीं थे।

सिद्धार्थ के 'महाभिनिष्क्रमण' के बाद कपिलवस्तु नगर में हाहाकार मच गया। सारी कपिलवस्तु नगरी शोकसागर में डूब जाती है। यशोधरा, नन्द, शुद्धोदन, महाप्रजापती, छन्दक, पुरूजन सभी शोकातुर हो जाते हैं। सवेरे नींद खुलने के बाद सब को इस बात का समाचार मिलता है। यशोधरा का हृदय कंपित हो जाता है और वह वेदना से चीख पडती है। यशोधरा की यह वेदना है कि उसके स्वामी उसे बगैर बताए चले गए। क्योंकि वह उन्हें रोकने का प्रयास बिलकुल नहीं करती। वह एक क्षत्राणी है इसलिए वहं स्वंय उनको भेज देती। उसके स्वामी सिद्धि प्राप्त करने हेतु गए हैं यह तो स्वयं उसके लिए भी गौरव की बात है। परन्तु दुःख इस बात का है कि वे चोरी-चोरी गए।

यशोधरा स्वाभिमानी है। वह अपने पति की राह में सिद्धि प्राप्ति में बाधा नहीं बन सकती। उसके मन में यह विश्वास है कि उसके स्वामी निश्चित ही सिद्धि प्राप्त करेंगे और वे उसके दुःख से व्यथित न हो। उसे यह भी भरोसा है कि गौतम जरूर वापस लौटने पर कुछ अनूठा एवं अपूर्व वस्तु लेकर आयेंगे। उसके स्वामी जो भी कुछ प्राप्त करेंगे उसमें उसका भी तो हिस्सा निश्चित ही होगा।

यशोधरा अपने पति पर गर्व करनेवाली स्वाभिमानी नारी है। इसलिए उसके सास-ससुर जो भी कुछ कहेंगे, उनके प्रश्नों पर वह मौन रहेगी और सब कुछ सह लेगी। सिद्धार्थ के भाई नन्द भी व्यथित हैं। सिद्धार्थ उनको छोडकर चले गए हैं। यह उनके उपर सबसे बडा अत्याचार हुआ है। वे उनकी थाती (धरोहर) राहुल पर सब कुछ निछावर करने के लिए तैयार है। माता महाप्रज्ञावती की वेदना का स्वरूप निराला है। उन्होंने ही सिद्धार्थ को अपना दूध पिलाकर पाला था। वह भी बहुत व्यथित होती है। इसी प्रकार महाराज शुद्धोदन भी अधीर बन चुके हैं। उनके लिए सिंहासन और राज्य सब कुछ व्यर्थ है। वे यशोधरा से धैर्य की याचना करते हैं। परिवार जनों के साथ पौरजन अर्थात प्रजा भी शोकसागर में डूबी हुई है। इसी समय छन्दक लौटकर आता हैऔर कहता है कि सिद्धार्थ ने अपने लंबे बाल काट डाले और संन्यास ग्रहण कर लिया। उन्होंने आप सब के लिए यही संदेश भेजा है मेरी चिन्ता की न करे, मुझे जरा-सा भी भय नहीं है। जिस दिन मुझे सिद्धि प्राप्त होगी मैं निश्चित ही स्वदेश वापस लौटूंगा। मैं किसी का दुःख सह नहीं सकता, तुम सब लोग मेरे अपने हो और हर जीव भाग का हित यही मेरा परम उद्देश्य है।

उपर्युक्त घटना के बाद कथानक के विकास का आरम्भ होता है। यशोधरा गर्विता, स्वाभिमानी पत्नी और राहुल जननी के रूप में सामने आती है।

यशोधरा अपने योगी की पूर्ण वियोगिनी बन जाती है। वह सिर के बाल काट देती है। सारे शृंगारों का त्याग करती है। हाथ में केवल चार चूडियाँ और मस्तक में सिन्दूर बिन्दु के अलावा उसेक पास कुछ और

नहीं है। उसकी मलिनगुदडी में राहुल-सा पुत्ररत्न है। यशोधरा का महान त्याग और आदर्श को गुप्त जी ने चित्रित किया है। वह एक आदर्श वियोगिनी भी है। वह पति की आलोचना नहीं करती। उसे अपने वीर पति पर गर्व है। वह पति की साधना में बाधा न बनकर उसकी सहायता करना चाहती है। वह पतिव्रता नारी है इसलिए उसे कोई भय नहीं है। गौतम वन में और यशोधरा घर में किन्तु दोनों अपने तप और साधना कर रहे हैं। उन्हें विश्वास है कि उसके आराध्य (गौतम) अवश्य ही उसके पास आएँगे। वह यह भी मानती है भक्त कहीं नहीं जाते बल्कि भगवान को ही भक्त के पास आना पडता है।

कालचक्र बदलता रहता है, किन्तु उसमें यशोधरा को अपने प्रीतम की तपस्या ही नजर आती है। उसे 'तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उडाता'आते दिखाई देता है। वर्षाऋतु में स्वामी की दृष्टि और बिजली की चमक में उसे प्राणेश्वर की विश्ववेदना के प्रति कसक दिखाई देती है। यशोधरा को प्रीतम का विकास शरद ऋतु में दिखाई देता है और शुभ्र चांदनी के रूप में वह संसार की शान्ति और कान्ति फैली हुई देखती है। हेमन्त में पतझर के कारण टूटते हुए पत्तों को देखकर वह सोचती है कि उसके प्रीतम का त्याग देखकर ही पतझर हो रहा है।

परन्तु विषय-वियोग यशोधरा को कभी कभी अधीर बना देती है और वियोग के दिनों में संयोग दिनों की स्मृतियों से वह सिहर उठती है। चातक की रट'पीव कहाँ' से उसका मन खिन्न हो जाता है। यशोधरा का राहुल जननी का रूप सर्वाधिक सफल और सजीव बन पडा है। वह राहुल को देखकर अपने प्रीतम की विरह व्यथा को भूल जाती है। उसका दिन राहुल की बालक्रीडाओं में गुजर जाता है और राहुल का बचपन तथा पालन पोषण यहीं उसका अब दिनक्रम बन चुका है। किन्तु फिर भी अपने प्रीतम का विरह उसे सालता रहता है। इतना होने के बावजूद भी वह अपने पति की आलोचना भूलकर भी नहीं करती और न उन्हें उलाहना देती है। यशोधरा का ह्रदय पीडा से व्याप्त है किन्तु उसमें इतनी क्षमता नहीं है कि वह यशोधरा के व्यक्तित्व ध्वस्त कर सकें। उसका प्रीतम उसकी उपेक्षा करके चला गया है यह बात उसके ह्रदय में शूल के समान चुभती रहती है। इस उपेक्षा के कारण उसने भी प्रतिज्ञा की है वह अपने स्थान पर अटल रहेगी। उसका यह निश्चय राजा शुद्धोदन के लाख समझने के बावजुद भी अटल रहता है।

बुद्ध के वापसी का समाचार यशोधरा को जब मिलता है वहाँ से इस कथानक की चरमसीमा का आरंभ हो जाता है। जैसे कि यशोधरा का यह प्रण है कि वह सिद्धार्थ के पास नहीं जाएगी अपितु सिद्धार्थ को ही यशोधरा के पास आना पडेगा। क्योंकि यशोधरा की यह अवधारणा है कि भक्त भगवान के पास नहीं जाते बल्कि भगवान को ही भक्त के पास आना पडता है। अपनी इस बात पर वह अडिग, अटल रहती है और मानिनी यशोधरा अपने स्वाभिमान को छोडना नहीं चाहती। उसेक ससुर-सास, शुद्धोदन और महाप्रजावती उसे कई बार समझाने-बुझाने का प्रायस करते हैं किन्तु यशोधरा जिस ठोस भावभूमि और धरातल पर खडी है वहाँ से उसको हटाया इतना आसान नहीं है।

आम तौर पर पाठक के मन में यह कौतुहल जागृत हो जाता है कि सचमुच यशोधरा सिद्धार्थ को मिलने हेतु जाती है या नहीं? पति सिद्धार्थ की तरह यशोधरा की साधना भी सिद्ध हो जाती है। भगवान तथा

गत स्वयं उसके पास आते हैं। सिद्धार्थ यह भी मान लेते हैं कि वे जिसप्रकार चले गए थे, उसमें उनकी दुर्बलता ही छिपी थी। ''मैंने तुम्हारे साथ निर्दयता की तो मुझे तुम क्षमा करो। मैं तुम्हें छोडकर चला गया यह मेरी दुर्बलता थी किन्तु इसका परिणाम निश्चित ही शुभ हुआ है। क्योंकि मैत्री, करूणा-पूर्ण मैं आज शुद्ध बुद्ध भगवान बन चुका हूँ।'' इतना ही नहीं भगवान बुद्ध नारी की महत्ता स्वीकार लेते हैं। वे यशोधरा से कहते हैं कि पुरूष दीन होता है किन्तु नारी कभी भी दिन नहीं हो सकती। भूत दया की मूर्ति का नाम नारी है। जब मैं तपस्या कर रहा था, उस समय मैं भूख से व्याकुल और क्षीणकाय बन चुका था। तब सुजाता नामक स्त्री ने ही मुझे खीर खिलाकर मेरे प्राणों की रक्षा की थी और मैं जीवित रहा। माया ने जब-जब अपने पंचशर से मुझपर हमला किया, मुझे अप्सराओं के प्रलोभन दिखाए, तुम्हारी तपस्या के कारण मैं इन प्रलोभनों का शिकार नहीं हुआ। मैं ठीक रहा इसका कारण तुम हीं थीं और तुम्हारी तपस्या थी इसलिए आज मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ।

बुद्धदेव के मुख से यह वचन सुनने के बाद गोपा कृतकृत्य होती है और अपने प्रीतम को इतने वर्षो के बाद पाकर वह उन्हें कुछ भेंट वस्तु देना चाहती है। अब बुद्ध जैसे लोकोत्तर व्यक्तित्व को कौनसी भेंट दे यह सवाल उसके मन में उपस्थित होता है। किन्तु यशोधरा के मन में कुछ और ही विचार था। यशोधरा अपने प्रिय पुत्र राहुल को बुद्ध को सौंपती है। वह कहती है कि 'आज मैं कृतकृत्य हो गई। आज बहुत बडा योग है। राहुल आओ और अपने पूज्य पिता से ज्ञान प्राप्त करो।'

राहुल भी अपने पिता तथागत बुद्ध से कहता है, 'मुझे अपना पैतृक भाग दो, आप जैसा मेरा शील बने, मैं आप के चरणों पर नत हूँ। मुझे राह दिखाइए, मुझे असत्य से सत्य की ओर, तिमिर से उजाले की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर ले चले।' बुद्धदेव राहुल से कहते हैं, 'आज मैं धन्य हुआ, हे वीर पुत्र अब तुम मेरे पास आओ, मेरे अधिकारों में भागी बनो, सत्य का प्रकाश और अमृत एक साथ प्राप्त हो, तुम बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में आओ।' राहुल बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में चला जाता है।

इस प्रबंध काव्य का समापन फिर एक बार यशोधरा के शब्दों में ही होता है। यशोधरा अपने स्वामी सिद्धार्थ से कहती है कि 'हे स्वामी ! तुम भिक्षुक बनकर आए थे, तुम्हे गोपा क्या भिक्षा देती ? मेरे पास तुम्हारी धरोहर के रूप में तुम्हारा पुत्र राहुल ही था जो तुम्हारे ही राह पर चले यही मेरी इच्छा है। मेरे दुःख में सम्पूर्ण विश्व का सुख भरा हुआ है। इसलिए मैंने पुत्र राहुल को तुम्हें दाने में दिया है और हामी भरने के अलावा मेरे सामने कोई और विकल्प भी तो नहीं है।' अन्त में वह भी प्रार्थना करती है - 'बुद्ध शरणं, धर्म शरणं, संघं शरणं गच्छामि।'

इस प्रबंध काव्य के द्वारा रचनाकार मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा और सिद्धार्थ की कहानी का विवेचन किया है। सिद्धार्थ के गृहत्याग के पश्चात बुद्ध बनने की कहानी इस प्रबंध काव्य का विषय है। तथापि सिद्धार्थ का बुद्ध में परिवर्तन होना इसको अधिक महत्व नहीं है तो यशोधरा की जीवन गाथा का अधिक महत्व है। राजकन्या यशोधरा किस तरह एक साधिका में परिवर्तित हो जाती है और अन्त में जब कुछ देने

का समय आता है तब किसी की परवाह किए बगैर यह अपने इकलौते पुत्र राहुल को तथागत को दान करती है यह बात सबसे बडी है। माँ आखिर माँ ही होती है किन्तु जब प्रश्न सिद्धान्त का आता है तब वह बेहिचक अपने पुत्र को दान देती है और यही भारतीय नारी की विशेषता है जिसे गुप्त जी ने इस रचना के द्वारा स्पष्ट किया है। यशोधरा अपने पति से नाराज है, दुःखी है किन्तु फिर भी वह पति के रास्ते में बाधा नहीं बनती और एक आदर्श विवाहित भारतीय नारी का अपना कर्तव्य निभाती है, यह बात भी उतनी ही उल्लेखनीय है।

फूल की तरह नारी कोमल होती है लेकिन समय आने पर वह वज्र के समान कठिन और दृढ बन जाती है यहीं इस प्रबंध काव्य का कथ्य है जिसे मैथिलीशरण गुप्त जी ने सफलता के साथ व्याख्यापित, रूपायित और रेखांकित किया है और यही रचनाकार की सफलता है।

1.3.4 'यशोधरा' : चरित्र–चित्रण :–

'यशोधरा' प्रबंध काव्य में केवल यशोधरा का चरित्र चित्रण महत्वपूर्ण इसलिए है कि वह इस काव्य की केवल नायिका ही नहीं अपितु केन्द्रीय पात्र भी है। यशोधरा के इर्द–गिर्द ही इस प्रबंध काव्य का गुप्त जी ने ताना बाना बुना है। अर्थात इस काव्य में यशोधरा का चरित्र मुख्य रूप से उभरकर आता है। इस प्रबंध काव्य की कहानी यशोधरा को केन्द्र में रखकर लेखन किया है।

यशोधर के अलावा अन्य सारे गौण पात्र हैं जिसमें सिद्धार्थ, राहुल, शुद्धोदन, महाप्रजापती और छन्दक आदि। किन्तु इन पात्रों के चरित्र के चरित्र को रचनाकार ने अधिक विकसित नहीं किया। केवल सिद्धार्थ का अपवाद छोडे ते अन्य पात्र केवल कथावस्तु को आगे ले जाने का किरदार अदा करते हैं। कथावस्तु में उनके चरित्रों का अधिक योगदान भी नहीं है। मुख्य पात्र यशोधरा है और गौण पात्र बुद्ध, शुद्धोदन, महाप्रजापती और नंद के साथ छन्दक आदि है।

1.3.4.1 यशोधरा का चरित्र–चित्रण

बुद्धदेव की आभा के कारण यशोधरा की ओर रचनाकारों ने अधिक ध्यान नहीं दिया किन्तु इस भूल गलती का परिमार्जन करते हुए गुप्त जी ने यशोधरा को बुद्ध से भी अधिक महत्व देते हुए इस प्रबंध काव्य की रचना की है। इसलिए अपने भाई सियारामशरण गुप्त को लिखे हुए पत्र में मैथिलीशरण जी ने कहा है – 'भगवान बुद्ध और उनके अमृत–तत्त्व की चर्चा तो दूर की बात है। राहुल जननी के दो–चार आँसू ही तुम्हें इसमें मिल जाएँ तो बहुत अधिक समझना। और उनका श्रेय भी 'साकेत' की उर्मिला देवी को ही है, जिन्होंने कृपापूर्वक कपिलवस्तु के राजोपवन की ओर मुझे संकेत किया है। हाय ! यहाँ भी वहीं उदासीनता ! अमिताभ की आभा में ही उनके भक्तों की आँखें चौधिया गई और उन्होंने इधर देखकर भी न देखा। सुगत का गीत तो देश–विदेश के कितने ही कवि–कोविदों ने गाया है, परन्तु गर्विणी गोपा की स्वतंत्र–सत्ता और महत्ता देखकर मुझे शुद्धोदन के शब्दों में यह कहना पडा है कि – 'गोपा बिन गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको !' अथवा तुम्हारे शब्दों में मेरी वैष्णव–भावना ने तुलसीदल देकर यह नैवेद्य बुद्धदेव के सम्मुख रक्खा है।'

मूलतः भले ही हिन्दू परंपरा ने बुद्ध को विष्णु के अवतारों में शामिल किया है परन्तु हिन्दू परंपरा ने बुद्ध की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। जहाँ बुद्ध उपेक्षित रहें वहाँ यशोधरा की ओर कौन ध्यान देता? अश्वघोष की 'बुद्ध चरित्र' काव्य को भी न्याय नहीं मिला इस स्थिति में यशोधरा का सवाल ही उपस्थित नहीं होता। रवींद्रनाथ ठाकुर ने सर्वप्रथम प्राचीन युग के उपेक्षित पात्रों की ओर ध्यान आकर्षित किया और आचार्य म. प्र. द्विवेदी ने 'उर्मिला' जैसे उपेक्षित पात्रों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया। इसलिए उपेक्षित पात्रों की खोज नए सिरे से होने लगी और इसी प्रवृत्ति का परिणाम यशोधरा का चरित्र चित्रण है।

इस प्रबंध काव्य में यशोधरा के कई रूप उभरते हैं। उसका हरएक रूप उसके व्यक्तित्व और त्याग की पुष्टि करता है और उसका एक अलग स्थान निर्धारित करता है।

1. **विरहिणी यशोधरा :–**

पति प्रेम में डूबी हुई यशोधरा का यह रूप विरहिणी नारी का एक अनुपम चित्र प्रस्तुत करता है। जब यशोधरा को यह मालूम होता है कि उसके पति के सिद्धार्थ ने अब संन्यास-ग्रहण किया है और अब वह वापस नहीं आयेगे। तब उसे आघात पहुँचता है और उसका मन-मस्तिष्क तीव्रतम गति से आंदोलित होता है। उसके जीवन और व्यक्तित्व का करूण चित्र खींचने में गुप्त जी सफल हुए हैं। यशोधरा केवल अपने पति को देखना चाहती है। संन्यासी के रूप में पति को देखकर वह संतोष प्राप्त कर लेती है। उसे गौतम के साथ रहने की कोई इच्छा नहीं है लेकिन नारी में जो नारी सुलभ दुर्बलता होती है उसका भी उसमें अंश नहीं है। विरहावस्था ने उसे संयम और तपस्या के सबक सिखाए हैं और वह दिव्य बन चुकी है। इसलिए वह सामान्य नारी सुलभ इच्छा आकांक्षाओं से काफी उपर उठ जाती है। उसके चरित्र का विकास धीरे-धीरे हो जाता है। उसका अंतिम रूप स्वाभाविक और महिमामय है। पति विरह में यशोधरा अपने कष्टों का सामना जिस तरह से करती है वह अनुपम और अजोड है जिसकी सानी 'साकेत' की उर्मिला के अलावा किसी अन्य से नहीं हो सकती।

2. **गर्विणी यशोधरा :–**

यशोधरा का सबसे आकर्षक रूप गौरवमयी माता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यशोधरा को अपने मातृत्व पर अभिमान है। वह मातृत्व में अपने नारी जीवन को सार्थक समझती है। कुछ स्थानों पर वह बुद्ध के संन्यास मार्ग की आलोचना भी करती है। उसकी नजर में आसक्तिरहित होकर सांसारिक भोग और कर्तव्य का मार्ग संन्यास से भी श्रेष्ठ है। उसके जीवन सिद्धान्त निष्काम हैं। वह नारी जीवन के महत्व का उद्घोष बार-बार करती है। पति सिद्धार्थ के द्वारा की गई उपेक्षा पर पछतावा भी करती । पुरूष के प्रति उसका नजरियाँ निंदात्मक नहीं है किन्तु वह इस बात से अंजान नहीं है कि पुरूष नारी को अपनी सिद्धि साधना के मार्ग में सबसे बडा रोडा मानता है। उसके युग में केवल सनातन धर्म ही वहीं अपितु जैन और बौद्धमत में भी संन्यास की प्रधानता थी और हर धर्म मुक्ति की राह में स्त्री को सबसे बडी बाधा मानते थे। अतः यशोधरा बार-बार गृहस्थ धर्म की पैरवी और महत्ता की प्रशंसा करती है। नारी को सृष्टिकारिणी शक्ति के रूप में स्वीकार करते हुए उसे पुरूष के बराबर और समकक्ष मानती है। उसके लिए वह संघर्ष भी करती है।

यह आधुनिकता की अवधारणा है और गुप्त जी ने नारी के व्यक्तित्व का आदर बढाने के लिए यशोधरा के मुख से संन्यास धर्म की आलोचना कराई है। पति सिद्धार्थ के द्वारा यशोधरा की वंचना की जाती है फिर भी वह चुपचाप इस बात को सह लेती है और अपनी राह से तनिक भी विचलित नहीं होती। अपने पति द्वारा की गई उपेक्षा से वह क्रोधित नहीं होती अपितु दुःखी होती है। पछतावा भी करती है लेकिन क्रोध इसलिए नहीं करती क्योंकि क्रोध में बदले की भावना होती है और प्रतिशोध का परिणाम कभी भी अच्छी नहीं होता, यह बात समझने के लिए जो सयानापन आवश्यक होता है वह उसमें कूट-कूट कर भरा है. क्योंकि प्रतिशोध से प्रतियोगिता की भावना जागृत होती है। वर्तमान नारी की यहीं प्रवृत्ति है कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष के साथ स्पर्धा एवं प्रतियोगिता करती है। अर्थात यह आधुनिक दृष्टिकोण है जिसे हम अतिवाद भी कह सकते हैं। इस सन्दर्भ में संतुलित मत यह होना चाहिए कि नारी को सम्पत्ति, श्रम और समाज के सम्बन्धी पूर्ण अधिकार दिये जाए परंतु अर्थ यह नहीं है कि नारी पुरूष की ओर एक शत्रु की नजर से देखे और उसे पराजित करना ही उसके जीवन का उद्देश्य बन जाए।

इस रचना का लेखन 1930 ई. के आसपास हुआ जिस समय समाज में नारी के अधिकारों के संदर्भ में चर्चा चल रही थी। उस वक्त नारी पक्ष की ओर से जो असंतोष व्यक्त हो रहा था वह सामाजिक क्रांति के लिए आवश्यक था परंतु उस असंतोष और विद्रोह का कोई लक्ष्य नहीं था। ऐसे समय जब यशोधरा का लेखन हुआ, लेकिन गुप्त जी का इस आन्दोलन की ओर देखने का नजरिया अलग था और नारी सम्मान की वकालत करते हुए कवि ने नारी के आदर्श रूप में कोई परिवर्तन नहीं किया। कवि के लिए यह सम्भव भी नहीं था। यशोधरा अपने सम्मान के लिए संघर्ष निश्चित ही करती है किन्तु यशोधरा का यह रूप सामयिक होने के कारण अपनी ओर आकृष्ठ करता है। यशोधरा अपने पति के द्वारा उपेक्षित होकर उसका पति जब वापस आता है तो उसे मिलने के लिए नहीं जाती और स्पष्ट कहती भी है कि जिसने उसका त्याग किया है, उसकी उपेक्षा की है, उसे उपेक्षित बनाकर छोड दिया है उसे पुनः अपनाना पति का ही कर्तव्य है। उपेक्षिता का कार्य यह नहीं है कि वह उपेक्षा कर्ता के पास जाकर अपनी शिकायत करे।

यशोधरा की स्वाभिमानी मूर्ति युग-धर्म के अनुकुल है। उसका आचरण उसे राजपत्नी या राजकन्या से ऊपर उठाता है। नारी केवल भोग विलास का साधन नहीं है और न वह प्रजोत्पति के लिए पैदा हुई है बल्कि उसे भी सम्मान की भूख है। वह केवल वासना की पूर्ति नहीं चाहती, वह सम्मान भी चाहती है यह कवि की अवधारणा है। उसे भी अपनी उपेक्षा अपमान जनक लगती है। पुरूष का यहीं परम कर्तव्य है कि वह नारी को सम्मान दे, उसे एक सखी और सहयोगी के रूप में देखे। उसे समाज का एक अटूट हिस्सा समझे यही दृष्टिकोण यशोधरा के पृष्ठों पर बार-बार दिखायी देता है।

यशोधरा का गर्व और मान सम्पूर्ण नारी जाति के गर्व और सम्मान का प्रतीक है। यशोधरा में अगर आत्मसम्मान की भावना न होती तो यशोधरा एक साधारण विरहिणी नारी बन जाती। स्वाभिमान से ही व्यक्तिगत के सौन्दर्य की गरिमा बढ जाती है अन्यथा नारी तो दैन्य और हीनता का शिकार हो जाती है। स्वयं बुद्ध भी दैन्य को अच्छा नहीं समझते थे।

बुद्‌ध तपस्या करते समय, अप्सराओं के द्वारा जब विघ्न उपस्थित होते हैं तब यशोधरा की तपस्या ही बुद्‌ध को बचाती है। यशोधरा अब और कुछ नहीं चाहती क्योंकि जब स्वयं बुद्ध के मुख से यशोधरा जब नारी महिमा सुनती है तो उसका अहं सन्तुष्ट हो जाता है और उसके मन में और भी श्रद्धा बढ जाती है। मानिनी का मान छूट जाता है और नारी के सम्मान की रक्षा भी हो जाती है। यशोधरा में अहं और समर्पण दोनों एक साथ मिलते हैं। यशोधरा का गर्व या अहंभाव केवल उसके सम्मान के लिए था क्योंकि वह पुरूष को अपना निजी शत्रु नहीं मानती थी। गर्व पर क्यों? इस प्रश्न का उत्तर प्रसाद जी ने 'कामायनी' में दिया है – 'जिसके ह्रदय सब समीप है वहीं दूर जाता है और क्रोध होता है उसपर ही जिससे कुछ नाता है।' परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि यशोधरा का मान या गर्व में प्रतिशोध की भावना से प्रेरित था। चूंकि यशोधरा का ह्रदय अपने पति के प्रति पूर्णतः अर्पित था किन्तु बाहर से केवल नारीत्व के सम्मान के लिए वह गर्व का प्रदर्शन करती है, जो उचित और सही है। इसलिए यशोधरा पर दम्भ और मिथ्याचार का आरोप करना अन्याय ही होगा। कोई भी व्यक्ति जब दुनिया की नहीं, खुद की नजर से गिर जाता है तब उसके जीवन में दैन्य आता है और एकबार दैन्यभाव उसके व्यक्तित्व में बस जाता है तब वह दुःखी बन जाता है। यशोधरा दुःखी अवश्य है परन्तु फिर भी वह अपने पतिव्रता धर्म पर अटल है। अशोक वन में रहते समय सीता जी की यहीं स्थिति थी किन्तु सीता जी के पतिव्रता धर्म ने उनका रक्षण किया। यशोधरा के माध्यम से कवि युग-धर्म की बात करता है किन्तु इसके साथ वह प्राचीन पतिव्रता धर्म की भी रक्षा करता है।

इसलिए यशोधरा में नारी के प्राचीन एवं आधुनिक दोनों रूप मिलते हैं। पति के प्रति निष्ठा यशोधरा में मिलती है और आधुनिक नारी की आत्मसम्मान की भावना भी उसमें है। असन्तोष और गर्व होते हुए भी वह अपने पतिव्रता धर्म पर अडिग है।

3. **त्यागमूर्ति यशोधराः–**

यशोधरा केवल स्वाभिमान, आत्मसम्मान और गर्व की बात नहीं करती बल्कि वह अद्भुत त्याग की मूर्ति भी है। यद्यपि उसका यह त्याग उसके सिद्‌धांतों के विरूद्ध था फिर भी वह अपने पति के गौरव एवं ज्ञान के सामने अपने सिद्धान्तों का समर्पण करती है। अपने एक मात्र पुत्र राहुल को अपने पति के हाथ सौंप देती है और उसे अपनाने के लिए प्रार्थना भी करती है। पति और पुत्र दोनों के प्रति अपने स्नेह और ममता का त्याग एक अद्भुत त्याग है। पुत्र का त्याग करते समय यशोधरा का दुःख अपरिमित है। पुत्र के उज्ज्वल भविष्य के लिए माता सारे दर्द सहती है। पुत्र की बहु और पोते की प्राप्ति गृहस्थाश्रम की सर्वोच्च आकांक्षा है किन्तु इतने बडे मोह को वह आसानी से ठुकराती है और खुद के साथ अपने पुत्र को भी पति के चरणों पर समर्पित करती है। इससे बडा त्याग संसार में शायद ही मिलेगा। यशोधरा की तुलना केवल सीता जी के साथ की जा सकती है क्योंकि अन्त में सीता जी भी कुश और लव को श्रीराम के हाथ सौंपती है और संसार से चली जाती है। व्यक्ति का त्याग ही उसे महान बना देती है और यशोधरा ने पुत्र और पति का त्याग लोककल्याण एवं लोकमंगल के लिए करते हुए उस आदर्श की सुरक्षा की है।

4. **राहुल जननी यशोधरा :–**

यशोधरा का एक चित्र माता के रूप में नजर आता है। स्नेह और शिक्षा दोनों साथ चलते हैं। माता का पुत्र प्रेम प्रसिद्ध है। अपने पुत्र की रक्षा करने के लिए माता निम्न स्तरपर भी उतर जाती है, यह बात सर्वविदित भी है। किन्तु माता के अत्याधिक स्नेह के कारण भारतीय सन्तानें कई बार गुमराह भी हो जाती है इस बात को सभी जानते हैं। बच्चे को शिक्षा देते समय कठोर होने की आवश्यकता होती है किन्तु भारतीय माता ऐसा नहीं कर पाती इसलिए आगे चलकर इसकी परिणति दुखद ही होती है। क्योंकि माँ का स्नेह बच्चे को उस कगार पर ले जाता है जहाँ से लौटना असंभव हो जाता है। गांधारी इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। परन्तु यशोधरा इस संदर्भ में बहुत ही सजग है। उसका राहुल के प्रति जो स्नेह है वह मानवता के विरूद्ध नहीं जाता। यशोधरा राहुल की शिक्षा में कोई व्यवधान आने नहीं देती और राहुल का अध्ययन ठीक ढंग से हो इसका नियोजन भी करती है। बच्चे की प्रथम गुरू उसकी माता होती है जिसका यशोधरा निर्वहन करती है। वह उसकी जिज्ञासाओं का समाधान करती है और उसकी शिक्षा सुचारू ढंग से हो इसका खयाल रखती है। राहुल के मन पर कुछ बुरा प्रभाव न हो इसलिए वह अपने पति विरह का दुःख उससे छिपाती है किन्तु जब राहुल को समझता है कि उसके पिता के वियोग में उसकी माता रोती रहती है तब भी वह राहुल को सांत्वना देते हुए अपने आचरण में समझदारी से काम लेती है। राहुल के प्रति यशोधरा का जो स्नेह है वह भारतीय मातृत्व प्रेम भी एक आदर्श उदाहरण भी है जो भारतीय माताओं के प्रेम का प्रतिनिधित्व करता है। यशोधरा माँ के उत्तरदायित्व का पालन करती है।

राहुल को सुलाने के लिए यशोधरा जो लोरियाँ गाती है तो इससे यह स्पष्ट होता है कि माता पुत्र के व्यक्तित्व विकास के लिए कितनी सजग और दक्ष है। राजपुत्रों को अक्सर दासियों के हवाले किया जाता है जब कि यशोधरा एक राजकन्या और राजपत्नी होते हुए भी राहुल का पालन-पोषण खुद करती है जो यह प्रमाणित करता है कि यशोधरा को अपने पुत्र के प्रति कितनी ममता और स्नेह है।

5. **गृह स्वामिनी यशोधरा :–**

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में यशोधरा का एक और रूप कुल वधु तथा गृह स्वामिनी के रूप में चित्रित हुआ है। कुल वधु का बहुत बडा उत्तरदायित्व होता है इसे सभी जानते हैं। शील और सौजन्य दोनों गुण उसमें होने ही चाहिए यह हमारी परम्परा का आग्रह भी है। किन्तु शील का अर्थ यह नहीं है कि अपने विचारों का नम्रतापूर्वक विवेचन किया जाए। गुरूजनों की गलतियों को नम्रता से दिखा देना यह भी शील ही है। यशोधरा अपने ससुर शुद्धोदन का दो बार विरोध करती है पहली बार जब शुद्धोदन सिद्धार्थ की खोज करना चाहते हैं तब और दूसरी बार जब सिद्धार्थ बुद्ध बनकर वापस आते हैं। उसका संभाषण पिता और पुत्री के संवाद को ही प्रस्तुत करता है। यशोधरा की बात चाहे कितनी भी कठोर क्यों न हो किन्तु शुद्धोदन भी पराजित होने में आनंद अनुभव करते हैं और अन्त में स्वयं शुद्धोदन अपनी बहु से कहते हैं – 'गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।' इस बात का प्रमाण है कि एक पिता अपनी बहु के खातिर अपने पुत्र को भी छोडने के लिए तैयार हो जाता है और यहीं कारण है कि यशोधरा का आचरण कितना श्रेष्ठ था। यशोधरा अपने बडों के

लिए विनय प्रकट करती है फिर भी वह अपने सिद्धान्तों पर अटल रहती है। महल की दासियों के साथ उसका व्यवहार सखी-सहेली जैसा है। इसलिए सब का स्नेह उसे और पुत्र राहुल को मिलता है। ऐसा स्नेह दुनिया के कितनी कुल वधुओं को प्राप्त होता है?

इस तरह यशोधरा के चरित्र के अनेक पक्ष हैं जिसमें विरहिणी, गर्विणी, त्याग मूर्ति, जननी, गृहस्वामिनी और कुलवधु आदि। इन सभी रूपों में यशोधरा का चरित्र एक आदर्श के रूप में ही चित्रित हुआ है। एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में यशोधरा की पहचान है। वह वज्र से कठिन और फुल से भी कोमल है। उसके अपने सिद्धान्त हैं, समय आने पर वह उन सिद्धान्तों पर अडिग भी रहती है और नम्रतापूर्वक अपने सिद्धान्तों का महत्व स्पष्ट करती है। इसलिए राजा शुद्धोदन भी उसे अपने पुत्र से अधिक महत्व देते हैं। बुद्ध की वापसी के बाद वह अपने पति से मिलने नहीं जाती बल्कि बुद्ध को उसे मनाने के लिए उसके द्वारपर आना पडता है जहाँ बुद्ध अपनी नारी सम्बन्धी अवधारणाओं में परिवर्तन करते हुए उससे क्षमा भी माँगते हैं। अन्त में वह अपनी इकलौती सन्तान राहुल को बुद्ध के हाथ सौंपती है और खुद धन्य हो जाती है। यशोधरा आदर्श भारतीय नारी की शाश्वत जयमूर्ति है जो युगों-युगों तक भारतीयों को संस्कृति यात्रा में अपना अलग स्थान निर्धारित कर चुकी है।

1.3.4.2 सिद्धार्थ का चरित्र चित्रण

इस प्रबंध काव्य में केवल यशोधरा ही केवल मुख्य पात्र नहीं अपितु केन्द्रिय पात्र भी है। अन्य सारे पात्र जैसे बुद्ध, राजा शुद्धोदन, महाप्रजापती, पौरजन और छन्दक आदि सब गौण पात्र हैं। इनमें सिद्धार्थ का चरित्र महत्वपूर्ण है।

राजकुमार सिद्धार्थ प्रारंभ से ही चिंतनशील व्यक्ति थे। उनके पिता राजा शुद्धोदन ने एक सुन्दर और अनुपम महल में उनके लिए सुख-सुविधा के सारे साधन एकत्र किए थे। शुद्धोदन का यह प्रयास था कि सिद्धार्थ को दुनिया के दुःखों का पता न चले और कष्ट, दुःख, संत्रास आदि के बारे में सिद्धार्थ को कोई जानकारी प्राप्त न हो। यशोधरा नामक एक सुन्दर और सुशील राजकन्या से सिद्धार्थ का विवाह हुआ था और राहुल नामक पुत्र की प्राप्ति भी हो चुकी थी। एक दिन सिद्धार्थ एक रोगी, वृद्ध और मृत व्यक्तियों को जब देखते हैं, जिसके कारण उन्हें संसार से विरक्ति हो जाती है। वे संसार की स्थिति को देखकर सोचते हैं कि रोग, जरा और मृत्यु से किस तरह खुद को और संसार को भी दूर किया जा सकता है ? यह सब सोचकर सिद्धार्थ के मन में संसार के प्रति घृणा और विरक्ति में वृद्धि हो जाती है। सिद्धार्थ मुक्ति की खोज के लिए सोचते रहते हैं। अब उनके मस्तिष्क में मुक्ति के बारे में ही चिंतन शुरू हो जाता है। मुक्ति प्राप्ति हेतु वे अपना सब कुछ छोडने के लिए तैयार हो जाते हैं क्योंकि - 'मुक्ति हेतु जाता हूँ यह मैं मुक्ति-मुक्ति बस मुक्ति।'

इतना दृढ निश्चय करने के बाद सिद्धार्थ मध्य-रात्रि के समय अपनी पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल जब निद्रा मग्न थे, उनके छोडकर मुक्ति की खोज करने हेतु वनगमन करते हैं। अपने प्रिय सारथी छंन्दक को साथ

लेकर जाते हैं। इस क्षणभंगुर संसार को राम-राम करते हैं। मुक्ति की खोज में कपिलवस्तु से प्रस्थान करते हैं और अज्ञात स्थान पर जाते हैं।

सिद्धार्थ के चले जाने के बाद यशोधरा, शुद्धोदन, नन्द, महाप्रजावती, छन्दक और कपिलवस्तु के नागरिकों की जो प्रतिक्रियाएँ सामने आती हैं, उसमें सिद्धार्थ के महान व्यक्तित्व का अपने आप परिचय हो जाता है। यशोधरा के लिए सिद्धार्थ 'सदय ह्रदय' है क्योंकि जाते समय उनकी आँखों से आँसू जरूर छलक गए होंगे। यशोधरा दुःखी होकर कहती है -

'नयन उन्हें है निष्ठूर कहते, पर इनसे जो आँसू बहते
सदय ह्रदय ये कैसे सहते, गए तरस ही खाते।'

सिद्धार्थ के भाई नन्द भी दुःखी है। उन्हें सिद्धार्थ का इस तरह जाना किसी अत्याचार से कम प्रतीत नहीं होता। शुद्धोदन और महाप्रजापती को सिद्धार्थ के बिना सारा राजपाट सूना-सूना लगता है। उनके लिए सारे प्रजानन व्याकुल हैं। वे अपने भाग्य की दोष दे रहे हैं। यशोधरा सिद्धार्थ की मुक्ति खोज की साधना पर सवालिया निशान उपस्थित करती है और इस तरह दुनिया से भाग जाने को दुर्बलता कहती है।

इस प्रबंध काव्य के अन्त में सिद्धार्थ 'बुद्धदेव' बनकर लौट आते हैं और यहाँ उनका प्रत्यक्ष चरित्र रेखांकित हो जाता है। यशोधरा बुद्ध के पास नहीं जाती इसलिए बुद्ध को उनके पास आना पडता है और बुद्ध उसे कहते हैं -

'क्षमा करो सिद्धार्थ शाक्य की निर्दयता प्रिय जान
मैत्री-करूणा-पूर्ण आज वह शुद्ध बुद्ध भगवान।'

यहाँ भगवान बुद्ध यशोधरा ही नहीं अपितु सम्पूर्ण नारी जाति की महत्ता को स्वीकार करते हुए मुक्त कण्ठ से नारी महिमा की प्रशंसा करते हैं। उनके लिए नारी दीन नहीं है अपितु वह भूत-दया-मूर्ति है। मातृ जाति ने ही उनके प्राणों की रक्षा की थी। यशोधरा की साधना से ही वे मार अर्थात कामदेव पर विजय प्राप्त कर सके। वे यशोधरा के सामने यशोधरा के पतिव्रता धर्म की प्रशंसा करते हैं। बुद्ध देव को जब राहुल की प्राप्ति होती है तब वे राहुल से कहते हैं कि आज मैं कृतकृत्य हुआ, हे वत्स। तुम मेरे पास आओ और मेरे मार्ग पर चलकर खुद को भी महान बनाओ।

अन्त में यशोधरा की प्रशंसा करते हुए बुद्ध जो कहते हैं वह सबसे महत्वपूर्ण है जिससे बुद्ध की यशोधरा के प्रति जो अवधारणा का उद्घाटन हो जाता है -

'बतलाऊँ मैं क्या अधिक तुम्हें तुम्हारा कर्म
पाला है तुमने जिसे, वही वधु का धर्म।'

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राजकुमार सिद्धार्थ से बुद्धदेव बनने तक की गौतम की यात्रा इस काव्य में उभरती है। एक महान चिन्तक, दार्शनिक, सत्य की शोध करनेवाले और नारी महिमा को विनम्रता से उद्धाटित करनेवाली राजकुमार सिद्धार्थ अन्त में भगवान तथागत बन जाते हैं और यहीं उनके जीवन की विजय यात्रा है इसके प्रति कोई संदेह नहीं है।

1.3.4.3 नन्द का संक्षिप्त परिचय

नन्द सिद्धार्थ के भाई हैं। उन्हें एक आदर्श बंधु के रूप में चित्रित किया गया है। सिद्धार्थ उसके ऊपर राज्य का दायित्व छोडकर चले जाते हैं। इसे वह अपने ऊपर का अत्याचार मानते हैं। वह तो उस राज्य को सिद्धार्थ का ही समझता है। और स्वयं को तपस्या का अधिकारी मानते हुए कहता है –

'आर्य, यह मुझपर अत्याचार, राज्य तुम्हारा प्राप्य
मुझे ही था तप का अधिकार।'

नन्द को यह चिन्ता है कि नन्हा और सुकुमार राहुल किस तरह राज्य का भार उठा सकेगा? परन्तु नन्द को राज्य और राहुल दोनों सिद्धार्थ के द्वारा सौंपी हुई धरोहर है, थाती है, वह उसकी रक्षा के लिए अपना सब कुछ निछावर कर देगा। उसके इस वचन से राम के छोटे भाई भरत की स्मृतियाँ जाग जाती है–

'नन्द तुम्हारी थातीपर ही
देगा सब कुछ वार।'

परन्तु उसे यह चिन्ता है कि सिद्धार्थ कब वापस आकर उसका उद्धार करेंगे –

'किन्तु करोगे कब तक आकर
तुम उसका उद्धार'

नन्द का चरित्र श्रीराम के छोटे भाई भरत के समान आदर्श व्यक्तित्व हैं।

1.3.4.4 छन्दक का संक्षिप्त परिचय :–

छन्दक सिद्धार्थ का सारथी है। वे उसे अपने साथ ले जाकर नगर की सीमा से लौटा देते हैं। सिद्धार्थ को पहुँचाकर वह इस प्रकार दुःखी हो रहा है जिस प्रकार श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को वन में पहुँचाकर सुमन्त दुःखी हुए थे। छन्दक कहता है –

'कहूँ और क्या भाई।
आना पडा मुझे मैं आया, मुझको मृत्यु न आई।'

वे यह सूचना देते हैं कि सिद्धार्थ ने किस प्रकार राजसी वस्त्र उतार कर केश काट कर संन्यास–ग्रहण कर लिया। छन्दक अपने संदेश से कपिलवस्तु के नागरिकों को और राजा शुद्धोदन के परिवार की सिद्धार्थ के

सम्बन्धी सूचना सुनाकर उसी तरह से व्याकुल बना देता है, जिस प्रकार सुमन्त ने श्रीराम के वनगमन का वृत्तांत सुनाकर सम्राट दशरथ और अय़ोध्या वासियों को दुःखी और व्याकुल बना दिया था।

1.3.4.5 राजा शुद्धोदन का संक्षिप्त परिचय

शुद्धोदन कपिलवस्तु के राजा और सिद्धार्थ के जनक हैं। राजा दशरथ के समान वे पुत्र वियोग से व्यथित रहते हैं। किन्तु 'साकेत' के दशरथ के समान उनके प्राण नहीं निकले अपितु अपने वज्रसमान हृदय से उसे सहन किया। शुद्धोदन को बुढापे की अवस्था में क्यों न सही पुत्र मिलन का आनंद का अनुभव मिला जो राजा दशरथ की नियति में नहीं था। पर शुद्धोदन के सभी प्रयास विफल ही रहें जो सिद्धार्थ को वनगमन के लिए नहीं रोक सके। उन्होंने सिद्धार्थ के लिए वो सारे सुख के साधन उपलब्ध किए थे लेकिन उन्हें नजर अंदाज करते हुए सिद्धार्थ मुक्ति की शोध करने के लिए निकल जाते हैं। इसलिए दशरथ के समान उन्हें भी वही नजारा देखा और अपने प्रयासों पर पश्चाताप करना पडा था। इसलिए वे मन में यहीं सोचते -

'मैंने उसके अर्थ यह, रूपक रचा विशाल
किन्तु भरी खाली गई, उलट गया वह ताल
चला गया रे, चला गया।'

जिस पुत्र का उन्होंने लाड-प्यार से पालन किया था, वह अपने जाने की सूचना न देते हुए चला गया। जब उन्हें सिद्धार्थ के वन-गमन का समाचार मिलता है, पुत्र धन लूट जाने का संदेश मिला तो वे सांसारिक वैभव का धिक्कार करते हैं। शुद्धोदन जैसे राजा का धैर्य भी पुत्र वियोग में छूट जाता है। वे अन्दर से टूट जाते हैं। वे अपनी बहु यशोधरा से धैर्य धारण करने का उपाय पूछते हैं -

'वीरा है यशोधरा तू, धैर्य कैसे मैं धरूँ?
तू ही बता, उसके लिए मैं आज क्या करूँ?'
और
'तू क्या कहती है बहू पाऊँ मैं जहाँ कहीं
चतुर चरों भी भेज, खोजूं भी उसे वही।'

यशोधरा विनम्रता से उसका उत्तर देती है कि अब सिद्धार्थ को ढूँढना व्यर्थ है। उन्होंने इसलिए राज्य का त्याग नहीं किया कि कोई उन्हें ढूंढकर लाए और फिर राजसिंहासन पर लाकर बिठाए। वे असमर्थ बालक नहीं है, वे समझ बुझकर ही गये हैं। वे 'सिद्धि हेतु गये हैं इसलिए उनका ढूंढना व्यर्थ ही है।' क्योंकि -

'खोज करना उन्हीं के प्रतिकुल है
तात, सोचो, क्या गये वे इसी अर्थ
खोज हम लाने उन्हें, क्या वे असमर्थ है?'

किसी भी पिता के लिए अपनी सन्तान बालक के समान ही होती है इसलिए वृद्ध सुलभ भावना में बहकर शुद्धोदन सिद्धार्थ प्रौढ होते हुए भी कहते हैं कि अभी तो वह भोला-भाला बालक ही है। शुद्धोदन कहते हैं-

'बेटी ! वह प्रौढ है क्या, वत्स भोला-भाला है
मैं हूँ पिता, चिन्ता मुझे पुत्र की प्रगति की
भूला वह भोला, उस रक्खूं क्या उपाय मैं ?'

पुत्र वियोग से त्रस्त राजा शुद्धोदन को जब सिद्धार्थ के सिद्धि प्राप्त करने का समाचार मिलता है तब वे यशोधरा के भाग्य की प्रशंसा करते हैं और स्वयं पुत्र के स्वागत हितार्थ मगध जाना चाहते हैं। परन्तु मिलन के आनन्द में वे पुत्र-वधु को नहीं भूलते। वियोगिनी यशोधरा की दशा देखकर शुद्धोदन का ह्रदय द्रवित हो जाता है। उसके दुःख को देखने में वे खुद को असमर्थ पाते हैं और सिद्धार्थ को 'निर्मम' कह उठते हैं। गोपा के बिना गौतम को भी वे अस्वीकृत करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

वास्तव में पिता का वह ह्रदय धन्य है तो पुत्र के लिए इतना अधीर और व्यथित हो उठता है। शुद्धोदन के बहाने कवि ने राजा दशरथ का ही चित्रण किया है। श्रीराम को राजा दशरथ दोबारा प्राप्त नहीं कर सके किन्तु शुद्धोदन के रूप में सिद्धार्थ को पाकर वे धन्य हो जाते हैं। गुप्त जी ने शुद्धोदन के चरित्र का शायद दशरथ के पूरक रूप में चित्रण किया है।

1.3.4.6 महाप्रजावती का संक्षिप्त परिचय

गुप्त जी ने महाप्रजावती का चित्रण करते हुए सिद्धार्थ की विमाता का गौरव बढाने का प्रयास किया है। किन्तु इसका चित्रण करते समय गुप्त जी के सामने श्रीराम की विमाता कैकेयी रही होगी। वह एक आदर्श माता के रूप में पाठकों के सामने आती है। उसे अपना पुत्र नन्द और सौत मायादेवी का पुत्र सिद्धार्थ दोनो एक समान है। वह समदर्शिनी माता है। जिस समय सिद्धार्थ ने सांसारिक वैभव का त्याग करते हुए वनगमन किया, महाप्रजापती पागल हो उठती है। उसका पागलपन इन पंक्तियों के द्वारा अभिव्यक्त होता है -

'मैंने दूध पिलाकर पाला,
सोती छोड गया पर मुझको वह मेरा मतवाला।
कहाँ न जाने वह भटकेगा?
किस झाडी में जा अटकेगा?
हाय ! उसे काँटा खटकेगा?
वह है भोला भाला
मैंने दूध मिलाकर पाला।'

वह इसके लिए सिद्धार्थ को दोष न देते हुए अपने भाग्य को भला बुरा कहती है -

‘निकले भाग्य हमारे सूने
वत्स दे गया तू दुःख दूने
किया मुझे कैकेयी तूने
हा कलंक यह काला
मैंने दूध पिलाकर पाला।’

वह पुत्र वियोग सहन करने में अपने से असमर्थ पाती है। मृत्यु के पश्चात उसे अपनी बडी बहन शुद्धोदन की पटरानी और सिद्धार्थ की माता मायादेवी के सामने लज्जित होना पडेगा –

‘यह मैं वैसे इसे सहन करूँगी ?
मर कर भी क्या बची रहूँगी ?
जीजी से क्या हाय ! कहूँगी ?
जीते जी यह ज्वाला
मैंने दूध पिलाकर पाला।’

भारतीय वृद्ध माताओं की आशा किस प्रकार होती है –

‘जरा आ गई वह क्षणभर में,
बैठी हूँ मैं आज डगर में
लकडी तो ऐसे अवसर में
देता जा ओ लाला
मैंने दूध पिलाकर पाला।’

सिद्धार्थ के समान ही गोपा (यशोधरा) पर भी महाप्रजावती का प्यार है। वृद्ध माताओं की तरह वह अपने बहू को समझाते है, कहती है –

‘गोपे हम अबला जनों के लिए इतना
तेज नहीं, दर्प नहीं, साहस क्या ठीक है
स्वामी से समीप हमें जाने से स्वंय वही
रोक नहीं सकते है, स्वत्व अपना
त्याग कर बोल, भला तू क्या पावेगी बहू’

किस सहेली की तरह यशोधरा के पास जाकर गौतम से मिलने के लिए समझाती है –

‘बाधा कौनसी है तुझे आज वहाँ जाने में?’

पति के आने का समाचार सुनकर यशोधरा मुर्च्छित हो जाती है और महाप्रजावती उसके दुःख में दुखी होते हुए कहती है –

'मुर्छित है हाय ! मेरी मानिनी यशोधरा।'

इस प्रकार महाप्रजावती का चरित्र चित्रण करते हुए गुप्त जी ने विमाता महाप्रजापती के चरित्र को आदर्श रूप में रेखांकित और रूपायित किया है।

1.3.5 'यशोधरा' प्रबंध काव्य की विशेषताएँ

द्विवेदी युगीन रचनाकारों में मैथिलीशरण गुप्त जी का एक विशेष और उल्लेखनीय स्थान है। उन्होंने ७८ वर्ष की लम्बी आयु में हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। महाकाव्य, प्रबंधकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य और नाटक लिखे हैं और कई नाटकों का बांग्ला और संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद किया है। 'यशोधरा' गुप्त जी की एक उल्लेखनीय काव्यकृति है जिसे सम्मानित किया जा चुका है। द्विवेदी युगीन काव्यधारा के लगभग सारी विशेषताएँ इनकी रचना 'यशोधरा' में दृष्टिगोचर होती है।

'यशोधरा' एक सफल काव्य कृति है और इस कृति को साहित्य के मंच पर और लोगों में भी काफी लोकप्रियता मिली। महात्मा बुद्ध और उनकी पत्नी यशोधरा के सम्बन्धों पर आधारित इस काव्य कृति को हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार और मंगलाप्रसाद पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

1. गौरवमयी अतीत का इतिहास और भारतीय संस्कृति की महत्ता :–

जब इस काव्यकृति का लेखन चल रहा था, उस समय भारत अंग्रेजों की गुलामी में था और ऐसे समय भारतीयों को जगाने की आवश्यकता थी। इसके लिए प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त इस दिशा में प्रयासरत थे। गुलाम भारतीयों को अपने गौरवमयी अतीत एवं इतिहास का स्मरण देकर उन्हें जागृत करना या जागरण का संदेश देना तत्कालीन रचनाकारों का प्रमुख उद्देश्य था जिसे गुप्त जी भी अपवाद नहीं थे। भारत का इतिहास एवं अतीत से भारतीयों को प्रेरणा मिले और उनका आजादी के आन्दोलन में योगदान हो इसके लिए लगभग सभी रचनाकार प्रयत्न करते थे। ऐसे दुर्दन्त समय में भारतीयों को अपने अतीत एवं इतिहास के सुनहरे पृष्ठ खोलकर, भारतीयों को स्मरण कराने के लिए प्रसाद और निराला के साथ गुप्त जी ने भी इतिहास का आधार लिया। हम सब भारतीय हैं और हमारा इतिहास गौरवमयी है इसका लोगों को स्मरण देकर जागरण का कार्य इस देश में हो रहा था जिसमें इन रचनाकारों का भी सहभाग था।

जो बात अतीत एवं इतिहास की है, वही बात संस्कृति के संदर्भ में सार्थक प्रतीत होती है। भले आज हम अंग्रेजों के दास हैं किन्तु हमारी संस्कृति कितनी महान है और इस महान संस्कृति ने अनेक महापुरूषों को जन्म दिया है जिसमें एक नाम महात्मा बुद्ध का भी है यह गुप्त जी की अवधारणा थी। भारतीय संस्कृति 'वसुधैवकुटुंबकम' का प्राचीन काल से उद्घोष करती है यह बात भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इतना ही नहीं मानवतावाद भारतीय संस्कृति की आत्मा है इसका भी चित्रण साहित्य के माध्यम से बार–बार किया जाता

था इस पर भी तत्कालीन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की नींव थी। इन सभी बातों को मद्देनजर रखकर रचनाकार अपना साहित्य सृजन कर रहे थे। 'यशोधरा' के द्वारा रचनाकार गुप्त जी ने विस्मृत इतिहास और अतीत के साथ भारतीय संस्कृति की महिमा लोगों के सामने उजागर करने का प्रयास किया है। बुद्धदेव और उनकी जीवन कथा के द्वारा करोडों भारतीयों को गुप्त जी ने जगाने का सफल प्रयास किया था।

2. पारिवारिक जीवन को यथोचित महत्त्व :-

भारतीयों की अवधारणा में व्यष्टि और समष्टि दोनों का अपना अलग महत्व है किन्तु भारतीय संस्कृति समष्टि को अधिक महत्व देती है। मूलतः मोक्ष को चौथा और परम पुरूषार्थ मानने के कारण भारत में व्यष्टि वाद का महत्व अधिक बढ गया। कितु व्यष्टि में एक व्यक्ति का विकास निहित होता है और इसलिए परम्परा से भारतीय अवधारणा मोक्ष का उद्धोष करती यही इसीकारण व्यष्टि को अधिक महत्व दिया जाने लगा यह भारतीय समाज की सबसे बडी त्रासदी रही है। सही अर्थ में समाष्टि के बारे पहले सोच विचार होता था किन्तु कालान्तर में व्यष्टिवाद को प्रधानता मिली और परिवार तथा समुह के महत्व को भारतीय भूलते जा रहे थे।

'यशोधरा' की प्रमुख विशेषता सुन्दर और सफल पारिवारिक वातावरण उपस्थित करता है। गुप्त जी पारिवारिक वातावरण के कुशल चितेरे थे। यशोधरा में पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पति-पत्नी तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण गुप्त जी ने बडी कुशलता के साथ किया है। नन्द, शुद्धोदन, यशोधरा, राहुल, महाप्रजापती (गौतमी)और दास-दासियाँ सभी मिलकर अपने व्यवहार से वातावरण में स्नेह और स्निग्धता की वर्षा करते हैं। उनके सम्भाषण में जो स्नेह, ममता, प्रेम और अनुराग है वह जीवन की कटूता को भूला देता है। 'यशोधरा' का पारिवारिक वातावरण इतना अधिक स्निग्ध और कवित्वमय हो गया है कि वह पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर ही लेता है।

3. **नारी मात्र को विशेष महत्व :-**

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यहीं कहानी
अंचल में है दूध और आँखों मे पानी।**'**

यह उक्ति एक ओर जहाँ यशोधरा के व्यक्तिगत जीवनपर घटित होती है, वही दूसरी ओर नारी की दासता की स्थिति को प्रकट करती है। यशोधरा पर दोहरा भार है। एक ओर वह अपने पति सिद्धार्थ की प्रतीक्षा में आँसू बहाती है तो दूसरी ओर अपने पति की एक मात्र धरोहर-राहुल अपने पुत्र का पालन पोषण करती हुई उत्तरदायित्व का निर्वहन करती है। प्रस्तुत पंक्तियों के द्वारा यशोधरा के बहाने युग-युग की नारी का दोहरा व्यक्तित्व सहज ही व्यंजित होता है। भारतीय संस्कृति नारी के साथ उचित न्याय नहीं कर सकी है।

'यशोधरा'की उक्त पंक्तियों में इतिहास की करूण कहानी छिपी है। इतिहास का यह महान सत्य गुप्त जी जैसे श्रेष्ठ रचनाकार के मुख से ही प्रकट होता है। कवि की वाणी से ऐसे ही इतिहास की सच्चाई अनायास ही

प्रकट हो जाती है। 'यशोधरा' की यह पंक्तियाँ अपने बन्धनों के विरूद्ध करूण हाहाकार को प्रकट करती है। यशोधरा के युग में नारी अबला थी और आज के युग में भी नारी अबला ही है। भले ही आज नारी को सबला घोषित किया जाता है किन्तु नारी की हकीकत क्या है इसे हम सभी जानते हैं और पहचानते भी हैं।

नारी की दूरावस्था ने तथा दुःखी, दीन, असहायों की पीडा ने गुप्त जी के हृदय में करूणा के भाव भर दिए थे। यहीं कारण है कि गुप्त जी ने अनेक काव्यग्रंथो में नारी की पुनर्प्रतिष्ठा और पीडित के प्रति सहानुभूति झलकती है और नारी की करूण दशा को व्यक्त करनेवाली यशोधरा आज भी चिरंजीव है।

4. **दार्शनिकता :–**

दर्शन की जिज्ञासा आध्यात्मिक चिंतन से अभिन्न होकर भी भिन्न है। आर्य विचारकों की यह एक विशिष्ट चिंतन प्रक्रिया है और उनके तर्कपूर्ण सिद्धान्त ही दर्शन है। दार्शनिक चिंतन की तीन मुख्य दिशाएँ हैं ब्रहम–जीव–जगत। गुप्त जी का दर्शन उनके कलाकार के व्यक्तित्व पक्ष का परिणाम न होकर सामाजिक पक्ष का अभिव्यक्तिकरण है। वे बहिर्जीवन के द्रष्टा और व्याख्याता कलाकार है, अन्तर्मुखी कलाकार नहीं है। कर्मशीलता उनके दर्शन के केन्द्रस्थ भावना है। मुक्तिपथ की खोज के लिए व्याकुल सिद्धार्थ अंधेरे में सबसे विदा लेते हए कहते हैं

"पड रह तू मेरी भव भुक्ति
मुक्ति हेतु जाता हूँ यह मैं मुक्ति–मुक्ति बस मुक्ति।
मेरा मानस हंस सुनेगा और कौनसी युक्ति
मुक्ताफल निद्वन्द चुनेगा, चुन ले कोई शुक्ति।"

वैसे भी देखा जाए तो इस कृति के कई पृष्ठ दार्शनिक सिद्धान्तों से भर पडे हैं और 'यशोधरा' की यह और एक विशेषता है जो मानव को सोचने के लिए विवश करती है।

5. **पतिवियुक्ता नारी का वर्णन :–**

परिवार के साथ रहनेवाली पतिवियुक्ता नारी की पीडा को जिस शिद्दत के साथ गुप्त जी अनुभव करते हैं और उसे जो बानगी देते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। उनकी पतिवियुक्ता नारी पात्रों में यशोधरा एक पात्र है। उनका करूण विप्रलम्भ यशोधरा में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी बन पडा है। यशोधरा के जीवन का संघर्ष, उदात्त विचार और आचरण की पवित्रता आदि मानवीय जिजीविषा और सोद्देश्यता को प्रभावित करते हैं। गुप्त जी की यशोधरा विरह ताप में तपती हुई भी अपने तन–मन को भस्म नहीं होने देती वरण सुवर्ण की तरह उज्ज्वल वर्णी बन पाती है और यशोधरा के व्यक्तित्व में एक अलग निखार आ जाता है।

'सखि, वे मुझसे कहकर जाते' इस गीत में पति की उपेक्षा से उत्पन्न पश्चाताप, दीनता, शोक, आशंका, ग्लानि, गर्व, आवेग, वितर्क और स्मृति जैसी अनेक चित्रवृत्तियों पति विषयक रति को पुष्ट करती है। यशोधरा तो अपने पति का अनुगामिनी थी। पति के मन में जो विचार आता था, उसका निर्वहन करती

थी। फिर वह चोरी-चोरी क्यों चले गए ? पति ने मुझपर विश्वास क्यों नहीं किया ? मानो सारी नारी जाति के प्रति अविश्वास किया। यह पछतावा एक ओर गोपा के मन में आत्मग्लानि निर्माण करते है तो दूसरी ओर कवि पुनः इसी आत्मग्लानि को प्रेम का सहायक भी बनाता है। पति के चुपचाप चले जाने के बाद यशोधरा आत्मसाधना करती है जिससे सिद्धार्थ के संकटों का निवारण हो जाता है जिसे खुद सिद्धार्थ भी मानते हैं। और उसका स्वाभिमान उसमें आत्मसम्मान भी जगाता है। किन्तु उसने उम्मीद को नहीं छोडा इसलिए वह कहती भी है

'गए, लौट भी वे आवेंगे, कुछ अपूर्व, अनुपम लावेंगे।

रोते प्राण उन्हें पावेंगे पर क्या गाते-गाते?'

6. प्रकृति वर्णन :-

गुप्त जी ने प्राचीन परम्परा के अनुसार षड्ऋतुओं का वर्णन किया है। 'मैंने ही क्या सहा, सभी ने मेरी बाधा व्यथा सही' इस गीत में कवि ने कल्पना शक्ति के द्वारा सारी ऋतुओं का यशोधरा के साथ तादात्म्य दिखाया है। सृष्टि के सारे व्यापार एवं परिवर्तन यशोधरा के साथ सहानुभूति के कारण हो रहे हैं। यशोधरा की कथा से सारी प्रकृति दुःखी होकर नाना रूप बदलने के विवश हो जाती है। मानव हृदय से प्रकृति अपनी संवेदना को प्रकट करती है।

दाडिम अथवा अनार इसलिए फट गया है कि उसमें सहनशक्ति नहीं थी इसलिए वह दुःख सहन न कर सका। इसलिए अब अनार हंस रहा है क्योंकि उसके दुःख का भार अब हलका हो गया है। अनार का यह वर्णन बहुत ही आकर्षक है। उत्प्रेक्षा के रूप में वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए गुप्त जी ने लिखा है जैसे आकाश ने भंग पी ली है और इसी उन्माद के कुछ भंग धरती पर डाल दी है। चारो ओर लोग जिसे पीकर मस्त हो गए हैं। लता कामिनी के समान प्रिय का ध्यान कर रोमांचित हो गई है और डालियाँ लहरा उठी है। कल्पना से ही प्रकृति का यह रूप प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रकृति यहाँ भी यशोधरा की मानसिक स्थिति के अनुकुल ही देखी दई है। 'यशोधरा' में प्रकृति वर्णन प्रायः उद्दीपन के रूप में है। प्रकृति का मानवीकरण भी यशोधरा में मिलता है।

संसार के अनेक कवियों ने सृष्टि चक्र के चालक के प्रति अपनी जिज्ञासा को प्रकट किया है। ऋग्वेद का दशम मंडल का नासदीय सूक्त सर्व प्रथम अपनी जिज्ञासा को उजागर करता है। यशोधरा में गुप्त जी ने मंगलचरण के पश्चात सृष्टि चक्र से मुक्ति पाने के लिए, सिद्धार्थ की कभी में स्त्रष्टा के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा है कि आत्मा का स्त्रोत क्या है? मृत्यु के पश्चात आत्मा कहा जाती है? इन प्रश्नों की निम्न पद में व्यक्त किया है-

'घुम रहा है कैसा चक्र?

यह नवनीत कहाँ जाता है? रह जाता है तक्र।'

जीवन की क्षणिकता पर भी गुप्त जी ने अपनी कलम सफलता से चलाकर अपनी दार्शनिक एवं रहस्यात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

7. **वैष्णव भक्ति धारा का प्रभाव :-**

वैष्णव भक्ति धारा के प्रभाव के ही गुप्त जी को उपेक्षित पात्रों के उद्धार की प्रेरणा दी है। दुःख में सहानुभूति, पराई पीडा को समझने की शक्ति वैष्णवों में सर्वाधिक होती है। इसलिए वैष्णवधर्म यह मानवीय धर्म है। सारे भेदभाव रहे या नष्ट हो जाए पर वैष्णव सब पर प्रेम की वर्षा करता है। वह वाणी, मन और कर्म से अहिंसक होता है। भावूकता उसके स्वभाव की मुख्य विशेषता होती है इसलिए वह सदा चिंतनशील रहता है। परोपकार के लिए जीवन है और पर दुःखकातरता वैष्णवों का मुख्य भाव है।

यशोधरा को दुःख में इसकी सहानुभूति, बुद्ध के प्रति यशोधरा की इतनी भक्ति, विश्वमात्र के लिए अखिल करूणा व उदारता के भाव तथा भेदभाव, जाति-पाँति आदि सबसे उपर उठकर प्राणी-मात्र के लिए समता और ममता का उपदेश यह सब वैष्णवीय भावना के अनुकूल है। गुप्त जी के यशोधरा, गौतम, शुद्धोदन आदि को इतना भावुक इसलिए बना सके हैं क्योंकि गुप्त जी खुद एक भावुक भक्त है। वैष्णव कवि जीवन के कुरूप और कुत्सित पक्ष पर कभी नजर नहीं डालता। वह कटू आलोचक कभी नहीं बन सकता। वह तो प्रेम के द्वार ही परिवर्तन में विश्वास करता है, भावना के क्षेत्र में दिनरात विचरण करता है। गुप्त जी के पात्र ऐसे ही हैं, इसलिए यशोधरा की आलोचना और असन्तोष वैष्णवीय होने के कारण कटु नहीं हुए, उनसे यशोधरा के समर्पण में बाधा नहीं पडी। सोने जैसा संसार मिट्‌टी में मिल जाने पर भी **'**सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकंशरण**'** का स्मरण करते हुए यशोधरा अन्त में भगवान बुद्ध के सम्मुख पुत्र सहित निछावर हो जाती है। भक्त को इससे अधिक सुख और सन्तोष कहाँ प्राप्त होगा?

'यशोधरा' प्रबंध काव्य की उपर्युक्त विशेषताएँ हैं जिसके कारण करीब नौ दशक पूर्व लिखी हुई यह रचना आज भी उतनी ही प्रासंगिक एवं सार्थक है इसके प्रति अलग राय नहीं हो सकती।

1.3.6 'यशोधरा' का कला एवं भाव पक्ष :-

हिन्दी की मध्यकालीन काव्यधारा प्रायः भावमय काव्यधारा है। गुप्त जी भाग्यवादी कवि हैं अतः भाववर्णन में उन्हें सर्वत्र सफलता मिली है। यशोधरा में भाव का केवल तन्मयता के साथ वर्णन ही नहीं हुआ बल्कि उसका क्रमशः विकास भी हुआ है। धीरे-धीरे बदलती हुई चित्तवृत्ति पहले पश्चाताप, शोक, आत्मग्लानि, दीनता, अपमान जन्य क्षोभ को भूलकर मातृत्व में परिणत होकर शान्त हो जाती है, ह्रदय की भावनाओं को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

1.3.6.1 'यशोधरा' प्रबंध काव्य का भावपक्ष :-

गुप्त जी की 'यशोधरा', 'साकेत' के बाद की दूसरी कृति है। 'साकेत' से पूर्व गुप्त जी की अनेक कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं और वे अनेक प्रयोग कर चुके थे। अतः यशोधरा उनकी अन्य कृतियों से अधिक सफल बन पडी है इसमें कोई आशंका नहीं है।

'यशोधरा' का चरित्र उदघाटन :–

यशोधरा का विषय गंभीर और प्रभावशाली है। अश्वघोष ने बुद्धचरित लिखकर उन्हें अपनी वाणी का विषय बनाया है किन्तु अश्वघोष यशोधरा के सौन्दर्य वर्णन में ही उलझे रहे और यशोधरा की गरिमा को वे अधिक स्पष्ट नहीं कर सके। इस संदर्भ में गुप्त जी ने अधिक सफलता प्राप्त की है। इसलिए यशोधरा काव्य की सबसे प्रथम विशेष बात यह है कि गुप्त जी ने यशोधरा के चरित्र का उदघाटन कला और भाव दोनों पक्षों का आधार लेकर की है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। मैथ्यु आर्नल्ड के अनुसार कवि की प्रतिभा की प्रथम कसौटी यह है कि वह महान काव्य के लिए महान विषय ही चुने। जब कवि किसी विषय को कविता का विषय बनाता है तो उसका विशिष्ट उद्देश्य होता है जो इस प्रबंध काव्य में स्पष्ट है।

यशोधरा के विरह और पुत्र–वत्सलता का वर्णन :–

यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि यशोधरा के विरह और पुत्र वत्सलता के वर्णन में कवि ने बडी ही सहानुभूति से कार्य लिया है और यशोधरा के यह दोनों रूप बडे ही सजगता के साथ चित्रित किए हैं। एक बात सही है कि कवि ने आधुनिक नारी विमर्श के कुछ बिन्दूओं को यशोधरा के चरित्र चित्रण करते समय जरूर आधार लिया है किन्तु आधुनिक नारी के सभी रूपों को दिखाने में कवि को उतनी सफलता नहीं मिली। परन्तु विरहिणी यशोधरा और राहुल जननी यशोधरा की भावनाओं का वर्णन यशोधरा काव्य को मार्मिक बनाता है। किसी भी भाव के वर्णन से हमें यह देखना चाहिए कि उसे कवि आत्म–भावनाओं के साथ संयुक्त करके वर्णित कर पाया है या नहीं।

पति–पुत्र विषयक रति वर्णन में सफलता :–

क्या कवि पति–पुत्र विषयक रति के वर्णन में अन्य भावनाओं स्मरण, पश्चाताप, अमर्ष, भय आदि वृत्तियों को 'रति' के साथ जगा पाता है या नहीं? कवि का स्थायी भाव के साथ अधिक से अधिक संचारियों को जागृत कर देता है या नहीं या केवल वर्ण्य विषयक चलता हुआ वर्णन करता है। कवि ने विशिष्ट भाव का गहराई के साथ वर्णन किया है तब इसका अर्थ यह होता है कि उसके वर्णन में अनेक भाव–लहरियाँ उठती हैं। भाव–दरिद्र–कवि भाव विशेष की चर्चा करके आगे चला जाता है कितु रसासिद्ध कवि मन की नाना वृत्तियों को झकझोरता है। बस किसी स्थायी भाव के वर्णन में हृदय की दशा कैसी ही होनी चाहिए अन्यथा कवि सफल नहीं हो सकता। कवि को 'यशोधरा' में इस दृष्टि से कहाँ तक सफलता मिली है

'सखि वे मुझसे कहकर जाते
कह, तो क्या मुझको वे अपने पथ की बाधा पाते।'

इस प्रसिद्ध गीत में पति के प्रति आसक्त कवि का विषय है किन्तु प्रत्येक पंक्ति में पति की उपेक्षा से उत्पन्न पश्चाताप, दीनता, शोक, आशंका, ग्लानि, गर्व, आवेग, वितर्क और स्मृति जैसी अनेक चित्तवृत्तियाँ भी पति विषयक रति को पुष्ट करती है। यशोधरा का पति उसे बिना कुछ बताए चुपचाप चोरी–चोरी चला

जाता है। पति का उसपर विश्वास और भरोसा नहीं है यही दुख यशोधरा को सालता रहता है। यह पश्चाताप एक ओर तो गोपा में आत्म-ग्लानि निर्माण करता है और दूसरी ओर कवि पुनः इसी आत्म-ग्लानि को पति-प्रेम का सहायक भी बनाता है। लेकिन अगर यह आत्म-ग्लानि अधिक बढती तो यशोधरा के मन में पति के प्रति घृणा उत्पन्न हो सकती थी किन्तु कवि फिर कहता है

'सदय हृदय वे कैसे सहते, गए तरस ही खाते।'

सिद्धार्थ तो सहृदय है, इसलिए शायद चुपचाप चले गए क्योंकि उन्हें जाते हुए देखकर गोपा जरूर रोती और उसकी आँखों से बहते हुए आँसू वे भला कैसे देख पाते। यही 'आत्म-साधना' पति के प्रति आसक्ति को और दृढ बनाती है। यह आत्मसमाधान काव्य में मंगलमय हो जाता है क्योंकि कवि यशोधरा मन में आशंका उत्पन्न कर देता है, उसका समाधान करता चलता है अतः यह वितर्क स्नेह की डोर के पुष्ट ही करता है, उसे तोडता नहीं है। यशोधरा के चित्त में स्वाभिमान उत्पन्न होता है, चित्त की यह दीप्ति भी देखने योग्य परन्तु साथ में दैन्य भी है

'हुआ न यह भाग्य अभागा
किस पर विफल गर्व अब जागा
जिसने अपनाया या त्यागा
रहें स्मरण ही आते।'

भावों की परस्पर टकराहट देखते ही बनती है। चित्त में प्रथम पश्चाताप, फिर आत्मग्लानि शोक, फिर गर्व उत्पन्न होता है और अन्त में दीनता प्रश्न उपस्थित करती है - 'किस पर विफल गर्व अब जागा?'

यह सत्य है कि भारतीय नारी को अपने पति पर विशेष गर्व होता है लेकिन यशोधरा का गर्व उसके पति ने ही नष्ट किया है। क्योंकि उसके पति के मन में उसके प्रति विश्वास नहीं था और वह त्याग कर के चुपचाप चला गया। अब तो चित्त दीन हो रहा है, यह आत्मग्लानि एवं आत्महीनता का समय है, फिर गर्व क्यों और किस नाम का? परन्तु यह मानसिक दशा भी स्थिर नहीं रहती। जो अपना घर छोडकर जाता है उसके प्रति शिकायत भी होती है और समर्पण भी होता है। प्रेम की यह दशा कितनी विचित्र है क्योंकि शिकायत के साथ-साथ स्मरण करने की इच्छा अब भी है। फिर कुछ क्षणों के बाद आशा का नया अंकुर निर्माण होता है 'गए, लौट भी आवेंगे, कुछ अपूर्व, अनुपम लावेंगे।'

फिर जीवन में फिर सिद्धार्थ से भेंट होगी किन्तु बीच में समय का अन्तराल काफी बडा होगा इसलिए

'रोते प्राण उन्हें पावेंगे, पर क्या गीत गाते-गाते?'

भाव की विस्तार देने में व व्यापक बनाने यह कला 'मैंने ही क्या सब, सभी ने मेरी बाधा-व्यथा सही'इस गीत में और विस्तार से प्रकट हुई है। प्रकृति के समस्त व्यापार, ऋतुएँ, आकाश, पाताल धरती

सभी तो मेरी व्यथा से पीडित है। मेरे ही ताप से ग्रीष्म बनता है, मेरी ही आँसूओं से वर्षा आती है, पति की शान्ति और कान्ति से शरद को प्रकाश मिलता है, मेरी ही आशा से आकाश थमा हुआ है। समुची सृष्टि भावनामय हो रही है, यह वह अवस्था है जहाँ मानव ह्रदय, जगत तथा ह्रदय का लक्ष्य तीनों एक हो जाते हैं। भाव-वर्णन में तीव्रता लाने के लिए कवि ने तुलनात्मक पद्धति का उपयोग किया है। जब पात्र अपनी मनोदशा की तुलना प्रकृति की अन्य वस्तुओं से करता है तो पात्र की अपनी मानसिक दशा और तीव्र हो जाती है। ह्रदय के चीत्कार को भीषण की आशंका के साथ चुपचाप दबाकर अन्धकार को देखती ही रह जाती है। इसप्रकार कवि ने विविध पद्धातियों से यशोधरा के भावचित्रण में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

विरहिणी यशोधरा के साथ राहुल के प्रति यशोधरा का जो स्नेह है उस वर्णन में भी कवि को सफलता मिली है। रीतिकालीन कवियों के सामने उद्दीपन की वस्तुएँ बहुत कम थी परन्तु यहाँ वात्सल्य को विरह का उद्दीपक बनाया गया है जो एक नवीन कला है। पुत्र को देखकर पति का स्मरण और पति के विरह में पुत्र को देखकर सब कुछ सहने का अन्तर में रखकर ही चुपचाप जलते रहने का प्रयत्न अवश्य ही प्रशंसनीय है।

कवि की कला की सफलता का यहीं सबसे बडा प्रमाण है कि उसने भावनाओं का क्रमशः विकास किया है। यशोधरा विगत यौवन पर पश्चाताप नहीं करती, बल्कि अपने मातृत्व के स्वाभिमान की रक्षा करती है। अपने पति से मिलने नहीं जाती, पति को मिलने आता पडता है। पति के दर्शन के बाद उपालम्भ नहीं देती बल्कि पुत्र का अधिकार माँगती है। पुत्र को अधिकार दिलकर जैसे वह शान्त हो जाती है, वहा माता का कार्य पूर्ण हो जाता है।

'कृतकृत्य हुई गोपा, पाया यह योग, भोग जा तू।'

राहुल जननी का रूप भी भावपक्ष की अनुपम दृष्टि ही है इसलिए विरह विकास की दशा में वात्सल्य वर्णन भी दिखायी पडता है। राहुल जैसे बडा हो जाता है तो वह अपनी आयु से अधिक बुद्धिमान प्रतीत होता है। उसके संभाषण के अंश किसी दार्शनिक से कम नहीं है। यदि ध्यान से देखा जाए तो वात्सल्य का प्रयोग विरह वर्णन के लिए ही किया गया है क्योंकि कवि का ध्यान यशोधरा पर ही केन्द्रित रहता है, वह सारे वार्तालाप का विषय यशोधरा की अनुभूतियों को ही बनाता है। नन्द, प्रजावती, शुद्धोदन और स्वयं यशोधरा का शोक वर्णन बेजोड है।

यशोधरा के भावपक्ष में विशेष उल्लेखनीय पारिवारिक वातावरण है। गुप्त जी पारिवारिक वातावरण के कुशल चित्रकार हैं। यशोधरा में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, मातात्र और अन्य पारिवारिक सम्बन्ध निश्चित ही महत्वपूर्ण है। यह सारे पात्र एक दूसरे पर स्नेह और प्रेम की वर्षा करते हैं। जिससे जीवन की कटूता को भूलाया जाता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि विवेच्य कृति यशोधरा का भाव पक्ष निश्चित ही बलवान है।

'यशोधरा' का कला पक्ष :-

कला पक्ष में कल्पना शक्ति, अलंकार योजना, शैली और भाषा आदि महत्वपूर्ण अंग होते है। प्रकृतिवर्णन करते समय कवि ने कल्पना शक्ति का आधार लेकर अपनी बात को यहाँ स्पष्ट किया है।

'सती शिवा सी तपस्विनी माँ, देख दिवा यह आ रही।
भर गम्भीर निज शून्य स्वयं ही उसको तुझसी था रही
सौंध शिखर पर स्वर्ण वर्ण की आतप आभा भा रही
ज्यो तेरे आँचल की छाया, तेरे सिर पर ला रही
शीतल मन्द पवन वन-वन से सुरभी निरंतर ला रहीं
ज्यो अनुभूति अदृश्य तात की, मुझमें तुझ में धा रही।'

यहाँ प्रकृति वर्णन मुख्य है, परन्तु इसकी विशेषता यह है कि कवि ने यशोधरा को उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है और प्रकृति को उपमेय के रूप मे। अतः सामान्य का वर्णन न होकर यशोधरा की संवेदना से प्रकृति चित्र और भी अधिक सुन्दर हो गया है। आकाश समुद्र है और समुद्र में अनेक रत्न होते हैं, आकाश रूपी समुद्र उलट जाने से पानी तो ओंस के रूप में नीचे गिर गया है परन्तु रत्न आकाश के हृदय पर ही पडे रह गए है। यह कल्पना सुन्दर है।

कल्पना का प्रयोग अलंकार, विधान में भी प्रकट होत है। कवि ने किन-किन अलंकारों का प्रयोग किया है और उसे कहाँ तक सफलता मिली है ? कवि ने सादृश्यमूलक अलंकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और मानवीकरण का सर्वाधिक प्रयोग किया है। विरोधाभास का प्रयोग विरोध मूलक अलंकारों में और शब्दालंकारों में श्लेष और वक्रोक्ति का प्रयोग अधिक मिलता है। कुछ उदाहरण

श्लेष	- मुक्ताफल निर्द्वन्द चुनेगा (मुक्ति और मोती)
उत्प्रेक्षा और रूपक	- उलट पडा यह दिव रत्नाकर, पानी नीचे ढलक बढा तारक रत्नहार सखि उसके, खुले हृदय पर झलक रहा।
विरोधा भास व मानवीकरण	- रूदन का हँसना ही तो गान गा-गाकर रोती है मेरी हतंत्री की तान।
उपमा	- 'नयन तेरे मीन से हैं, सजल भी क्यों दीन ? पद्मिनी सी मधुर मृदु तू किन्तु है क्यों छीन ?' 'सती शिवा-सी तपस्विनी माँ, देख दिया आ रही है।'
रूपकातिशयोक्ति	- 'वह नवनीत कहा जाता है, रह जाता है तक्र।'

शैली :–

कथन पद्धति की दृष्टि से 'यशोधरा' की शैली में प्राचीन तत्त्व अधिक है किन्तु अन्य कृतियों से कहीं अधिक तत्व मिलते हैं। प्रस्तुत कृति में ऐसे कई गीत हैं जिन्हें छायावादी कवियों के गीतों में मिला दिया जाये तो उन्हें पहचानना कठिन होगा। जैसे –

1. 'मरण सुन्दर बन आया री'
2. 'सखि वसन्त से वे कहाँ गए वे, मैं उष्मासी यहाँ रही'
3. 'कूक उठी कोयल काली'
4. 'रूदन का हँसना ही तो गान'
5. 'सती शिवा सी तपस्विनी माँ, देख दिवा यह आ रही।'

गुप्त जी मूलतः द्विवेदी युगीन कवि हैं। वर्णन करने में उनकी शैली जितनी अधिक सफल होती है व्यंजित करने में उतनी नहीं। महाभिनिष्क्रमषण में जो प्रवाह और वेगमय शैली दिखायी पडती है वहाँ कवि की शैली में प्रखर वेग उत्पन्न हो जाता है। यह शैली गुप्त जी की अपनी शैली है और उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिलती है।

कहीं कही कवि ने कवित्व शैली का भी प्रयोग किया है। कवि का यह प्रयास सफल नहीं हुआ क्योंकि कवित्व की कम से कम अन्तिम पंक्ति जोरदार होनी चाहिये और गुप्त जी ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया।

गुप्त जी की शैली की और एक विशेषता है 'उक्ति वैचित्र्य', कहीं विरोधाभास के द्वारा और कही लक्षणा शक्ति के द्वारा कथन में चमत्कार उत्पन्न करने में कवि अधिक आनन्द लेता है।

विरोधाभास – मरने को जग जीता है।

श्लेष मूलक वक्रोक्ति – 'मैं भी सीख, अपने मानस की राजहंसिनी रानी
सपने की सी बाते प्रिय के तप ने सूखा दिया पानी।'

कवि मूलतः द्विवेदी युगीन कवि हैं अतः उसकी भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त है परन्तु फिर भी व्यावहारिक अधिक है, कवित्व पूर्ण कम है। कवि ने शब्दों के लालित्य एवं लचक का अधिक ध्यान नहीं रखाऔर न उसकी संगीतात्मकता पर अधिक ध्यान दिया है। कवि ने व्यंजना से अधिक काम लिया है वहाँ पुराने ढंग की व्यंजना अधिक है और चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कवि ने श्लेष मूलक शैली का अधिक प्रयोग किया है। शायद इसलिए यशोधरा में पुरानापन अधिक मिलता है। उसकी शब्दावली अनगढ अधिक

है। इसलिए वर्णणात्मक काव्य में बेजोड है। कई स्थानों पर कवि ने अपरिष्कृत शब्दों का प्रयोग किया है जिससे काव्य गरिमा को क्षति पहुँचती है जैसे -

'सौ-सौ रोग खडे हो पशु ज्यों बाँध परा
धिक् जो मरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा।'

संस्कृत के घोर तत्सम शब्द गेयता में बाधा निर्माण करते हैं और गुप्त जी ने ऐसे शब्दों का बराबर प्रयोग किया है। संस्कृत का पद-विधान जकडा हुआ चलता है। गीतों में बहुप्रचलित संस्कृत शब्दों को ही लिया जा सकताहै, साथ ही मीठे और तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक होना चाहिए किन्तु गुप्त जी ने इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया इसलिए उनके काव्य के कला पक्ष में भाषा दुर्बल है ऐसा प्रतीत होता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने 'यशोधरा' में कला पक्ष और भाव पक्ष का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है और बहुत सशक्तता के साथ प्रस्तुत कृति में कला एवं भाव पक्ष उद्घाटित हुए हैं।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1. यशोधरा के पति का नाम .... है।

   अ) सिद्धार्थ ब) छन्दक क) मेहुल ड) मार

2. कपिल वस्तु के महाराज का नाम .... था।

   अ) विरोचन ब) शांतिदेव क) शुद्धोदन ड) गोप

3. यशोधरा को .... इस नाम से जाना जाता था।

   अ) गोपा ब) मैत्रेयी क) गार्गी ड) हिमांगिनी

4. यशोधरा के पिता का नाम .... था।

   अ) वीणापाणि ब) दण्डपाणि क) शुलपाणि ड) चक्रपाणि

5. यशोधरा के पुत्र का नाम .... था।

   अ) राहुल ब) छन्दक क) विनय ड) शक्र

6. .... नामक स्त्री ने सिद्धार्थ को खीर भेंट की थी।

   अ) सुजाता ब) विनिता क) गोपा ड) दमयंती

7. .... वृक्ष को बोधिवृक्ष कहा जाता है।

   अ) जामुन ब) वट क) अश्वत्थ ड) नीम

8. सिद्धार्थ की माँ का नाम .... था।

अ) मायादेवी ब) रमादेवी क) छायादेवी ड) दीपादेवी

9. सिद्धार्थ का पालन पोषण............. ने किया था।

अ) महाप्रजावती ब) मायादेवी क) शची ड) तिलोत्तमा

10. सिद्धार्थ के भाई का नाम............. था।

अ) नंद ब) सुनंद क) आनंद ड) उपनंद

11. सिद्धार्थ .... से क्षमा मांगते हैं।

अ) यशोधरा ब) राहुल क) महाप्रजापती ड) नंद

12. यशोधरा ने तथागत को दान में............. को दिया।

अ) राहुल ब) नंद क) शुद्धोदन ड) आनंद

13. यशोधरा प्रबंध काव्य के रचनाकार .... हैं।

अ) सुमित्रानंदन पंत ब) मैथिलीशरण गुप्त क) निराला ड) प्रसाद

14. गुप्त जी ने .... संस्कृत नाटककार के नाटकों का अनुवाद किया।

अ) भास ब) कालीदास क) शूद्रक ड) भवभूति

15. गुप्त जी की .... इस रचना को हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार और मंगलाप्रसाद पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

अ) यशोधरा ब) साकेत क) भारत-भारती ड) हिन्दू

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :-

1. तक्र - दधि, दही, मट्ठा
2. शक्र - इंद्र
3. नक्र - मगरमच्छ
4. मुक्ताफल - मोती, कपूर
5. वीतराग - राग रहित, साधु, महात्मा, संत
6. प्रतिभू - धरोहर, प्रतिभूति, अनामत, जमा
7. कालव्याल - काल सर्प
8. वाजिराज - घोडा, अश्व
9. सहमत - आघात, बाधा

10. थाती - धरोहर, अनामत
11. गेह - गृह, घर
12. मेह - वर्षा, बादल
13. प्रतीत - जानकारी, ज्ञान
14. व्रीडा - लज्जा, शर्म
15. मृषा - झुठमुठ
16. पय - दूध, जल
17. आखेटक - शिकारी
18. जवनिका - मेघमाला
19. कादम्बनी - मेघ माला
20. इन्दु - चंद्रमा
21. विश्वमित्र - एक ऋषि
22. दाडिम - अनार
23. अवदात - उज्ज्वल
24. जरा - बुढापा
25. कंथक - सिद्धार्थ का प्रिय अश्व
26. संसृति - संसार
27. अमिताभ - अत्यंत तेजस्वी, कांतियुक्त
28. पाथ - जल, पानी
29. सलिल - पानी, जल
30. गाज - बिजली
31. मार - अनंग, मदन
32. शुक्ति - सींप, सीपी

1.6. स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

1) अ - सिद्धार्थ
2) क -शुद्धोदन
3) अ - गोपा
4) ब - दण्डपाणि
5) अ - राहुल
6) अ - सुजाता

7) क – अश्वत्थ 8) अ – मायादेवी

9) अ – महाप्रजापती 10) अ – नंद

11) अ – यशोधरा 12) अ – राहुल

13) ब – मैथिलीशरण गुप्त 14) अ – भास

15) ब – साकेत

1.7 सारांश :–

1. 'यशोधरा' यह मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित प्रबंध काव्य है जिसका प्रकाशन 1933 ई. में हुआ। इस प्रबंध काव्य में गौतम बुद्ध के गृहत्याग की कहानी को केन्द्र में रखकर यह महाकाव्य लिखा गया। इसमें गौतमबुद्ध की पत्नी यशोधरा की विरहजन्य पीडा को विशेष रूप से महत्व दिया गया है। यह गद्य–पद्य मिश्रित विधा है इसलिए इसे चम्पूकाव्य कहा जाता है।

2. कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र के रूप में सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। उनकी माता मायादेवी उन्हें जन्मदेकर मुक्ति को प्राप्त कर गई। मायादेवी और महाप्रजावती कोलियराज्य की राजकुमारियाँ और सगी बहनें थी। महाप्रजावती सिद्धार्थ की मौसी और दत्तक माँ थी।

3. इस महाकाव्य के कथानक का आरंभ सिद्धार्थ के वैराग्य चिंतन से होता है। बुढापा, रोग, मृत्यु आदि के दृश्यों से सिद्धार्थ भयचकित हो जाते हैं। अमृत तत्व की खोज के लिए वे यशोधरा और पुत्र राहुल को निद्रा में छोडकर 'महाभिनिष्क्रमण' करते हैं। गौतम के इस प्रयाण को 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है।

4. प्रातः समय जब यशोधरा जाग जाती है तब उसे यह ज्ञात होता है कि उसके पति ने उसका त्याग किया है और मुक्ति की खोज का उपाय ढूंढने के लिए वे अज्ञात स्थान पर चले गए हैं। विरह का दुःख उसे जरूर होता है किन्तु उससे अधिक दुःख यह है कि उसके प्रिय का 'चोरी–चोरी जाना' और इस कारण वह लज्जा में डूब जाती है। वह अपने जीवन का अन्त करने के बारे में भी सोचती है किन्तु वह ऐसा नहीं कर पाती क्योंकि उस पर राहुल के पालन पोषण का उत्तरदायित्व है। इस कारण वह राहुल को पालपोसकर बडा करती है। किन्तु सम्पूर्ण जीवन भर उसकी मनोदशा बिगडती रहती है। 'आँचल में दूध' और 'आँखों में पानी' यही उसके जीवन का आधार बन जाता है। और जीवनयापन के लिए एक वजह भी।

5. यशोधरा एक स्वाभिमानी नारी और क्षत्राणी भी है। अपने पति के सिद्धि मार्ग में वह बाधा बनना नहीं चाहती इसलिए वह मौन रहकर, राहुल का पालपोषण करते हुए अपने जीवन में व्यस्त हो जाती है। उसे भरोसा है कि सिद्धि प्राप्त करने के बाद उसके पति अवश्य वापस आएँगे और साथ कुछ अपूर्व, अनुपम वस्तु लाएँगे। उसके पति जो भी कुछ प्राप्त करेंगे, उसमें पत्नी होने के नाते उसका भी भाग होगा।

6. सिद्धार्थ के भाई नन्द भी व्यथित है क्योंकि सिद्धार्थ ने उनका भी त्याग किया है। यह उनके उपर सबसे बडा अत्याचार हुआ है। सिद्धार्थ की धरोहर राहुल के लिए वे कोई भी त्याग करने के लिए तैयार है।

7. सिद्धार्थ की दत्तक माता महाप्रजावती मन में यह सोचती है कि मैंने सिद्धार्थ के साथ कभी सौतेला व्यवहार नहीं किया, फिर भी सिद्धार्थ गृहत्याग कर चला गया। उसके मन में यहीं डर और भय है कि कही लोग उसकी तुलना कैकेयी के साथ न करे। राजा शुद्दोदन भी पुत्र की विरह पीडा में तडपते हुए नजर आते हैं। वे यशोधरा से कहते हैं कि पुत्र विरह का दुःख सहने के लिए मैं कहाँ से धैर्य प्राप्त करूं ?

8. परिवार जनों की तरह प्रजानन की शोकसागर में डूब जाते हैं और सिद्धार्थ की स्मृतियों को उजागर करते हैं। इसी समय छन्दक लौटकर यह समाचार देता है कि सिद्धार्थ ने अपने केश काट डाले और संन्यास ग्रहण कर लिया।

9. यशोधरा अपने योगी पति की विरह में पूर्णतः योगिनी बन जाती है। वह सारे शृंगारों का परित्याग कर देती है। हाथ में केवल चूडियाँ और मस्तक पर सिन्दूर बिन्दु, इसके अलावा उसके शरीरपर कोई गहना, अलंकार नहीं है। उसकी मलिन गुदडी में राहुल जैसा लाल है। यशोधरा का महान त्याग और आदर्श को गुप्त जी ने चित्रित किया है। यशोधरा घर में और उसका पति वन में तप करते हैं। उसे यह विश्वास है कि उसके भगवान अवश्य ही उसके पास आयेंगे। वह मानती है कि भक्त कही नहीं जाते। अपितु भगवान को ही भक्त के पास आना पडता है।

10. बदलते हुए ऋतुचक्र में वह अपने प्रिय की ही खोज करती है। उसे यह प्रतीत होता है कि सृष्टि के सारे व्यापार उसके पति की तपस्या के कारण ही हो रहे हैं। अपने पुत्र राहुल के साथ खेलते-बतियाते हुए उसका जीवन गुजरने लगता है किन्तु अपने प्रिय का विरह उसे सालता रहता है। उसे दुःख केवल यहीं था कि उसका पति उसे बिना कुछ बताए चोरी-चोरी चला गया। एक दिन उसे समाचार मिलता है कि सिद्धार्थ अब तथागत बनकर कपिलवस्तु वापस आये हैं और उसके काफी नजदीक भी है लेकिन वह उन्हें मिलने नहीं जाती और घर में ही रहती है। उसे यह विश्वास था कि उसके पति को कभी न कभी उसके द्वार पर आना पडेगा और उसका यह प्रणपूरा हो जाता है।

11. यशोधरा की साधना पूर्ण हो जाती है। भगवान बुद्ध उसके द्वार पर आकर खडे हो जाते हैं। वे यह भी मान लेते हैं कि जिस प्रकार वे चले गये थे, उसमें उनकी ही दुर्बलता थी। तथागत नारी की महत्ता को स्वीकार कह लते हैं। अपने पति और तथागत बुद्ध को दान में क्या दे ? यह प्रश्न उसके मन में उभरता है किन्तु यशोधरा तथागत को अपने प्रिय पुत्र राहुल का दान देकर अपने महान त्याग का परिचय देती है।

12. 'यशोधरा' भारतीय नारी की प्रतिनिधि है और वह नारी के उदात्त चरित्र का भी प्रतीक है। कुल १६ भागों में विभाजित यह प्रबंध कृति उदात्त कथानक, उदात्त कार्य, उदात्त शैली और उदात्त भावों से परिपूर्ण रचना है। यशोधरा की कथा यशोधरा और उसके पति सिद्धार्थ की कथा है। राज्य त्याग करने के बाद सिद्धार्थ भगवान बुद्ध बनकर वापस आते हैं किन्तु यशोधरा की तपस्या और साधना भी उतनी ही महत्वपूर्ण

है। यशोधरा में प्रधान रस शृंगार है किन्तु वह विरह शृंगार है। यशोधरा में प्रकृति से अधिक मानव चित्रण हुआ है और प्रकृति वर्णन भी है किन्तु वह नाममात्र है। भारतीय महाकाव्यों के उपेक्षित पात्रों में से एक यशोधरा है, उसके विरह वर्णन और भारतीय नारी का गौरव बढाना इसी उद्देश्य को लेकर कवि ने यशोधरा का लेखन किया है।

13. इस प्रबंध काव्य में अनेक पात्र हैं किन्तु प्रमुख पात्र यशोधरा ही है, जिसके नाम से ही इस कृति का नामकरण हुआ है। सिद्धार्थ की सिद्धि प्राप्ति के मार्ग में वह राह का रोडा नहीं बनना चाहती अपितु वह अपने पति की सफलता का ही चिंतन करती है। नारी में जो उदात्त गुण होने चाहिए वह सारे गुण यशोधरा पास हैं किन्तु उसके पास सबसे बडा गुण है उसकी क्षमाशीलता। जो भारतीय नारी का एक अलंकार समझा जाता है। अन्य पात्रों में सिद्धार्थ भी है जो अन्त में बुद्ध होकर वापस आते हैं। राजा शुद्धोदन, राणी महाप्रजापती, सिद्धार्थ के भाई नंद, राहुल और सिद्धार्थ के सारथी छन्दक आदि है। हर एक पात्र के चरित्र चित्रण में कवि ने सफलता प्राप्त की है।

14. यशोधरा के भाव पक्ष चित्रण में कवि सफल हुए हैं। इस कृति में भाव का केवल तन्मयता के साथ वर्णन ही नहीं हुआ अपितु उसका क्रमशः विकास भी हुआ है। धीरे-धीरे बदलती हुई चित्तवृत्ति पहले पश्चाताप, शोक, आत्मग्लानि, दीनता, अपमानजन्य क्षोभ को भूलकर मातृत्व में परिणित होकर शांत हो जाती है, ह्रदय की भावनाओं को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। कल्पना शक्ति, अलंकार योजना, शैली और भाषा की दृष्टि से यशोधरा का कलापक्ष निश्चित ही पुष्ट है। संस्कृत का पद-विधान जकडा हुआ चलता है। छन्द बद्धता, शब्द योजना, शब्दालंकार, भाषा और गेयता के सुंदर उदाहरण इस कृति में प्रस्तुत हुए हैं। इसलिए इस कृति का कलापक्ष भी अत्यंत सशक्त और बलवान है। कलापक्ष का सुंदर उद्घाटन इस कृति में हुआ है।

1.8 स्वाध्याय :-

1.8.1 दीर्घोत्ती प्रश्न

1. 'यशोधरा' की कथावस्तु का विश्लेषण कीजिए।
2. 'यशोधरा एक सफल चम्पूकाव्य है' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. 'यशोधरा' प्रबंध काव्य के आधार पर यशोधरा का चरित्र चित्रण कीजिए।
4. 'यशोधरा' प्रबंध काव्य का भावपक्ष विशद कीजिए।
5. 'यशोधरा' प्रबंध काव्य का कलापक्ष विशद कीजिए।
6. 'यशोधरा' प्रबंध काव्य की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
7. 'यशोधरा' प्रबंध काव्य का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

1.8.2 **ससंदर्भ स्पष्टीकरण के उदाहरण**

1. पडी रह तू मेरी भव - भुक्ति
मुक्ति हेतु जाता हूँ यह मैं, मुक्ति, मुक्ति, बस मुक्ति।
मेरा मानस हंस सुनेना और कौनसी युक्ति
मुक्ताफल निर्द्वन्द चुनेगा, चुन ले कोई शुक्ति। (सिद्धार्थ)
2. नाथ, कहाँ जाते हो? अब भी यह अन्धकार छाया है
हाँ!जगकर क्या पाया, मैंने वह स्वप्न भी गँवाया है। (यशोधरा)
3. सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात
पर चोरी-चोरी गये, यही बडा व्याघात
सखि, वे मुझसे कहकर जाते
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?
4. स्वयं सुसज्जित करने क्षण में
प्रियतम को प्राणों के पल में
हमीं भेज देती है रण में
क्षात्र धर्म के नाते
सखि वे मुझसे कहकर जाते।
5. सास-ससुर पूछेंगे, तो उनसे क्या अभी कहूँगी मैं
हाँ !गर्विता तुम्हारी, मौन रहूँगी, सहूँगी मैं।
6. नन्द तुम्हारी थाती पर ही देगा सब कुछ वार
किन्तु करेंगे कब तक आकर तुम उसका उद्धार
आर्य, यह मुझ पर अत्याचार। (नन्द)
7. धीरा है यशोधरे, तू, धैर्य कैसे मैं धरूँ?
तू ही बता, उसके लिए मैं आज क्या करूँ ? (शुद्धोदन)
8. न करे कोई मेरी चिन्ता, नहीं मुझे भय-लेश
सिद्धि लाभ करके मैं फिर भी लौटूंगा निज देश। (छन्दक)
9. वर्तमान मेरा अहा ! है अतीत का ध्यान
किन्तु हाय ! इस ज्ञानसे अच्छा था अज्ञान।
10. भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान

यशोधरा के अर्थ है अब भी यह अभियान।

11. तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उडाता आया

हाय ! विभूति रमाने का भी मैंने योग न पाया

सुखा कण्ठ, पसीना छूटा, मृग तृष्णा की माया

झूलसी दृष्टि, अंधेरा दिखा, दूर गई वह छाया।

12. दैव बनाए रक्खे, राहुल बेटा, विचित्र तेरी क्रीडा

तनिक बदल जाती है, उनमें मेरी अधीर पीडा-जीडा।

13. देखूँगी बेटा, मैं जो भी भाग्य मुझे दिखलाएँगे

तो भी तेरे सुख के उपर मेरे दुःख न छाएँगे।

14. बेटा इस विश्व में नहीं है एकदेशता

होती कहीं एक, कहीं दूसरी विशेषता

मधुर बनाता सब वस्तुओं का नाता है

भाता वहीं उसको, जहाँ जो जन्म पाता है।

15. निज बन्धन को सम्बन्ध सयत्न बनाऊँ

कह मुक्ति भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ? (यशोधरा)

16. रोना-गाना बस यहीं जीवन के दो अंग

एक संग मैं ले रही दोनों का रस-रंग।

17. यदि वह सत्य है तो मैं भी कृतकृत्य हूँ

आज सुख से भी निज दुःख मुझे प्यारा है।

18. तेरा अर्थ ही तो मुझको उसकी अपेक्षा है।

गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको

19. कृतकृत्य हुई गोपा, पाया यह योग, भोग अब जा तू

आ राहुल बढ बेटा, पूज्य पिता से परंपरा पा तू। (बुद्धदेव)

20. माना दुर्बल ही था गौतम छिपकर गया निदान

किन्तु शुभे, परिणाम भला ही हुआ, सुधा-सन्धान

क्षमा करो सिद्धार्थ शाक्य की निर्दयता प्रिय जान

मैत्री-करूणा-पूर्ण आज वह शुद्ध बुद्ध भगवान।

21. तुम भिक्षुक बन कर आए थे, गोपा क्या देती स्वामी?

था अनुरूप एक राहुल ही रहे सदा अनुगामी।
मेरे दुःख में भरा विश्वसुख, क्यों न भरूँ फिर मैं हामी
बुद्ध शरणं, धर्म शरणं, संघ शरणं गच्छामि।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :–

1. मैथिलीशरण गुप्त जी ने जिन उपेक्षित नारी पात्रों को अपनी काव्यधारा का प्रमुख पात्र बनाया है, उन काव्यकृतियों की एक सूची बनाकर पात्र और कृतियों की फेहरिस्त बनाइए।
2. 'साकेत' की उर्मिला और 'यशोधरा' की यशोधरा का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
3. जगदीश गुप्त की रचना 'गोपा गौतम' और 'यशोधरा'पर तुलनात्मक निबंध लिखिए।

1.10. अतिरिक्त अध्ययन के लिए :–

1. यशोधरा – मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव झाँसी 1968
2. गोपा गौतम – जगदीश गुप्त, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2016
3. साकेत – मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव झाँसी 1939
4. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास – बाबू गुलाब राय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा 1993
5. यशोधरा जीत गई – डॉ. रांगेय राघव, राजपाल एंड संस दिल्ली तीसरा संस्करण 2015

❑❑❑

इकाई 1

चाँद का मुँह टेढा है, ब्रह्मराक्षस, अंधेरे में

– गजानन माधव मुक्तिबोध

1.1 उद्देश्य।

1.2 प्रस्तावना।

1.3 विषय विवेचन।

1.3.1 गजानन माधव मुक्तिबोध का जीवन परिचय।

1.3.2 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता का परिचय।

1.3.3 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता का आशय।

1.3.4 'ब्रह्मराक्षस'कविता का परिचय।

1.3.5 'ब्रह्मराक्षस' कविता का आशय।

1.3.6 'अंधेरे में' कविता का परिचय।

1.3.7 'अंधेरे में' कविता का आशय।

1.3 स्वयं अध्ययन के प्रश्न।

1.4 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ।

1.5 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर।

1.6 सारांश।

1.7 स्वाध्याय।

1.8 क्षेत्रीय कार्य।

1.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

1. मुक्तिबोध के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे।
2. 'चाँद का मुँह टेढा है' 'ब्रह्मराक्षस' और 'अंधेरे में' कविता के आशय से परिचित होंगे।

3. ‘चाँद का मुँह टेढा हैफ ‘ब्रह्मराक्षस’ और ‘अंधेरे में’ कविता के भाषा सौंदर्य तथा शिल्प-सौंदर्य को समझ पायेंगे।

4. लंबी कविता के स्वरूप को समझ पायेंगे।

5. प्रगतिवादी काव्य से परिचित होंगे।

6. मुक्तिबोध की कविताओं के माध्यम से ‘फैंटेसी’को जानेंगे।

1.2 प्रस्तावना :

बीसवीं सदी की हिंदी कविता का सबसे बेचैन, तडपता हुआ और सबसे ईमानदार स्वर गजानन माधव मुक्तिबोध का है। छायावाद और स्वच्छंदतावादी कविताओं के दौर के बाद जब नई कविता का दौर शुरू हुआ, तो मुक्तिबोध की कविताओं ने जीवन की वास्तविकता यथार्थ रूप में चित्रित कर हिंदी साहित्य जगत् में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। उन्हें प्रगतिशील कविता और नई कविता के बीच का सेतु भी माना जाता है। कहना समिचीन होगा कि उनकी आस्था प्रगतिशील भावधारा की परंपरा में है जिसकी एक लीक नई कविता में चली आई है। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. नामवर सिंह उनके बारे में लिखते हैं कि ‘नई कविता में मुक्तिबोध की जगह वही है, जो छायावाद में निराला की थी।’

मुक्तिबोध ने गहरे विचार आंदोलन से जूझते हुए लंबी फैंटेसी कविताओं की रचना की। उनका संघर्ष और क्रांतिकारी विचारधाराएँ उनकी लंबी कविताओं में दृष्टिगोचर होती है। मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ परंपरागत लंबी कविताओं से काफी अलग तरह की रचनाएँ हैं। क्योंकि वे न तो किसी केंद्रीय भाव पर आधारित है और न उसमें किसी स्पष्ट कथानक का ही आभास मिलता है। वे अपनी कविताओं की परिकल्पना प्राय: एक फैंटेसी के रूप में करते हैं। कुछ दूर चलकर उनकी अंतर्योजना इतनी जटिल और अस्पष्ट होकर बिखर जाती है कि कविता के सूत्र को पकडे रहना कठिन हो जाता है।

मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में उपमा, रूपक, अलंकार, बिंब, प्रतीक एक साथ मिलकर फैंटेसी का रूप लेकर प्रयुक्त हुए हैं। फैंटेसी शैली का प्रयोग होने के कारण मुक्तिबोध की कविता क्षण-क्षण में संदर्भो के साथ अपना रंग बदलती रहती है। वे बिंबों, प्रतीकों और रूपको के द्वारा अद्‌भूत और विलक्षण चित्रात्मकता उपस्थित करते हैं। प्रगतिशील चेतना का समावेश होने के कारण उनकी रचनाओं में परिपक्वता तथा प्रोढता दिखाई देती है। प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने समसामयिक स्थिति पर प्रकाश डाला है। मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण पूँजीवादी और सामंतवादी विचारधाराओं से उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। वे शोषित, पीड़ित समाज को अपने साथ लेकर आगे बढते हैं।

मुक्तिबोध की कविता में शोषित और सामान्य जनसमुदाय के प्रति गहन आस्था, समाज के प्रति प्रतिबद्धता और सामाजिक विषम स्थिति से उत्पन्न तनाव है। उनकी प्राय: सभी कविताओं में वर्तमान समाज और उसमें व्याप्त आतंक, भय, चिंता, दहशत, सामाजिक उत्पीडन, अन्याय और इनसे जूझते आम आदमी के संघर्ष को उद्‌घाटित करने की छटपटाहट है।

'ब्रह्मराक्षस', 'चाँद का मुंह टेढा है' और 'अंधेरे में' मुक्तिबोध की अतिविशिष्ट रचनाएँ हैं जिसमें फैंटेसी, लंबी कविता की संरचना, नई कविता का शिल्पविधान, प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव आदि का घुलामिला रूप दृष्टिगोचर होता है। इस इकाई में हम इन तीन कविताओं को समग्र रूप में देखने का प्रयास करेंगे।

1.3 विषय विवेचन :

1.3.1 गजानन माधव मुक्तिबोध का जीवन परिचय :

मुक्तिबोध की रचनाशीलता और उसमें अभिव्यक्त भावों से हिंदी साहित्य संसार समृद्ध हुआ है। हिंदी कविता, कहानी और आलोचना के क्षेत्र में उन्होंने किया कार्य नि:संदेह युग परिवर्तनकारी है। हर साहित्यकार अपने जीवन की परिस्थितियों, प्रभावों और सामाजिक परिवेश से प्रभावित होता है। मुक्तिबोध भी ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने जागरूक और सचेतन साहित्यकार की भूमिका बखूबी निभाते हुए सामाजिक परिवेश से अनुभव प्राप्त कर उन्हें क्रांतिकारी विचारों के रूप में परिवर्तित किया है। ऐसे महान साहित्यकार का जीवन परिचय देखना उनके साहित्य के सही-सही मूल्यांकन की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है। अत: यहाँ मुक्तिबोध के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दिया जा रहा है, जो इस प्रकार है -

जन्म एवं जन्मस्थान -

प्रगतिवादी कविता के सशक्त और समर्थ हस्ताक्षर गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म १३ नवंबर, १९१७ में ग्वालियर (मध्यप्रदेश) राज्य के मुरैना जिल्हे में श्योपुर नामक गाँव में एक महाराष्ट्रीयन परिवार में हुआ। मुक्तिबोध के परदादा वासुदेवजी जलगाँव (खान्देश) से नौकरी के लिए ग्वालियर आए और फिर यहीं बस गए। मुक्तिबोध के दादा टोंक (राजस्थान) में दफ्तरदार थे और अपने फारसी ज्ञान के कारण मुंशीजी के नाम से प्रसिद्ध थे।

माता-पिता -

मुक्तिबोध की माता श्रीमती पार्वतीबाई बुंदेलखंड में ईसागढ के एक किसान परिवार से थी। नियमित रूप से पूजा-पाठ करनेवाली एक धर्म परायण स्त्री थी। मराठी तथा हिंदी दोनों भाषाएँ जानती थी। मराठी के हरी नारायण आपटे तथा हिंदी के मुंशी प्रेमचंद उनके प्रिय लेखक थे। उनकी छठी कक्षा तक पढाई हुई थी। एक अच्छी सुसंस्कारित स्त्री थी और उन्ही के मानवतावादी संस्कारों के कारण मुक्तिबोध के मन में बचपन से ही आम समाज के प्रति संवेदना और सहानुभूति रही।

मुक्तिबोध के पिता श्री. माधवराव गोपालराव मुक्तिबोध ग्वालियर राज्य में सब इन्स्पेक्टर थे। कई स्थानों में थानेदार रहने के उपरांत वे उज्जैन में सब इन्स्पेक्टर के रूप में नियुक्त हुए और उसी पद से सन् १९३९ में अवकाश ग्रहण प्राप्त किया। मुक्तिबोध के पिता बहुत कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार व्यक्ति थे। इन्हीं गुणों के कारण उन्हें अनेक विसंगतियों से जूझना पडा।

बचपन –

मुक्तिबोध के पिता सब इन्स्पेक्टर जैसे सम्मानित पद पर थे पर ईमानदार पुलिस अधिकारी होने के कारण उनकी आय अच्छी नहीं थी। घर में कई सदस्य थे। अत: परिवार के सदस्यों का लालन-पालन उनकी आय से कठिनाई से ही हो पाता था। मुक्तिबोध के वसंत मुक्तिबोध, चंद्रकांत मुक्तिबोध और शरतचंद्र मुक्तिबोध यह तीन भाई थे। इनमें से श्री. शरतचंद्र मुक्तिबोध मराठी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं।

सभी भाईयों में बडे होने के कारण मुक्तिबोध की परवरिश विशेष लाड-प्यार से हुई। मुक्तिबोध के पूर्व दो भाईयों की मृत्यु होने के कारण उन्हें माता-पिता तथा दादाजी आँखों से ओजल नहीं होने देते थे। इसी लाड-प्यार के कारण वे जिद्दी बन गए थे। पिताजी रियासती पुलिस अफसर होने के कारण मुक्तिबोध जब भी अपने पिताजी के साथ घुमने जाते तो हर जगह उनकी खुशामद होती थी।

शिक्षा-दीक्षा –

मुक्तिबोध की प्रारंभिक शिक्षा समुचित ढंग से नहीं हो सकी। पिताजी पुलिस अफसर होने के कारण बार-बार स्थानांतर होता रहता जिसका मुक्तिबोध की पढाई पर दुष्प्रभाव पडा। परिणामस्वरूप वे मीडिल स्कूल की परीक्षा अनुत्तीर्ण हो गए। इस असफलता को वे अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना मानते हैं। यह परीक्षा अगले वर्ष उत्तीर्ण करने पर वे घर के सभी सदस्यों के प्रशंसा के पात्र बन गए। मेट्रिक उत्तीर्ण होकर इंटर तक पहुँचने पर तो वे घर के सारे लोगों की प्रशंसा के केंद्रबिंदु बन गए थे, क्योंकि वे घर के पहले पढे-लिखे आदमी थे।

1935 में माधव महाविद्यालय, उज्जैन से इंटरमीडियट परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे आगे की पढाई के लिए इंदौर आ गए। 1938 में उन्होंने इंदौर के होलकर महाविद्यालय से बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इंदौर में रहते समय उनका परिचय हिंदी के विख्यात साहित्यकार प्रभाकर माचवे जी से हुआ। इन दिनों उनके अध्ययन और चिंतन का क्षेत्र व्यापक हो गया। इसी समय उन्होंने अनेक श्रेष्ठ साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन किया।

विवाह –

मुक्तिबोध में बीस-इक्कीस साल की उम्र तक आते-आते उपेक्षितों और दलितों के प्रति सहानुभूति तेजी से बढ रही थी। इसी प्रभावस्वरूप उन्हें अपने घर की नौकरानी की बेटी शांताबाई से प्रेम हुआ और सन् 1936 में मुक्तिबोध ने उसके साथ आंतरजातीय प्रेमविवाह किया। यह विवाह कुल की परंपरा के विरूद्ध था। मुक्तिबोध के पिता अभिजात स्वभाव के थे। वर्णभेद को बहुत महत्त्व देते थे और इसी कारण इस विवाह से उनके परिवार में तनाव उत्पन्न हुआ, जिसका उनके जीवन पर दूरगामी प्रभाव पडा।

नौकरी –

मुक्तिबोध ने बीस वर्ष की उम्र से नौकरी करना आरंभ किया और अगले बीस वर्षो में उज्जैन, बडनगर, शुजालपुर, कलकत्ता, बंबई, इलाहाबाद, जबलपुर और नागपुर आदि अनेक स्थानों पर तरह-तरह की

नौकरियाँ की। हमेशा आर्थिक संकटों से घिरे मुक्तिबोध विविध प्रकार की नौकरियाँ पाते–छोडते रहे। बडनगर, उज्जैन और शुजालपुर में अध्यापक के पद पर वे कार्यरत रहे। शुजालपुर में स्कूल के मॅनेंजर से नहीं बनी और वे इस्तीफा देकर चले गए।

फिर बनारस में 'हंस' पत्रिका में डिस्पेचर एवं संपादन का कार्य करते रहे। बनारस से वे जबलपुर गए। वहाँ हितकारी हाईस्कूल में कुछ समय तक उन्होंने अध्यापन किया। वहीं कुछ समय तक वे दैनिक 'जयहिंद' में भी काम करते रहे। उसके पश्चात वे नागपुर गए। वहाँ वे सूचना एवं प्रसारण विभाग में पत्रकार के रूप में कार्य करते रहे। यह काम भी उन्होंने आकाशवाणी की नौकरी के लिए छोड दिया, पर वहाँ भी वे संतुष्ट नहीं हो पाए। फिर वे 'नया खून' समाचार पत्र का संपादन करने लगे। वहाँ उन्होंने बहुत अच्छा काम किया, किंतु वहाँ भी वे समझौता न कर सके और सन् 1938 में उन्हें यह समाचार पत्र छोडना पडा।

स्वाभिमान एवं स्वतंत्र वृत्ति के कारण वे कभी भी किसी एक स्थान पर नहीं टिक पाए। 'नया खून' समाचार पत्र छोडने के बाद वे राजनांद गाँव आए और सन् 1958 से वहाँ के दिग्विजय महाविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हो गए। वहाँ वे अपने लेखन कर्म में व्यस्त रहे।

मुक्तिबोध का व्यक्तित्व : बाह्य और आंतरिक –

मुक्तिबोध के साहित्य को समझने के लिए उनके बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व को जान लेना आवश्यक है, क्योंकि रचनाकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य में स्वाभाविक रूप से प्रतिबिंबित होता है। बचपन का परिवेश, पारिवारिक संस्कार, नैतिक मूल्य आदि का प्रभाव व्यक्तित्व पर पडता है और वह व्यक्तित्व का प्रभाव आगे जाकर साहित्य में परिणत होता है।

बाह्य व्यक्तित्व –

मुक्तिबोध असाधारण प्रतिभाशाली रचनाधर्मी थे। उनका बाह्य व्यक्तित्व बिलकुल साधारण था। लंबा लेकिन दुबला शरीर था। शरीर में माँस कम और हड्डियाँ ही अधिक उभरकर आई थी। हाथ की अंगुलियाँ और हथेली बिलकुल ही लचीली और मुलायम थी। छाती पर घने बाल थे। लंबा, पतला चेहरा, बडी आँखे जिसमें एक विलक्षण प्रकार की भावुकता छिपी थी। फैला हुआ बडा माथा और सांवली छवी थी। उनके चेहरे पर अनाचार और असंस्कृत के विरूद्ध विद्रोह की भावना हमेशा छलकती थी। कहना गलत नहीं होगा कि मुक्तिबोध का शरीर दिखने में शुष्क और सौंदर्य की परिभाषा में न आनेवाला था।

आंतरिक व्यक्तित्व –

मुक्तिबोध का बाह्य व्यक्तित्व कैसा भी हो लेकिन उनके व्यक्तित्व की आंतरिक संपन्नता आकर्षित किए बिना नहीं रहती। उनका संपूर्ण आंतरिक व्यक्तित्व उनके काव्य में समाहित हो उठा है। वे जितने मृदु, भावुक एवं उदार चरित्र के थे उतने ही आत्मकेंद्री भी हो गए थे। मानव जीवन के प्रति उनकी भावना करूणा से ओतप्रोत थी।

मुक्तिबोध का जीवन संघर्षो एवं विरोधाभासों का पुलिंदा है। वे आधुनिक हिंदी साहित्य में ईमानदार लेखन और संघर्ष के प्रतीक हैं। पारिवारिक दायित्व को वहन करने के लिए उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पडा। लेकिन आर्थिक दबाव में आकर उन्होंने कभी अपने अंदर के साहित्यकार से समझौता नहीं किया। नैतिकता और कलम की दृष्टि से वे हमेशा ईमानदार रहे। स्वार्थ से हटकर उन्होंने हमेशा त्यागवृत्ति को अपनाया था। वे कभी भी समझौतावादी नहीं रहे तथा किसी भी लाभ पर अपने सिद्धांतों की बलि नहीं चढाई। वे अपनी रचना, विचारों तथा जीवनमूल्यों के प्रति अत्यंत ईमानदार थे।

मुक्तिबोध उन्मुक्त स्वभाव के थे। अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर किसी भी प्रकार का बंधन उन्हें स्वीकार्य नहीं था। उनमें मानवीय आस्था और करूणा कुट-कुट कर भरी थी। आम आदमी की पीडा को उन्होंने अनुभव किया था और इसी कारण उनकी कविताओं में उसका प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होता है। वे शोषण और वर्ग भावना के तीव्र विरोधी थे। पीडा, कुंठा, जुगुप्सा, अभाव आदि को स्वंय जीवनभर भोगा था जिसका चित्रण उनकी कविताओं हुआ है।

मृत्यु –

राजनांद गाँव में मुक्तिबोध ने पाठ्यक्रम हेतु 'भारत: इतिहास और संस्कृति' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक को लेकर विरोध और पर्चेबाजी हुई जिसके कारण मध्यप्रदेश सरकार ने उस पुस्तक पर प्रतिबंध लगाया। इस घटना से मुक्तिबोध को मानसिक क्लेश हुआ। राजनांद गाँव में ही उन्हें अचानक पक्षाघात ने घेर लिया।

एक्सिमा, मिर्गी, पायरिया तो उन्हें पहले से ही था। 7 फरवरी को उन्हें पक्षघात हुआ। 17 फरवरी, 1964 को ईलाज के लिए उन्हें भोपाल लाया गया। उनकी अच्छी ईलाज व्यवस्था के लिए डॉ. हरिवंशराय बच्चन आदि कवियों ने लालबहादुर शास्त्री जी से अनुरोध किया और उनकी बात मान ली गई। 26 जून, 1964 को उन्हें दिल्ली के मेडिकल इन्स्टीटयुट में भर्ती करवाकर चिकित्सा का समुचित प्रबंध किया गया। लेकिन उनका स्वास्थ दिन-ब-दिन बिगडता ही चला गया और 15 सितंबर, 1964 के दिन उनका निधन हो गया।

कृतित्व –

मुक्तिबोध अल्पायुषी रहे लेकिन उस कम उम्र में उन्होंने हिंदी साहित्य को क्रांतिकारी ओजस्विता प्रदान की। गद्य और पद्य दोनों विधाओं में उन्होंने कलम चलाई और हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। उन्होंने कितना लिखा यह महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि जो भी लिखा, जीवन की गहराई में डूबकर लिखा है। यही कारण है कि आधुनिक साहित्य में उन्हें शीर्ष पंक्ति में स्थान मिला है। सामान्य पाठक और आलोचक दोनों उनके साहित्य के प्रशंसक रहे हैं।

मुक्तिबोध ने सन् 1935 से नियमित रूप से काव्य रचना आरंभ कर दी थी। 'वाणी', 'धर्मयुग', 'हिंदुस्तान', 'कर्मवीर', 'वसुधा', 'समता', 'कमला' आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ

प्रकाशित होने लगी थी। उन्होंने अपने जीवन में अधिक रचनाएँ लिखी किंतु उनकी सभी रचनाएँ प्रकाशित नहीं हुई। प्रथमत: मुक्तिबोध 'तार सप्तक' के कवि के रूप में हिंदी साहित्य में प्रविष्ठ हुए। किंतु बडे खेद के साथ कहना पडता है कि उनके जीवित होने तक उनका कोई काव्यसंग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। उनका पद्य और गद्य साहित्य निम्नानुसार है-

पद्य साहित्य - (१) तार सप्तक (२) चाँद का मुंह टेढा है (३) भूरी भूरी खाक धूल

1. **तार सप्तक** -

अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' में मुक्तिबोध की अठारह कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं पर छायावादी काव्य प्रवृत्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन प्रारंभिक कविताओं में उनके अन्वेषी मन का संकेत मिलता है। उनकी तार सप्तक के अंतर्गत संकलित महत्वपूर्ण कविताएँ निम्नलिखित हैं-

'आत्मा के मित्र मेरे', 'दूरतारा', 'खोल आँखे', 'अशक्त', 'मेरे अंतर', 'मृत्यु और कवि', 'नूतन अहं', 'विहार', 'पूंजीवादी समाज के प्रति', 'नाश देवता', 'सृजन क्षण', 'अर्न्तदर्शन', 'आत्म संवाद', 'व्यक्तित्व और खंडहर', 'मैं उनका ही होता', 'हे महान', 'एक आत्म वक्तव्य' आदि.

2. **चाँद का मुंह टेढा है**-

मुक्तिबोध की कविताओं का यह पहला स्वतंत्र संग्रह है। श्रीकांत वर्मा ने 1964 में इसे प्रकाशित किया। यह कविता संग्रह देश के आधुनिक समस्यायुक्त जीवन तथा स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात् का एक ज्वलंत प्रतिबिंब है। इस कविता संग्रह में उनकी 28 कविताएँ संकलित हैं जिनमें से 'चाँद का मुंह टेढा है', 'अँधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' लंबी कविताएँ हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण कविताएँ इस प्रकार हैं- 'भमल गलती', 'दिमागी गुहान्धकार का ओराँग-उटांग', 'लकडी का घना रावण', 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म कथन', 'एक अरूप शून्य के प्रति', 'काव्यात्मन फणिधर', 'चकमक की चिनगारियाँ', 'जब प्रश्नचिह बौखला उठे', 'एक स्वप्न कथा', 'चंबल की घाटी में' आदि।

3. **भूरी भूरी खाक धूल** -

मुक्तिबोध की कविताओं का यह दूसरा संकलन है। इसमें उनकी सन् 1948 से लेकर सन् 1964 तक की कविताएँ संकलित हैं। 46 कविताओं का यह संकलन है। अशोक वाजपेयी जी ने इस कविता संग्रह का संपादन किया है। यह कविता संग्रह मुक्तिबोध के चिंतन की व्यापकता और सर्जन कौशल को अत्यंत व्यापकता से स्पष्ट करता है।

इस कविता संग्रह में संकलित कुछ प्रमुख कविताएँ इस प्रकार हैं- 'एक रंग का राग', 'ओ मसिहा', 'इसी बैलगाडी को', 'ओ प्रस्तुत श्रोता', 'देख कीर्ति के नितंब इठलाते', 'मेरे युवजन, मेरे परिजन', 'आठ

बजे रात के', 'हर चीज जब अपनी', 'उलटपुलट शब्द', 'सूरज के वंशधर', 'एक मित्र के प्रति', मुक्तिकामी पैरों की मोच की चीखफ आदि।

गद्य साहित्य –

निबंध संग्रह : नई कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध, नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, एक साहित्यिक की डायरी

समीक्षा : कामायनी : एक पुनर्विचार

कथा साहित्य : काठ का सपना, सतह से उठता हुआ आदमी, विपात्र, एक विखंडित अप्रकाशित उपन्यास मुक्तिबोध की गद्य रचनाओं में उनके गहन चिंतन का प्रतिबिंब है। काव्य सृजन, कला के तीन क्षण, काव्य: एक सांस्कृतिक प्रक्रिया, नई कविता आदि गंभीर विषयों पर मुक्तिबोध ने मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं। गद्य क्षेत्र में उनके समीक्षात्मक लेखों ने भी ख्याति प्राप्त की है। उनकी मृत्यु के बाद नेमिचंद्र जैन ने उनके पूरे साहित्य को 'मुक्तिबोध रचनावली' के अंतर्गत छह खंडों में प्रकाशित किया है।

1.3.2 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता का परिचय।

'चाँद का मुँह टेढा है' हिंदी की कुछ विख्यात और चर्चित लंबी कविताओं में से एक है। इस कविता में सन् 1953 में देश के वातावरण में व्याप्त आतंक और संत्रास को कविने चित्रित किया है। आधुनिक सभ्यता की विसंगती और विद्रुपताओं पर कवि ने इस कविता के माध्यम से करारा व्यंग्य किया है। मुक्तिबोध ने इस कविता में आज के सामान्य मानव की असहायता, घुटन और छटपटाहट को उपस्थित कर उसकी मुक्ति का मार्ग दिखाया है। श्रम शक्ति को संघर्ष की प्रेरणा देना भी उनका उद्देश्य रहा है। इस कविता में नए-पुराने के संघर्ष के बीच पिसी जानेवाली मानवता की व्यथा सशक्त रूप में चित्रित हुई है।

प्रस्तुत कविता का शीर्षक प्रतीकात्मक है। इसमें कवि ने परंपरागत सौंदर्य के प्रतिमानों में उपस्थित परिवर्तनों को चित्रित किया है। नागपुर में हुए मिल मजदूरों के आंदोलन के वातावरण को इस कविता में चित्रित किया है। स्पष्ट शब्दों में कहे तो अत्याचार एवं शोषण के विरूद्ध षडयंत्र की एक रात का चित्रण इस कविता में है। कवि मुक्तिबोध इस कविता के माध्यम से मानव-मात्र की समानता के तथ्य को रेखांकित कर धनिक-पूँजीपति-शोषक वर्ग के मस्तिष्क में इस बात को रेखांकित करना चाहते हैं कि मनुष्य-मनुष्य में कोई अंतर नहीं होता। जो लोग दु:ख, दर्द में पिसते लोगों की पुकार सुनकर उनके दु:ख निवारण हेतु दौड पडते हैं, वास्तव में वहीं लोग सच्चे अर्थो में अमीर हैं।

मुक्तिबोध के काव्य में अनास्था या अविश्वास का स्वर नहीं है। वे जीवन की विषमताओं और विसंगतियों का चित्रण करते हैं, लेकिन फिर भी उनमें आस्था और विश्वास का भाव है। उन्हें विश्वास है कि यह स्थितियाँ ऐसी ही नहीं रहेगी, उनमें परिवर्तन निश्चित होगा। यही आस्थावादी स्वर उनकी इस कविता में मुखर हुआ है।

1.3.3 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता का आशय :

चाँद का मुँह टेढा हैफ मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता है। वस्तुत: 'चाँद का मुँह टेढा है' शीर्षक ऱ्हासोन्मुख परंपरागत सौंदर्यबोध का प्रतीक है। कविता का प्रारंभ वर्णन एवं वातावरण निर्माण से होता है। नगर के बीचोंबीच आधी रात के अँधेरे में काली शीलाओं से बनी भीतों और अहातों पर सुरक्षा की दृष्टि से लगाए काँच के टुकडों पर चाँदनी फैली हुई है और काँच के टुकडे संवलाई हुई झालरों जैसे लग रहे हैं। अहाते के उस पार कारखाना दिख रहा है। उसकी ऊँची-ऊँची चिमनियाँ मानो उस समय भी उगलते धुएँ के रूप में अपने उद्गार प्रकट कर रही हैं। उस उठते धुएँ के चिह या छाया मीनारों का आभास दे रहे हैं। उस धुएँ की मीनारों के बीचों-बीच से चाँद का टेढा मुँह झांक रहा है। यह भयानक धुंधला सन् तिरपन का चाँद है।

कविता के प्रारंभिक पंक्तियों के कुछ विशिष्ट शब्दों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कविता का संबंध किसी मजदूर हडताल से है और यह निराशा से भरा वातावरण सन् 1953 का है। हडताल की गंभीरता इस बात से पता चलती है कि व्यवस्था को हडताल दबाने के लिए गोली-कारतूसों का सहारा लेना पडा, कर्फ्यू लगाना पडा। धरती पर चाँदनी रात का सौंदर्य तहस-नहस हो रहा है।

कवि 'चाँद' को पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतीक रूप में चित्रित करते हैं। क्योंकि चाँद की भूमिका कुछ अच्छी नहीं है। गंजे-सिर चाँद के किरणरूपी जासूस शहर-भर में फैले हुए हैं और नगर के कोनों के तिकोनों में छिपे हैं। चाँद की कनखियों की कोर से निकली ये कोणगामी किरणें अँधेरे में पीली-पीली रोशनी की पट्टियाँ बिछाती है और नगर की जिंदगी का वह टूटा-फूटा उदास प्रसार देखती है। समीप ही विशाल आकार के अँधेरे ताल पर भी सूनेपन के धूँधलके में डूबी हुई चाँदनी सँवलाई हुई है।

समीप ही विशाल पुलों के बहुत नीचे भयभीत बस्ती के सुनसान किनारों पर बहते पथरीले नालों की धारा में गिरती चाँदनी के होंठ काले पड गए हैं। नाले के इधर-उधर मजदूर बस्तियाँ और हरिजन गलियाँ हैं। हरिजन गलियों में पेड पर कुहासे के भूतों की साँवली छाया पडी है, उसी पर टेढे मुँह, गंजे सिर और कंजी आँख वाले चंद्रमा की दृष्टि अटकी है।

बारह बजे का समय है। चाँद के भुसभुसे उजाले के घोर षडयंत्र के कारण शहर में चारों ओर जमाना सख्त है। कविता में आगे गली के मोड पर खडे अजगरी मेहराबों और घनघोर गठियन शाखों वाले बरगद का वर्णन है। यह बरगद काफी पुराना है क्योंकि उससे निकलने वाली मरे हुए जमानों की संगठित छायाओं की सडी-बुसी बास गली के मुहाने में चुपचाप फैली हुई है। लोगों के चुपचाप आने-जाने की आवाज के साथ पंछियों की फडफडाने और अपनी बीट गिराने की आवाज आती है। मानो यह समय की बीट है। गगन में ही नहीं, वृक्षों पर बैठे पंछियों पर भी कर्फ्यू है। इस तरह सारी धरती पर जहरीली छि थू है।

आगे कवि ने 'बरगद का पेड' तथा 'भैरो की मूर्ति' जैसे प्रतीकों को चित्रित कर भय और विस्मय के वातावरण की सृष्टि की है। बरगद की एक डाल गली के मुहाने से आगे फैलती हुई सडक के बाहर लटक रही है। वह लटकती बरगद की डाल ऐसी लग रही है मानो आदमी के जन्म से पहले जंगली मैमथ की सूँड पृथ्वी की छाती पर कुछ सूँघ रही हो। बरगद की घनी-घनी छाँह में सूनी-सूनी गलियाँ, फूटी हुई चूडियों की

सूनी-सूनी कलाई-सी नजर आ रही है। लेकिन गरीबों के इस ठाँव में सुनसान गलियों के चौराहे पर खडे भैरों की सिंदूर पूती मुर्ति का अस्तित्व है। भैरों के गेरूई मुर्ति की पथरीली व्यंग्य-मुस्कान पर टेढे मुँहवाले तिलस्मी चाँद की राजभरी अय्यारी रोशनी पड रही है।

कविता के यहाँ तक आते-आते दो पक्ष स्पष्ट हो जाते हैं। एक पक्ष है-मीनारों वाले कारखानें, चंद्रमा और उसकी जासूस चाँदनी का तो दूसरा पक्ष है-नाले के उस पार हरिजन मजदूर बस्तियों के बरगद के पेड और भैरों की सिंदूरी मुर्ति का। कविता को समझने के लिए कुछ बातें जानना आवश्यक है कि इस कविता में बरगद और भैरों की मुर्ति प्रतीक रूप में आए हैं। 'बरगद का पेड' गरीबों का घर या गरीबों के छत के रूप में आया है। इस कविता में चित्रित बरगद का पेड हरिजन बस्तियों को प्रश्रय दे रहा है। यह बरगद सबकुछ जानता है और इसीलिए यह तजुर्बो का ताबूत है। विरोधाभास यह है कि ताबूत मृत शरीर के लिए होता है लेकिन यह बरगद जिंदा है। अर्थात अतीत मृत होकर भी जिंदा रहता है। भैरों की मुर्ति के बारे में कवि की धारणा धार्मिक नहीं बल्कि वस्तुवादी है। मजदूरों की बस्ती में लगी भैरों की मूर्ति सिंदूर से पूती हुई है मतलब वह अमिरों के मंदिरों की मूर्तियों की तरह अभिजात्य नहीं है और इसी कारण उसकी पीठ पर पोस्टर चिपकाए जाते हैं। भैरों संघर्षरत मजदूर बस्ती में रहने के कारण संघर्ष के प्रतीक बन गए हैं। भैरों की मुर्ति में जो पथरीला व्यंग्य स्मित है, वह इसी बात की ओर संकेत करता है कि भैरों उस जनता का प्रतीक है जो कभी भी अपनी निष्क्रियता छोड सक्रिय होकर क्रांति कर उठेगी। उसकी पीठ चट्टानी और अटूट है।

धीरे-धीरे कविता आगे बढती है। अँधेरे ताल पर चाँदनी सँवला रही है। समय का निराकार घंटाघर गगन में चुपचाप अनाकार खडा है। हरिजन गलियों का घंटाघर अनाकार है मतलब हरिजन बस्तियों में घंटाघर की कोई व्यवस्था ही नहीं है। क्योंकि यहाँ तो जिंदगी के काँटे ही बताते हैं कि कितनी रात बीत गई।

भैरों की पीठ पर हडताल के पोस्टर चिपकाने के बाद गली का मुहाना फुसफुसाते शब्दों और चप्पलों की छपछप से गूँज उठता है। यह फुसफुसाते शब्द बहस करनेवाले लोगों के हैं। बहस इसलिए हो रही है क्योंकि दो तरह के लोगों में एकमत नहीं हो रहा है। जंगल की डालों से गुजरती हवा कुछ इशारों के आशय लेकर गली में आई है और उसी कारण से यह बहस छिडी हुई है। उस बहस में किसी ब्रह्मराक्षसनुमा निष्क्रिय मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के अनाकार तर्क भी है। किंतु एक समय ऐसा आत है कि गलियों की आत्मा में सार्थक शब्द बहस को निर्णय तक पहुँचा देते हैं।

जैसे ही बरगद के खुरदरे अजगरी तने पर टार्च की रोशनी की एक मार फैल जाती है, अँधेरे के पेट में से ज्वालाओं की आँत के समान शब्दों की धार निकलती है। घने अंधकार में बरगद के तने के पास टार्च की रोशनी के कारण सिर्फ दो हाथ दिखाई देते हैं, जो बाँके-तिरछे वर्णों और लाल-नीले घनघोर हडताली अक्षरों वाला एक पोस्टर तने पर चिपका जाते हैं।

आगे निस्तब्ध वातावरण में हडताल के पोस्टर चिपकाते फिरनेवालों के गुप्त गतिविधियों की जासूसी का चित्रण है। पोस्टर लगाने की हलचलों के कारण बरगद में आश्रय लिए पंछियों की फडफड हुई, जिसकी आवाज से एक बिल्ली चौकन्नी हो गई। यह बिल्ली रजनी के निजी गुप्तचरों की प्रतिनिधि अर्थात शोषक वर्ग

की हिमायती है। यह बिल्ली चाँदनी में एकाएक खपरैलों पर ठहर गई। यमदूत-पुत्री-सी इस बिल्ली की सारी देह काली है, सिर्फ पंजे श्वेत है और नाखून खून से रंगे हैं। मतलब वह अभी-अभी एक शिकार करके आई है। यह बिल्ली जानना चाहती है कि मकानों की पीठ पर, अहातों की भीत पर, बरगद की डालों और अँधेरे के कंधों पर यह हडताली पोस्टर कौन चिपका रहा है।

इस जासूस बिल्ली के साथ टेढे मुँह चाँद की अय्यारी रोशनी भी आ गई है। हर मकान में घुसकर, लोहे के गजों की जालियों के झरोखों को पार कर, मिट्टी से लिपे हुए कमरे में जेल के कैदियों के कपडों जैसी चाँदनी फैल जाती है। यह चाँद की अय्यारी रोशनी ऐसी घुम रही है मानो यहाँ के लोगों को जेल सुझा रही हो, हडताल करोगे तो जेल में बंद हो जाओगे।

चाँदनी की तरह अँधेरे ताल के पास घिनौना चमगादड-दल चारों ओर भटक रहा है। यह ऐसे भटक रहा है मानो अहं के अवरूद्ध हो जाने के कारण अपवित्र, अशुद्ध घेरे में घिरकर नपुंसक पंख छटपटा कर ही रह जाते हैं। चमगादड-दल बुद्धि की आँखों में स्वार्थ के शीसे जैसी सच्चाईयों को देखेंगी और सच्चाईयों की उष्मा नहीं सह पाएंगी तो प्यासा ही रहना पडेगा। कवि बताना चाहते हैं कि इस तरह का स्वार्थ ही मनुष्य का मनुष्येत्तर में रूपांतर करते हैं।

बुजूर्ग बरगद को यह सब इतिहास पता है। अपनी ऊँचाई के कारण बरगद को कोलतारी सडक पर खडे गांधी और तिलक के पुतले दिखाई दे रहे हैं और यह भी दिखाई दे रहा है कि उनपर बैठे दो घुग्घु आपस में बातें कर रहे हैं। गांधी के पुतले पर बैठे घुग्घु ने तिलक के पुतले पर बैठे घुग्घु से कहाँ 'स्मशान में मैंने भी सिद्धि की है और देखो मनुष्यों पर मूठ मार दी है' गांधी के पुतले के घुग्घु की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि तिलक के पुतले के घुग्घु ने देखा कि एक भयानक लाल मूठ काले आसमान में धीरे-धीरे तैरती जा रही है।

यहाँ काली करतूतों पर गांधी तथा तिलक के माध्यम से संभाषण द्वारा करारा व्यंग्य किया है। रात्रि के अंधकार में जो काले धंधे और अवैध व्यापार चलते हैं, वही हमारी वर्तमान संस्कृति के प्रतीक बन गए हैं। आकाश रात्रि के अंधेरे सत्यों को घोटकर पी गया है और मनुष्य को मारने के जीवित खूब टोटके या हथकंडे समझ लिए हैं। इन काली सच्चाईयों का पर्दाफाश न हो सके इसलिए आकाश में भी कर्फ्यू लगा दिया है। एक ओर तो सराफे में कल के सट्टे की ऱ्हदय विदारक चिंता है और दूसरी ओर इधर काली रात्रि की कडाही से अकस्मात सत्यों की मिठाई की चाशनी सडकों पर फैल गई है।

कविता में आगे चाँदनी का चरित्र खुलकर आता है। उसका काम सिर्फ संघर्षरत लोगों के आंदोलनों की जासूसी करना नहीं है बल्कि पूँजीवादी संस्कृति को बनाए रखना भी है। इसीलिए वह चोरों-उच्चकों की तरह नालें और झरनों के तटों पर रात-बेरात मछलियाँ फँसाती है। नाले के आसपास रहनेवाले निर्धनों के टूटे-फूटे दृश्यों में बदमस्त कल्पना और कामी कवियों के सेक्स-कष्टों की तरह फैल जाती है और इस प्रकार उनका ध्यान मूल समस्या से हठाती है। यह चाँदनी सभी ओर व्याप्त है। यह चाँदनी किंग्सवें की मशहूर रात की जिंदगी में भी है। वहाँ की भारतीय फिरंगी दुकानों में वह अपने चमचमाते स्वरूप में है। बडे-बडे शोरूमों में, सुगंधीत प्रसाधनों में, पत्रिकाओं के विज्ञापनों में अर्धनग्न महिलाओं के अलग-अलग पोजों में

यह चाँदनी पसरी हुई है। सफेद अंडरवियर-सी आधुनिक प्रतीकों में यह चाँदनी फैली हुई है। यहाँ किसी भी प्रकार का कोई कर्फ्यू नहीं है।

दूसरी ओर इस चाँदनी की हरिजन गलियों में जासूसी तीव्र हो गई है। शहर के कोनों के तिकोनों में छिपी यह चाँदनी सडक के पेडों के गुबंदों पर चढकर, महल लाँघकर, मुहल्ले पार कर, गलियों की गुहाओं में दबे पाँव खुफिया सुराग में खोजती है कि अँधेरे के कंधों पर कौन यह बाँके-तिरछे घनघोर लाल-नीले अक्षरोंवाले भडकीले पोस्टर चिपकाता है।

उधर कोलतारी सडक के बीचो-बीच खडी गांधी की मुर्ति पर बैठे घुग्घु ने हिचकियों की ताल पर गाना शुरू किया और टेलिफोन खंबों पर थमे हुए तारों ने सट्टे के ट्रंक-कॉल सुरों में थर्राना और झनझनाना शुरू किया। रात्रि का काला कनटोप पहने हुए आसमान बाबा ने भय के कारण हनुमान चालिसा गाना शुरू किया। ष्मश्शान जैसे उजडे पेडों की अँधेरी शाखों पर लटके हुए प्रकाश के चिथडे और अधजले सत्य के मुर्दों की चिताओं से जो आग की चिनगारियाँ फूट रही थी, उनके प्रकाश में कवियों ने सत्य के स्थान पर अर्ध-सत्य या भ्रामक सत्य के पुष्टि के गीत गाना प्रारंभ किया।

साथ ही संस्कृति के धुएँ से निकलनेवाले वे बुद्धिजीवीरूपी भूत नम्रता का स्वांग भरते हुए शब्दाडंबर में अहिंसा की दुहाईयाँ दे रहे हैं। वे कह रहे हैं कि मानव जाति के समस्त स्वप्न गौतम बुद्ध के स्तुप में गाडे गए हैं तथा स्वयं भी गड गए हैं। उसी प्रकार ईसा मसीह के सिद्धांतरूपी पंख झड गए हैं। सत्य की चोलियाँ देवदासियों की चोलियों की तरह उतारी गई, उसे देवदासियों की भाँति निर्वस्त्र किया गया। इस प्रकार मानवता ने सुख और मुक्ति के जो सपने देखे थे, वर्तमान स्वार्थ-सभ्यता ने उसकी आंतडियों तक को नोंच-खरोंच डाला है। अब हमें शेष जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह मानवता का खोखला खोल या ढाँचा मात्र है, जिंदगी में सिर्फ झोल है। सिंदूरी विकराल भैरों इनके छद्‌म से परिचित है और इन भाषणों के असत्य को निहारता हुआ व्यंग्य में अपनी खतरनाक हँसी हँस पडता है। उसकी हँसी मानो चाँदनी और उसके षडयंत्रों को नंगा कर देनेवाली है।

कविता में आगे एक नए स्थान और नए दृश्य का वर्णन है। अँधियाले ताल के पास नगर को निहारने वाला एक पहाड खडा है। उस पहाड के गगनचुंबी शीर्ष पर लोहे की शिला का एक चबुतरा है। उसे लोहांगी कहा जाता है। नजदीक ही भग्न खंडहरों के बीच एक बुजुर्ग दरख्त है जिसके घने तने पर प्रेमियों ने अपनी स्मृतियाँ अंकित की है। लोहांगी की हवाएँ दरख्त में घुसकर पत्तों से फुसफुसाते स्वर में बातें कर रही हैं। संभव है कि लोहांगी के चबुतरे पर आंदोलनकर्ता अपनी मिटिंग करते रहे हैं, तभी तो लोहांगी की हवा को नगर की सारी व्यथाएँ मालूम हैं।

लोहांगी पर अपनी मिटिंग खत्म करने के बाद गलियों में दो छरहरे आकार की दो छायाएँ पहुँची। एक के बगल में पोस्टरों की भोंगली है तो दूसरे के हाथ में टिन का एक डिब्बा है और डिब्बे में कूंची है। एक का नाम जमाना और दूसरे का नाम शहर है। जमाना पेंटर है और शहर कारीगर है। ये दोनों रात में वॉल पेंटिंग करने और पोस्टर चिपकाने निकले हैं। वे बरगद की गोल-गोल हड्डियों की पत्तेदार उलझनों के ढाँचों

में पोस्टर लटकाते हैं। ये दोनों अपना काम करते हुए न चिंतित है और न ही भयाक्रांत। बडे मजे से वे अपना पोस्टर चिपकाने का काम कर रहे हैं। पेंटर हँसकर कहता है कि सारे पोस्टर हमने ठीक जगह चिपकाएँ हैं। सुबह ही मजदूर इन्हें घूर-घूर कर पढेंगे और ये लोग पोस्टर के शब्दों में जिंदगी की झल्लाई हुई आग पाएँगे। वह पेंटर अपने जमाना नामक कारीगर से आगे कहता है कि अगर मैं हडताली पोस्टर पढते हुए लोगों के रेखाचित्र खींच सकूँ तो बडा मजा आएगा। उस रेखाचित्र में मैं एक आँख बनाना चाहता हूँ, जो पोस्टर देख रही है। आँख के लिए काला और आँख की पुतली को धधकते लाल रंग से रँगाना चाहता हूँ। काले रंग के लिए उसकी योजना है कि कत्थई खपरैलों से उठते हुए धूएँ के रंगों में आसमानी स्याही मिलाऊँ और लाल रंग के लिए वह सुबह की किरणों के रंग में आशाएँ घोलना चाहता है। अपने साथी से वह पूछता है कि इनसे जो आँख बनेगी और उसकी दृष्टि जब पोस्टर पर गिरेगी तो कैसा रहेगा।

कारीगर भी अपने पेंटर साथी के कंधों पर हाथ रखकर कहता है कि अब मेरे कारनामें भी सुन लो। मैंने धुएँ के कारण काली हुई दीवार पर बाँस की तीली को लेखनी के रूप में प्रयोग करते हुए राम की व्यथा-कथा को अंकित किया था। उसमें राम तुच्छ से तुच्छ प्राणी को भी सुखी देखना चाहते थे। उसकी आशा-आकांक्षाओं को पूरा करना चाहते थे। राम की यह व्यथा-कथा आज भी अर्थात सामयिक परिस्थितियों में भी उतनी ही सच है किंतु आज लोगों के पास इतना अवकाश कहाँ है कि वे इस प्रकार की तस्वीरें इच्छा होते हुए भी बना सके। इच्छा तो अभी बाकी है लेकिन जिंदगी भूरी नहीं खाकी है।

पेंटर कारीगर की बात काटता है और उसके कंधे पर हाथ रखकर साफ-साफ कहता है कि चित्र बनाने के लिए समय और साधनों का होना जरूरी नहीं है। पैरों के नखों से या डंडे की नोंक से अर्थात अनवरत परिश्रम और संघर्ष के द्वारा इस धरती की धूल में भी रेखाएँ खींचकर तस्वीरें बनाई जा सकती हैं, मतलब जीवन सुलभ किया जा सकता है। किंतु यह तभी संभव है जब सभी के मन में वास्तविक स्तर पर जिंदगी को चित्रमयी बनाने का चाव हो, श्रद्धा का भाव हो।

कारीगर हँसकर जमाने की बात से सहमती जताता है और कहता है कि जिंदगी के चित्र बनाते समय हमें अपने सारे स्वार्थ त्यागने चाहिए क्योंकि जिंदगी की अँधेरे से भरी सीढियाँ चढना और उतरना मुश्किल है। उस वक्त हमारे मन की सारी अंध अभिलाशाओं पर हमें अंकुश लगाना चाहिए क्योंकि ऊपर के अर्थात उच्चवर्गीयता के सारे कमरे हमारे लिए बंद हैं।

पेंटर जमाना फिर एक बार नगर कारीगर की बात को काटते हुए उसे कहता है कि-नहीं, तुम्हारी बात गलत है। उन 'ऊपर' के कमरों पर भी हमारे सामुहिक श्रम का अधिकार है। यही सम्मिलित श्रम का अधिकार हमारे अंदर 'ऊपर' को छीनने का दम भी पैदा करेगा। अंतत: दोनों तय करते हैं कि फिलहाल चित्र नहीं बनाते, पोस्टर चिपकाते हैं।

कविता में शहर और जमाना नामक दोनों पात्र नेपथ्य में चले जाते हैं। सामने रह जाता है पोस्टर। वेदना के रक्त से लिखे हुए लाल-लाल, घनघोर शब्दों के धधकते हुए पोस्टर। यह पोस्टर छपे अक्षरों के जरिए अपना संदेश बोलते हैं। सर्वहारा के कष्टजन्य आँसूओं को पोस्टर की प्यार भरी गर्मी ने सुखाकर भाप बना

दिया है। यही भाप अपने वर्ग-शत्रु के विरूद्ध खूँखार अक्षरों में बदल गई है। इसी कारण इन अक्षरों में इतनी ताकद है कि दमनकारी रायफली गोलियों के धडाकों से टकरा कर भी अक्षत है।

यह पोस्टर ही जमाने के असली पैगंबर हैं, जो अपने कंधों पर टूटते आसमान को थामने का हौसला रखते हैं। इन पोस्टरों में ही मानवता की रक्षा करने का दायित्वबोध है। आदमी की दर्द भरी गहरी पुकार को ये जानते हैं। मानव के बीच के भेदभाव को समाप्त कर समानता और मानवता के उत्थान की बात करते हुए यह पोस्टर कहते हैं कि 'मनुष्य-मनुष्य में कोई अंतर नहीं होता। जो लोग दुःख-दर्द में पिसते लोगों की पुकार सुनकर उनकी रक्षा के लिए दौड पडते हैं, वास्तव में वे लोग ही धन्य है।' वे पूँजीपतियों की आँखें खोलते हुए कहते हैं कि तुम मनुष्य हो और तुम्हें सारी सुख-सुविधाओं की आवश्यकता है। वृद्ध माता झुर्रीदार मुख से अभिव्यंजित होनेवाले उसकी आँखों में डूबे रहनेवाले जीवन के अनुभवों की तरह पोस्टरों के माध्यम से एक साथ ही अनेक लोग चिल्ला उठते हैं कि अरे शोषकों! तुम्हारी तरह हम भी मनुष्य है। हमें भी हमारे अधिकार मिलने चाहिए।

धरती का नीला पल्ला अर्थात आसमान काँपता है। आदमी की पीडा की काली झडी जब बरसती है तो विचारों की विक्षोभी वेदना भी कराहने लगती है। पोस्टरों के जरिए जब मानवीय पीडा का गायन होता है तो करूणा के रोंगटों में सन्नाता हुआ आदमी दूसरे आदमी की मदद के लिए दौड पडता है। वह संगठित होकर जुझारू हो जाता है। आदमी के दौडने के साथ जमाना और आसमान भी दौडने लगते हैं।

कविता के अंत में बरगद और भैरों अपनी-अपनी पीठ पर पोस्टर धारण किए हुए बातें करते दिखाई दे रहे हैं। दोनों में बहस छिडी हुई है कि-'सुबह कब होंगी और मुश्किलें कब दूर होंगी। वह समय कब आएगा जब आकाश की कालिमा को चीरकर विद्युत-सा उजाला प्रकट होगा।'

1.3.4 'ब्रह्मराक्षस' कविता का परिचय :

'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता है। इसका सबसे पहले प्रकाशन बनारस से निकलने वाली साहित्यिक पत्रिका 'कवि' में अप्रैल, 1957 में हुआ था। बाद में यह संशोधित रूप में 1964 में मुक्तिबोध के पहले कविता संग्रह 'चाँद का मुंह टेढा है' में प्रकाशित हुई।

'ब्रह्मराक्षस' लंबी कविताओं में से एक फैंटेसी से युक्त सशक्त एवं बहुचर्चित कविता है। 'फैंटेसी' शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द 'फैंटेशिया' से हुई है जिसका अर्थ है- अवास्तव या अमूर्त को दृश्य बनाना अर्थात काल्पनिक या स्वप्न दृश्यों को बिंबात्मक स्वरूप प्रदान करना। सफल फैंटेसी उसी को माना जाता है जिसमें यथार्थ और फैंटेसी संबंधी विचार इतने घूलमिल जाते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। फैंटेसी में यथार्थ इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि वह रहस्य से घिरा होता है।

'ब्रह्मराक्षस' का अर्थ है 'ब्रह्मपिशाच'। शास्त्र के अनुसार यह धारणा है कि वह ब्राह्मण, जो मनुष्ययोनि में पापकर्म करता है, मरने पर प्रेतयोनि पाता है और 'ब्रह्मराक्षस' या 'ब्रह्मपिशाच्' बन जाता है। मुक्तिबोध इस धारणा के आधार पर आधुनिक मनुष्य के मन के अंतसंघर्ष और असफलता को चित्रित करते

हैं। इस कविता में कवि मुक्तिबोध ने एक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी को 'ब्रह्मराक्षस' का रूप देकर एक रूपात्मक फैंटेसी का निर्माण किया है।

प्रस्तुत कविता में चित्रित मध्य-वर्ग अतिप्रबुद्ध, विचारशील बुद्धिजीवी का प्रतीक है जो अपनी मुक्ति हेतु छटपटा रहा है। वह जीवनभर ज्ञान अर्जित करता है किंतु अपने ज्ञान को वह व्यवहार में परिणत नहीं कर पाता है और इसी कारण वह मानसिक रूप से बेचैन और अंतर्विरोधों से ग्रस्त रहता है।

'ब्रह्मराक्षस' कविता को मुख्य रूप से दो खंडों में विभक्त किया जा सकता है। पहले खंड में ब्रह्मराक्षस के रहने का स्थान, उसका व्यवहार चित्रित है तथा दूसरे खंड में उसके पाप कर्मों का स्पष्ट वर्णन है जिसकी वजह से उसको प्रेत-योनि प्राप्त हुई तथा 'ब्रह्मराक्षस' नाम से अभिहित हुआ। कवि इस कविता से हमें यह बताना चाहते हैं कि हमें अपने ज्ञान को जनसाधारण से जोडना होगा। ज्ञान अगर उत्तराधिकारी नहीं खोज पाता तो ब्रह्मराक्षस बन जाता है। निरर्थक और मूल्यहीन बन जाता है, जिससे छटपटाहट, बेचैनी और ज्ञान के अधिक्य से तनाव उपजता है।

1.3.5 'ब्रह्मराक्षस' कविता का आशय :

एक परित्यक्त सूनी बावडी के वर्णन से कविता प्रारंभ होती है। शहर के बाहर, जहाँ अनेक मकानों के खंडहर हैं, एक पुरानी और परित्यक्त बावडी है। बावडी परित्यक्त इसलिए है कि उसके पानी का उपयोग लोगों ने बंद कर दिया है और घुग्घुओं ने अपने घोंसलों में रहना छोड दिया है। बावडी चौडे कुएँ या छोटे तालाब को कहते हैं। 'परित्यक्त बावडी' पहले कभी जीवन के होने का बोध देती है। उसका उपयोग होता था। उसके जल से लोगों की प्यास बुझती थी और वहाँ के घोंसलों में घुग्घु भी रहते थे। लेकिन अब यह बावडी परित्यक्त है।

इस बावडी का जल बहुत गहरा है। उसके ठहरे पानी में अंदर तक सीढियाँ गई हैं, कितनी सीढियाँ पता नहीं। जल को थाह नहीं है लेकिन देखने से ही उसकी गहराई का आभास हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई बात समझ में न आ रही हो, लेकिन महसूस हो रही हो कि उसमें कुछ गहरा मतलब है। बावडी के चारों ओर गूलर के पुराने पेड खडे हैं जिनकी शाखाओं पर घुग्घुओं के परित्यक्त घोंसले हैं। गूलर दत्तात्रेय नामक ऋषी और अवतार से जुडा प्राचीन वृक्ष है। अथर्ववेद और कौशिकसूत्रों में इसकी लकडी के अनेक रहस्यमय तांत्रिक उपयोग बताए हैं।

बावडी को घेरे खडे ये पेड प्राचीन है। उनकी डालियाँ परस्पर जटाओं की तरह उलझी हैं। कवि उन्हें औदुंबर नाम से अभिहित करता है। (संस्कृत में गूलर को औंदुबर कहते हैं। औंदुबर का शाब्दिक अर्थ हुआ गूलर का फल, लकडी आदि। परंतु मुक्तिबोध ने गूलर के अर्थ में ही औंदुबर का प्रयोग किया है।) उनकी डालों से उल्लुओं के भूरे और गोल घोंसले लटक रहे हैं। यह ऐसी जगह है जिसे उल्लु ने भी छोड दिया है। कवि ने यहाँ उल्लुओं के परित्यक्त घोंसले, खंडहर, बावडी और पुराने गूलरों के सम्मिलित प्रभाव से मन में भय उत्पन्न करनेवाली निर्जनता का बहुत सटीक चित्रण किया है।

हवा में जंगल की हरी कच्ची गंध बसी हुई है। यह गंध अनजानी और व्यतीत किसी श्रेष्ठ वस्तु के होने का संदेह मन में उत्पन्न कर देती है। यह वस्तु भूलती नहीं, हमेशा दिल में एक खटके-सी लगी रहती है। बावडी के मुँडेरों पर टगर के सफेद फूल तारों जैसे खिले हुए हैं। इस दृश्य का मुक्तिबोध ने बहुत सुंदर वर्णन किया है-'बावडी की इन मुँडेरों पर, मनोहर हरी कुहनी टेक, बैठी है टगर, ले पुष्प-तारें श्वेत।' टगर कुहनी टेके अर्थात हथेली पर मुँह धरे बावडी में झाँक रही है। उसी के पास लाल कनेर के फूलों का एक गुच्छा लटक रहा है। यह जैसे खतरे के सिग्नल का काम कर रहा है, क्योंकि उधर बावडी का मुँह खुला हुआ है और आसमान की ओर ताक रहा है।

अब कविता में 'ब्रह्मराक्षस' का प्रवेश होता है। वह बावडी में रहता है। 'ब्रह्मराक्षस' बावडी के जल में घुसता है और उसमें डुबकियाँ लगाता है। उसके मुँह के आवाज की अनुगूँज सतह पर सुनाई पडती है, साथ-साथ पागलों जैसे उसकी बडबडाहट के शब्द भी सुनाई पडते हैं। 'ब्रह्मराक्षस' को अपना शरीर अंतर-बाह्य मलिन लगता है और इसी कारण वह अनवरत स्नान करता है। नहाते समय वह अपने पंजों से अपने शरीर के अंगों को लगातार रगडता रहता है, पर मलिनता दूर नहीं होती।

ब्रह्मराक्षस 'पाप-छाया' से मुक्त होने के लिए निरंतर स्नान करता है। अपितु 'ब्रह्मराक्षस' का पाप व्यक्तिगत नहीं है। उसकी समस्या सामाजिक है, विशेषत: शिक्षित मध्यवर्ग की समस्या है। उसका पाप यह था कि आत्मकेंद्रीत रहकर यानी जनता से जुडे बगैर उसने अपने को बदलना चाहा। यहाँ 'ब्रह्मराक्षस' की मानसिकता का चित्रण है जिसमें तीन बातें उभरकर आती हैं-विक्षिप्त आचरण, अपराध-बोध और आत्ममुग्धता। विक्षिप्त आचरण का निदर्शक है बडबडाहट, लगातार नहाने की मनोवैज्ञानिक बाध्यता, विचित्र मंत्रों का उच्चारण आदि।

'ब्रह्मराक्षस' चूँकि एक बुद्धिजीवी का प्रेत है, इसलिए नहाते समय वह बेचैनी के साथ कोई अनोखा स्तोत्र और मंत्र बुदबुदाता है। इतना ही नहीं उसके मुँह से धाराप्रवाह शुद्ध संस्कृत में गालियाँ निकलती हैं। उसके माथे की लकीरों को देखकर लगता है कि वह लगातार आलोचनात्मक मुद्रा में है। दर्शनीय है कि 'ब्रह्मराक्षस' क्रोध में सामाजिक गालियाँ देता है अर्थात 'ब्रह्मराक्षस' सामान्य नहीं है बल्कि कोई प्रकांड ज्ञानी व्यक्तित्व है। 'प्राण में संवेदना है स्याह' तात्पर्य यह कि 'ब्रह्मराक्षस' के मन में भी कालीख जमी है। 'ब्रह्मराक्षस' के अपराध-बोध के साथ-साथ उसकी आत्ममुग्धता भी यहा मुखर हो उठती है।

'ब्रह्मराक्षस' घनघोर दंभी भी है। जब कभी गहरी बावडी की भीतरी दीवारों पर सूर्य की किरणें तिरछी पडती हैं, तो उसे लगता है कि सूर्य ने उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर झूककर उसे नमस्ते किया है। बावडी की दीवार से जब कभी चाँदनी की किरण अपना रास्ता भूलकर टकराती है तब ब्रह्मराक्षस समझता है कि चाँदनी ने वंदना की और उसने मुझे ज्ञान-गुरू माना। वस्तुत: ब्रह्मराक्षस को अपने ज्ञान का दंभ है। सूर्य और चंद्रमा जो अपने प्राकृतिक स्वाभाविक गतिक्रम से प्रकाश देते हैं, उन्हें भी 'ब्रह्मराक्षस' स्वयं से हीन मानता है।

अपनी श्रेष्ठता के छद्म उत्साह से प्रफुल्लित होकर ब्रह्मराक्षस दोगुने भयानक ओज से सुमेरी-बेबिलोनी जनकथाओं से लेकर मधुर वैदिक ऋचाओं तक और तब से आज तक के सूत्र, मंत्र, थियोरम सब प्रमेयों तक मार्क्स, एंगेल्स, रसेल, टायन्बी, हीडेग्गर, स्पेंग्लर, सार्त्र, गांधी सभी के सिद्धातों की नई व्याख्या करता है। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मराक्षस किसी मामुली ब्राह्मण का नहीं, बल्कि बहुत ही विद्वान का प्रेत है।

बावडी के गहरे जल में डुबकियाँ लगा-लगाकर अत्याधिक उत्साह से विभिन्न दर्शनों और विचारों की अपव्याख्या करता हुआ ब्रह्मराक्षस जब स्नान करता है, तो जल आंदोलित हो उठता है। उससे आपस में उलझे हुए शब्दों के भँवर बनते हैं, जिसमें प्रत्येक शब्द अपने प्रति-शब्द को भी काटता है। शब्दों का वह रूप अपने बिंब से ही जूझता हुआ विकृत आकार धारण कर लेता है। उस बावडी में उस समय ध्वनी अपनी प्रतिध्वनि से ही लडती दिखलाई पडती है। बावडी के आसपास के टगर पुष्प, करौंदी के सुकोमल फूल और प्राचीन औंदुबर सभी ब्रह्मराक्षस की वह अंतर्विरोधी ध्वनियाँ सुन रहे हैं।

कविता के दूसरे खंड में ब्रह्मराक्षस के सत्यान्वेषक रूप का सशक्त चित्रण हुआ है। ब्रह्मराक्षस वस्तुत: सत्यशोधक था। सत्य की प्राप्ति के लिए उसने मनुष्य योनि में विकट आत्मसंघर्ष किया था। यहाँ ब्रह्मराक्षस को सत्यान्वेषक के रूप में चित्रित करके उसके व्यक्तित्व की कल्पना स्फटिक निर्मित एक प्रासाद के रूप में की है, जिनमें ऐसी संकीर्ण सीढियाँ बनी हुई थी, जिनपर चढना बहुत ही मुश्किल था। वह सीढियाँ काली थी और अँधेरे में डूबी हुई थी। शोधक उन सीढियों पर चढता था और उतरता था। फिर चढता था और लुढक जाता था। इस कारण उसके पैरों में मोच आ जाती थी और छाती पर अनेक जख्म बन जाते थे। यह उसका आत्मसंघर्ष है, जो उसके भीतर एक पूर्ण व्यक्तित्व की प्राप्ति के लिए चला करता था। बुरे और अच्छे के बीच का संघर्ष जितना उग्र होता है, उससे अधिक उग्र अच्छे और उससे अधिक अच्छे के बीच का संघर्ष होता है। इसीलिए शोधक को अपने उद्देश्य में सफलता थोडी और असफलताएँ ही अधिक हाथ लगती है। इस सबके बावजूद वह पूर्ण मुक्ति की खोज के उस संघर्ष में लगा ही रहता है।

ब्रह्मराक्षस अतिरेकवादी पूर्णता प्राप्त करना चाहता है, वस्तुत: यह एक भ्रम ही है, उसे उपलब्ध करना असंभवप्राय है क्योंकि कोई पूर्णता होती ही नहीं, भ्रम-मात्र होती है। फिर भी ब्रह्मराक्षस उसके लिए प्रयत्नशील है। अतिरेकवादी पूर्णता की ये व्यथाएँ प्यारी इसीलिए है कि उनके पीछे उपलब्धि हेतु प्रयास है।

आत्मसंघर्षरत सत्यशोधक अर्थात ब्रह्मराक्षस के दिन-रात, जब वह मनुष्य-योनि में था, बडी बेचैनी से कटते थे। उसके प्रयत्नों का क्रम जारी है और सूर्य-चंद्र भी उसी तरह निकलते रहते हैं, जैसे की सदा निकलते हैं। लेकिन यह दौर ब्रह्मराक्षस के उत्साह का दौर नहीं है बल्कि उदासी और बेचैनी का दौर है। तभी तो दिन में जब सूर्य निकलता है, तो उसे लगता है कि चिंता की रक्तधारा प्रवाहित हो उठी है। रात में जब चंद्रमा उदित होता है तो उसे महसूस होता है कि उसकी किरणें उसके घावों और उसके उद्विग्न भाल पर सफेद पट्टियाँ बाँध देता है।

पूरे आकाश में फैले हुए तारें उसे गणित के दशमलव-बिंदुओं की तरह चारों ओर छितराए नजर आते थे। ...उन्हीं के मैदान में वह मारा गया। अब उस मैदान में उसकी लाश पडी है। मुक्तिकामी आत्मसंघर्ष में

ब्रह्मराक्षस की मौत का आशय उसके मुक्ति-प्रयत्नों का समाप्त हो जाना है। एक सत्यशोधक मारा गया, एक बुद्धिजीवी मारा गया। इसकी 'वक्ष-बाँहें खुली फैली हैं' अर्थात अपने मौत के समय भी उसकी अदम्य आकांक्षा मुक्ति की ही थी।

किसी के मौत के बाद मृतक के गुणों का पुनर्मुल्यांकन किया जाता है। आगे पुन: प्रासाद की सुनसान अकेली सीढियों का वर्णन हैं। प्रासाद में जीना व जीने में अकेली सीढियाँ थी, वाकई उन पर चढना बहुत मुश्किल था। कहने का आशय यह है कि वह अपनी वर्गीय सीमाओं में अकेला था और अकेले ही जूझ रहा था। वह सीढियाँ भाव-संगत, तर्क-संगत और कार्य सामंजस्य-योजित समीकरणों के गणित की सीढियाँ थी। वह कितना भाव संगत, तर्क संगत होकर कार्य-सामंजस्य-योजित हो सका, हम उसी पर छोड दें, पर यह सच है कि वह इन तीनों को उपलब्ध करने के लिए सभी पंडितों और चिंतकों के पास गुरू की खोज में लगातार भटकता रहा। लेकिन बदले हुए पूँजीवादी युग में उसे गुरू नहीं मिला।

पूँजीवादी युग में गुरू का मिलना संभव भी नहीं था क्योंकि इस व्यवस्था में हर कार्य के पीछे लाभ का उद्देश्य होता है। गुरू लोग अपनी कीर्ति का व्यवसाय करते हैं। ब्रह्मराक्षस विश्व-घटनाओं-संबंधों के प्रति अकृत्रिम रूप से चेतस अर्थात चेतनावान था। उसका व्यक्तित्व जीवनोन्मुखी था। किंतु आत्म-महत्ता न मिल पाने के कारण, अहं संतुष्ट न हो पाने के कारण उसका मन विषादाकूल भी था।

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी मन अन्य उच्चवर्गीय भौतिक सुविधाओं के अभाव में प्रसिद्धि, यश और महत्ता का घनघोर आकांक्षी होता है। कीर्ति-व्यवसायी ने उसकी इसी आकांक्षा का लाभ उठाया। कीर्ति दी, धन दिया, उसके ऱ्हदय-मन को धन-अभिभूत कर दिया, उसका सत्य उससे छीना और इस तरह मुक्ति से पहले, सत्य-प्राप्ति से पहले ही वह मारा गया। कवि कहते हैं कि मेरा उसी से यदि उन दिनों मिलन होता तो उसकी व्यथा स्वयं जीकर मैं उसे उसके स्वयं का मूल्य और उसकी महत्ता बताता। उस महत्ता का हम जैसों के लिए उपयोग और उस आंतरिकता का महत्त्व भी बताता। किंतु ब्रह्मराक्षस भीतरी आत्मसंघर्ष और बाहरी वस्तु-जगत् के दो कठिन पाटों के बीच पिस गया, ऐसी नीच ट्रेजेडी हुई।

ब्रह्मराक्षस बावडी में लगातार स्नान करता हुआ पागलपन भरे प्रतीकों के माध्यम से अपने दुखद अंत की ही कहानी कहता रहता है कि किस तरह वह अपने कमरे में ही सोच-विचार करता रहा ओर अंतत: समाप्त हो गया। उसका समाप्त होना या मरना किसी सघन झाडी के अँधेरे और कँटीले विवर में मरे हुए पक्षी की तरह लुप्त हो जाना है। वह अनजान ज्योति सदा के लिए सो गई, यह सवाल निर्माण करके कि यह क्यों हुआ! क्यों यह हुआ!! अंत में मुक्तिबोध ने बहुत ही मार्मिकता के साथ कहा है कि वे उस ब्रह्मराक्षस का शिष्य होना चाहते हैं। उसकी त्रासदी से द्रवित, जिससे कि वह जिस कार्य को अधूरा छोड गया है, उसे तर्कसंगत परिणति तक पहुँचा सकूँ।

1.3.6 'अंधेरे में' कविता का परिचय :

'अँधेरे में' कवि गजानन माधव मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता है जो उनके 'चाँद का मुंह टेढा है' काव्य संकलन में संकलित है। कवि ने इस कविता में हमारे देश की आजादी से पहले की स्थिति और आजादी के बाद की स्थिति का चित्रण किया है। यह कविता कवि की गहरी अनुभूति का परिचायक है। जिन स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया वे लोग स्वतंत्रता के पश्चात अंधेरे में खो गए। लेकिन वही लोग रोशनी में आ गए जो स्वार्थी और अवसरवादी थे। मुक्तिबोध जी ने इस कविता में मध्यवर्ग के उस आदमी का संघर्ष भी दिखाया है जो एक ओर तो सामाजिक अव्यवस्था और विकृतियों के विरूद्ध संघर्ष करता है तो दूसरी ओर अपनी सुविधाएं छोडने के लिए भी तैयार नहीं हैं। असल में वह एक ओर तो रक्तालोक पुरूष बनने का आकांक्षी है तो दूसरी ओर अपनी कमजोरियों से डरता भी है। मध्यवर्ग के इस व्यक्ति के द्वंदव को भी इस कविता में बडी सशक्तता के साथ चित्रित किया है। '

इस कविता में दो रक्तालोक स्नात पुरूष हैं-पहला वह जो जिंदगी के अंधेरे कमरों में चक्कर लगा रहा है और दूसरा वह जो तालाब की लहरों में अपना चेहरा देखता हुआ भीतर आने के लिए सांकल बजा रहा है। अंधकार की उस गहन गुफा में जो रक्तालोक स्नात पुरूष है, उसे कवि अपने उन विचारों का प्रतीक मानते हैं, जो अभी तक अभिव्यक्ति नहीं पा सके हैं। यहां अंधेरा सामाजिक अव्यवस्था, मानस पर छायी अमूर्त छायाओं तथा व्यक्तित्व की परतों पर बिछे स्याह कागज का प्रतीक है। कवि का मानना है कि कुछ लोग सिद्धांतवादी और आदर्शवादी तो होते हैं, किंतु जब उस सिद्धांत को अमली जामा पहनाने का अवसर आता है, तब वे पीछे हट जाते हैं।

इस कविता में 'वह' और 'मैं' के बीच आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया घटित होती है। व्यक्ति अपने आप को भूलकर 'वह' पाने के लिए भटक रहा है। 'मैं' सुविधाजीवी वृत्ति को त्याग नहीं पाता इसलिए वह रक्तालोक स्नात पुरूष से मिल नहीं पाता। 'मैं' को अपनी कमजोरियों से लगाव है किंतु साथ ही वह रक्तालोक स्नात पुरूष को छोडना भी नहीं चाहता। इसी द्वंदव में वह फँसा हुआ है। मुक्तिबोध ने रक्तालोक स्नात पुरूष को मानवीय संस्कृति के विकास हेतु संघर्षरत संस्कृति पुरूष का प्रतीक माना है।

मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' कविता आठ खंडों में विभक्त है। मुक्तिबोध के अनुसार जिंदगी का अंधेरा कमरा अवचेतन है जहां अनेक प्रकार की आकांक्षाएँ सोई रहती हैं जो अवसर पाकर जाग उठती है। कवि ने अपनी मनोगत विवशताओं को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं जिन्हें कवि बाहर के दबावों के कारण अभिव्यक्ति नहीं दे पाता।

1.3.7 'अंधेरे में' कविता का आशय :

'अँधेरे में' कविता की प्रारंभिक पंक्तियों में कवि ने अपने अंतर्मन में उमडती आशंकाओं एवं भाव छवियों का चित्रण किया है। कवि कहता हैं कि मुझे हमेशा ऐसा लगता है कि मेरे जीवन के उस अँधेरे कमरे में कोई लगातार चहलकदमी कर रहा है। उसके पैरों की आवाज तो मुझे सुनाई दे रही है किंतु वह दिखाई नहीं पड रहा है। न जाने वह कौन है जो उस अँधेरी तिलस्मी रहस्यमय गुफा में कैद है? दीवार के उस पार से आवाज तो आ रही है लेकिन वह आवाज किस गहन रहस्यपूर्ण अंधकार से आ रही है इसका पता नहीं लग रहा है। कोई है जो अपनी आवाज के माध्यम से अपने अस्तित्व का बोध करा रहा है।

कवि आगे कहता है कि नगर के बाहर एक तालाब है। वहा अचानक ही वृक्षों के अँधेरे में छिपी हुई एक रहस्यमय तिलस्मी गुफा का पत्थर से ढका दरवाजा खुलता है और उसके भीतर छाए हुए गहन अंधकार में एक लाल प्रज्वलित मशाल प्रवेश करती है। गुफा में लाल कोहरा छाया है और सामने एक लाल प्रकाश में नहाया हुआ पुरूष खडा है। उस रक्तालोक स्नात पुरूष का रहस्य समझ नहीं आ रहा। अंधकार की उस गहन गुफा में जो रक्तालोक स्नात पुरूष है, उसे कवि अपने उन विचारों का प्रतीक मानता है, जो अभी तक अभिव्यक्ति नहीं पा सके हैं।

कवि ने यहा अपनी विवशता को अनेक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि के अंतर्मन में बहुत सारे विचार उत्पन्न होते है। इन क्रांतिकारी विचारों को वह बाहर के दबावों के कारण अभिव्यक्ति नहीं दे पाता। कवि कहता है कि क्रांति तभी संभव है जब हम अपनी सुख-सुविधाओं को छोडने के लिए तैयार हों। यदि हम अपनी सुख-सुविधाओं के मोह में पडे रहेंगे तो क्रांति की जलती हुई मशाल बुझ जाएगी।

वैचारिक अभिव्यक्ति जब तक पूर्णता नहीं पाती तब तक व्यक्ति तनाव में जीता है। व्यक्ति की अंतरात्मा ही रक्तालोक स्नात पुरूष है जिसकी छाती घायल है। हमारी आत्मा रोज घायल होती है। उसे हमने कैद कर रखा है फिर भी उसकी शक्तिमत्ता इतनी प्रबल है कि वह इन मुसीबतों में भी जीवित रहती है। बाहरी दबावों के कारण हम वह नहीं कर पाते जो हमारी अंतरात्मा की आवाज होती है। इसी को आत्मा का मरना कहा गया है।

आम लोगों का शोषण देखकर कवि के मन में संघर्ष छिड जाता है। उन्हें दिखाई देता था उन स्वार्थी लोगों का वह घृणित और कुत्सित चेहरा जो हर घर, दफ्तर एवं कार्यालय में लोगों का शोषण करता है। शोषक व्यक्तियों के क्रियाकलापों को देखने के बाद मन में बननेवाले सुखद भविष्य के स्वप्न चकनाचुर हो गए हैं। कवि कहता है कि मेरा स्वप्नभंग हो गया है। मुझे उस नगर के लोगों की मृत आत्माएँ शरीर धारण किए हुए दिखाई देने लगी है। मैं उन स्वार्थी और षडयंत्रकारी लोगों की वास्तविकता से परिचित हो गया हूँ इसलिए उनकी दृष्टि में दंड का पात्र हूँ। मैंने उनकी नग्न वास्तविकता को देखा है और इसकी सजा वे मुझे किसी-न किसी रूप में अवश्य देंगे।

कवि का मानना है कि कुछ लोग आदर्शवादी और सिद्धांतवादी होते हैं किंतु जब उन आदर्श और सिद्धातों को कार्य रूप में परिणत करने का अवसर आता है, तब पीछे हट जाते हैं। इसी कारण वह अपने

जीवन में कोई भी उल्लेखनीय कार्य नहीं कर पाते। उन्होंने कभी दूसरों के दुख को अनुभूत नहीं किया। स्वार्थी और विकृत मानसिकता से युक्त होकर स्वार्थी व्यक्तियों के आगे बिस्तर से बिछ गए तथा व्यभिचारियों का साथ दिया।

कवि उन लोगों के बारे में कहता है कि कभी तुमने दूसरों के बारे में सोचा ही नहीं। तुम अपने ही विचारों में डूबे रहे और तुम्हारी जिंदगी निष्प्राण, निष्क्रिय एवं चेतना विहिन बनकर रह गई। तुम्हारा अब तक का जीवन व्यर्थ हो गया। दूसरों के दुख ने तुम्हारे हृदय को कभी द्रवित नहीं किया। तुम आदर्शों और सिद्धातों का लबादा ओढे रहे, लेकिन उसके अनुरूप जीवन कभी नहीं जिया। यह भी कोई जिंदगी है जिसमें व्यक्ति निष्क्रय होकर अपने जीवन को उस तहखाने सा बना लेता है, जो सबसे कटा रहता है और अँधेरे में पडा रहता है।

तुमने इस संसार से बहुत कुछ लिया है, पर बदले में अपना कुछ भी योगदान नहीं दिया है। तुम केवल लेते ही रहे, देने के नाम पर पीछे हट गए। तुम्हारे जैसे स्वार्थी और संवेदनाहीन लोगों के कारण ही यह देश मर गया और तुम जीवित रह गए। स्वार्थकेंद्रीत आत्मवृत्ति ने तुम्हारी मानवता को नष्ट कर दिया है। यहा कवि ने स्वार्थी लोगों को देश के बिगडते हालात का मूल कारण माना है।

कवि का मानना है कि हमारे अंतर्मन में अनेक भाव रत्न बिखरे पडे हैं और वे बहुमूल्य हैं। इन भाव रत्नों से निकलनेवाली झिलमिलाती किरणें उन्हें रंगबिरंगी एवं आकर्षक बनाती है जिनके प्रकाश से अंतर्मन की दीवारें भी झिलमिलाने लगती है। मुझे लगता है कि वे भाव रत्न ऐसी सुंदर मणियाँ हैं जिनका उपयोग अभी तक नहीं किया है। कवि इन भाव रत्नों को अनुभव, वेदना, करूणा, विवेक आदि नए नाम देता है, जिनका उपयोग हमने अभी तक नहीं किया है।

कवि आगे कहता है कि विचारों में दहकती हुई अग्नि जैसी क्रांतिकारी शक्ति होती है लेकिन विचारों की शक्ति से अभी तक हम कोई लाभ नहीं उठा सके। गहरे अँधेरे अतल में छिपे पडे इन मणि रत्नों को निकालकर मनुष्य को अपने जीवन एवं मानवता को सार्थक बनाना चाहिए। यह मणियाँ क्रांति का प्रतीक है जिसका उपयोग जन-सामान्य के कल्याण हेतु किया जाना चाहिए। मनुष्य के अतल में पडी यह क्रांति की मणि निष्क्रिय हो गई है इसीलिए उसमें हलचल नहीं दिखाई दे रही है।

वस्तुत: व्यक्ति की एकांत चेतना अपने को अकेला पाकर कुछ करने में असमर्थ रहती है। उसे सामुहिकता की तलाश रहती है। वह सब का सहयोग लेकर मानवता के कल्याण में इन मणि रत्नों का उपयोग करना चाहता है। भाव यह है कि हमें अपने मन के गहन अंधकार में जगमगाते हुए भाव रत्नों का उपयोग मानव कल्याण के लिए करना है। लाल रंग की मणियाँ क्रांति का प्रतीक है। यह क्रांति की भावना अंतर्मन में दबकर निष्क्रिय हो गई है।

कवि को लगता है कि हमारे जीवन मूल्य और आदर्शो की अवहेलना हो रही है। तिलक और गांधी के विचारों एवं आदर्शो का पालन करनेवाले लोग आज नहीं रहे और कवि को इस बात का दुख है। कवि तिलक की मूर्ति के सामने खडे होकर सोचता है और उन्हें लगता है कि तिलक के विचार, आदर्श और

सिद्धांत अब रेत के ढेर में बदलते जा रहे हैं। यह सामान्य जनता अत्यंत शक्तिशाली है, किंतु उन्हें अपनी शक्ति का एहसास करानेवाले नेतृत्व की आवश्यकता है। देश का भविष्य इन सामान्य लोगों के एकसूत्र में बंधने के बाद ही निखरना संभव है।

उसके पश्चात कवि गांधी की प्रतिमा के सामने खडा होकर आशा भरी दृष्टि से उन्हें देखने लगता है। उसे लगता है मानो गांधी जी कह रहे हैं कि यह देश कुडे का ढेर नहीं है जिस पर दाना चुगने के लिए कोई भी मुर्गा चढकर बांग देने लगे और मसीहा बन जाए। अर्थात गांधी जी कहना चाहते हैं कि, आज के नेताओं का व्यवहार इन मुर्गों के समान है जो सिर्फ नारे देकर समाज के मसीहा बनना चाहते हैं। पर ये नहीं जानते कि जनता के दुख-दर्द को समझकर तथा लोक कल्याणकारी कार्यों के माध्यम से ही राष्ट्र के नेता बना जा सकता है। कवि को लगा कि तिलक और गांधी जी के कथन में गंभीरता है। उनके शब्दों में शक्ति का अपार स्रोत है। पता नहीं वे शब्द मेरे अंतर्मन में प्रविष्ट होकर क्या भाव व्यक्त करने लगे। उनके शब्दों पर विचार करते करते मैं उद्विग्न हो गया।

आगे कवि स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद की स्थिति का निरूपन करते हुए कहते हैं कि महात्मा गांधी जी ने अपने नेतृत्व में स्वतंत्रता रूपी शिशु को जन्म दिया और उस शिशु को वर्तमान पीढी के कंधों पर सौंप दिया। लोगों को बडी आशा थी उस नवजात स्वतंत्रता शिशु से, किंतु वह नवजात शिशु उन कंधों पर कुछ देर रोता रहा और फिर लुप्त हो गया। अर्थात वर्तमान पीढी उस स्वतंत्रता के बोझ को झेल न सकी और स्वतंत्रता का सुख लोगों को मिल न पाया। पता नहीं वह स्वतंत्रता इस भयावह अंधकार में कहां विलीन हो गई। स्वतंत्रता के बाद भी लोगों के जीवन में कोई विशेष बदलाव नहीं आया। इस स्वतंत्रता से जनता का मोहभंग ही हुआ।

कवि कहता है कि अब इस स्वतंत्रता शिशु के स्थान पर कुछ सूरजमुखी के फूल शेष बचे हैं। उन सुनहरे पुष्पों से विकीर्ण होता प्रकाश मेरे कंधों पर, सिर पर, गालों पर सर्वत्र बिखरा है। जिस मार्ग पर वह चल रहा है वह भी इसी स्वर्णिम प्रकाश से आलोकित हो रहा है। उसे यह परिवर्तन सुखद लगता है और प्रसन्न होकर वह वाह वाह करता है। इतने में ही एक गली आ गई जिसमें एक घर का दरवाजा खुला हुआ था। उसमें एक जीना था और अंधकार से भरा था। केवल एक छोटी सी ढिबरी उसमें जल रही थी। कवि उसी प्रकाश के सहारे आगे बढने लगा कि कंधें पर जो सूरजमुखी के गुच्छे थे, वे भी कहीं गायब हो गए। फिर भी कवि का कंधा असहय बोझ से दबा सा लग रहा था।

यहा सूरजमुखी के पुष्प प्रकाश के प्रतीक हैं जो यह बताते हैं कि इस स्वतंत्रता ने हमें प्रकाश तो दिया, किंतु अभी भी गरीब आदमी का घर निराशा के अंधकार से भरा हुआ है। गांधी जी के महत् प्रयासों से उसके जीवन के अँधेरे में आशा की एक किरण चमका रहे हैं, किंतु आज के स्वार्थ केंद्रीत समाज में उनके लुप्त होने की संभावना पनपने लगी है। सच तो यह है कि हम स्वतंत्र भले ही हो गए हों, किंतु दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के उस उत्तरदायित्व को वहन करने लायक मजबूत कंधें अभी भी हमारे पास नहीं है।

स्वतंत्रता के प्रति मोहभंग की स्थिति के कारण सर्वत्र निराशा और मायुसी छायी हुई है। इसी कारण कवि कहता है कि अब परिस्थितियाँ ऐसी बन रही है कि समाज के पुर्ननिर्माण के लिए अब अभिव्यक्ति पर लगे अंकुश को हठाकर अभिव्यक्ति का खतरा उठाना होगा। अब समय आ गया है कि अब हमें क्रांतिकारी विचारों को वाणी देनी ही होगी। मठाधीशों एवं किलेदारों ने अपनी स्थिति चाहे जितनी सुरक्षित कर ली हो, किंतु क्रांति के आगे सब झुक जाएंगे।

क्रांति के मार्ग में खतरे तो है, किंतु उन खतरों को झेलते हुए हमें आगे बढना होगा। सभी प्रतिरोधक शक्तियों को नष्ट करके ही जन क्रांति की जा सकती है और उसी के माध्यम से मानवता का कल्याण किया जा सकता है। क्रांति का आह्वान करने पर ही हमें वे बाहें अपने स्वागत में फैली दिखाई देंगी जिनमें बहुत कुछ करने का साहस होता है। लाल कमल क्रांति का प्रतीक है जिसे हाथ में लेकर हमें विषमताओं की बर्फ को पिघलाना होगा।

समाज में नए आंदोलन का माहौल बनता नजर आ रहा है। जनता नए विचारों से युक्त हो रही है। इन क्रांतिकारी विचारों के माध्यम से ही बर्फ जमीं उस झील में चाँद का प्रतिबिंब देखा जा सकेगा। कवि को विश्वास है कि भारत के भाग्याकाश पर नया चाँद उदित होगा। आकाश के चीरों सी दिखाई पडती लंबी गलियों में भी अब चंद्रमा की किरणें पडकर अपना प्रकाश फैला रही है। हमारी कल्पनाएँ प्रत्यक्ष रूप धारण करने के कई संकेत मिल रहे हैं। मकानों के बडे-बडे खंडहरों में सूने मटियाले भाग में रातरानी खिलकर महक रही है। अर्थात कवि कहना चाहता है कि अब हमें लज्जा एवं भय त्यागकर क्रांतिदर्शी बनना होगा, तभी समाज का विकास होगा।

कवि बुद्धिजीवियों पर नाराज है। जिन लोगों ने आगे आकर समाज में फैली विषमता और अनाचार का विरोध करना चाहिए था वही पूंजीपतियों के दास बनकर बैठे देखकर कवि का मन विक्षुब्ध हुआ है। कवि कहता है कि आज चारों ओर सारे वातावरण में विषमता फैली हुई है। अन्याय, अत्याचार और शोषण सर्वत्र व्याप्त है, किंतु हमारे बुद्धिजीवी वर्ग में इसका विरोध करने का साहस नहीं है। बौद्धिक वर्ग व्यवस्था का गुलाम बनकर जी रहा है। समाज का कोई भी वर्ग इसका विरोध करने की हिम्मत नहीं दिखा रहा है। नपुंसक की तरह अन्याय, अत्याचार को चुपचाप सहन कर रहा है।

बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति निराशा व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि, हमारा बुद्धिजीवी वर्ग मौन साध बैठा है। साहित्यकार चुप है, कविजन निर्वाक् है, उनके मुख से आवाज तक नहीं निकल रही है। समाज को मार्गदर्शन करनेवाले चिंतक एवं मनीषी शांत होकर बैठे हैं। कलाकार भी अपना कर्तव्य भूल गए हैं। कलाकारों ने अपनी कला के माध्यम से परिवेश में फैल रही विषमताओं को अभिव्यक्ति देनी चाहिए, किंतु दुर्भाग्य से वे सब चुप है। कहीं आग लगी हो, गोली चल रही हो, किंतु बुद्धिजीवी को इससे कोई फर्क नहीं पडता। जनता की समस्याओं से उनका कोई जुडाव ही नहीं है।

कवि का मानना है कि समाचार पत्र सामाजिक चेतना का प्रभावी माध्यम होते हैं, किंतु आज समाचार पत्र भी अपना उत्तरदायित्व भूल रहे है। इतना ही नहीं तो समाचार पत्रों के मालिक ही स्वयं पूंजीपति है जो भव्य भवनों में सुरक्षित रहना पसंद करते हैं। संवाद गढे जा रहे हैं, बुद्धिजीवी वर्ग के द्वारा इन घटनाओं के

बारे में टिप्पणियां लोगों के ह्रदय में शूल की तरह चुभ रही है। आज स्थिति इतनी भयावह बनती जा रही है कि बौद्धिक वर्ग को धन से खरीदा जा रहा है। वह पूंजीपतियों का खरीदा हुआ गुलाम बन गया है। उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं रह गया है। उसके पास न भैतिक विचार है, न मौलिक चिंतन। वह किराए के विचार व्यक्त कर रहा है। वह चेतनाशून्य बन गया है। जनता की उनके प्रति जो श्रद्धा थी वह गंदी नदियों में बही जा रही है।

1.3. स्वयं अध्ययन के प्रश्न :

1. कवि गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म..........ग्राम में हुआ।

   1. गाजीपुर 2. बनारस 3. श्योपुर 4. कसौदा

2. 'तार सप्तक' का प्रकाशन ....के संपादकत्व में हुआ।

   1. मुक्तिबोध 2. अज्ञेय
   3. सुमित्रानंदन पंत 4. शमशेर बहादुर सिंह

3. ' फैंटेसी' शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द .... से हुई है।

   1. फैण्टशि 2. फैंटी 3. फैंटीमा 4. फैंटशिया

4. 'ब्रह्मराक्षस' कविता मुक्तिबोध के ....संग्रह में संकलित है।

   1. चाँद का मुंह टेढा है 2. अंधेरे में
   3. लकडी का रावण 4. भूरी-भूरी खाक धूल

5. 'ब्रह्मराक्षस' का अर्थ ....है।

   1. ब्रह्मतत्त्व 2. ब्राह्मी 3. ब्रह्मपुत्रा 4. ब्रह्मपिशाच

6. 'ब्रह्मराक्षस' ....का प्रतीक है।

   1. प्रशासक 2. बुद्धिजीवी 3. पशू 4. अनाथ

7. 'ब्रह्मराक्षस' ....जगह रहता है।

   1. हवेली 2. आसमान 3. बावडी 4. पहाड

8. पेड की डालों से .... के भूरे और गोल घोंसले लटक रहे हैं।

   1. गिद्ध 2. उल्लु 3. मोर 4. कौआ

9. बावडी के जल में ब्रह्मराक्षस अनवरत .... है।

   1. हँसता 2. नहाता 3. अध्ययन करता 4. दौडता

10. ब्रह्मराक्षस को लगता है कि सूर्य ने उसे झूककर ....किया।

1.नमस्ते 2. परेशान 3. क्रोधित 4. विनोद

11. पूँजीवादी युग में ....का मिलना असंभव है।

1. नोकर 2. प्रतिभा 3. शिष्य 4. गुरू

12. ब्रह्मराक्षस का मरना किसी सघन झाडी के अँधेरे और कँटिले विवर में मरे हुए ....की तरह लुप्त हो जाना है।

1.जानवर 2. पक्षी 3. साँप 4. इंसान

13. 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता सन् ....में लिखी गई है।

1. 1947 २. 1949 3. 1953 4. 1955

14. 'चाँद का मुँह टेढा है' ....कविता संग्रह की कविता है।

1. भूरी-भूरी खाक धूल 2. 'चाँद का मुँह टेढा है'

3. लकडी का रावण 4. ब्रह्मराक्षस

15. सेक्स के कष्टों के कवियों के काम-सी.......में मशहूर रात की है जिंदगी।

1. लंडन 2. ओमन 3. फिजी 4. किंग्सवें

16. 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता में ....हडताल का चित्रण है।

1. अध्यापक 2. मजदूर 3. सांसद 4. महिला

17. 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता में 'चाँद' ....व्यवस्था के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

1. शिक्षा 2. पूँजीवादी 3. शासक 4. प्रगतीवादी

18. 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता में ....गली का चित्रण हुआ है।

1. हरिजन 2. अध्यापक 3. सरकारी 4. लंबी

19 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता में ....बस्तियों का चित्रण हुआ है।

1. अमिरों की 2. मजदूर

3. अध्यापक 4. मुस्लिम

20. गली के मोड पर खडे घनघोर गठियल शाखोंवाले ....का वर्णन है।

1. बरगद 2. ईमली 3. (बबुल) 4. पीपल

21 गलियों के चौराहे पर खडे ....का सिंदूरी अस्तित्व है।

1. गणेश 2. भैरों 3. हनुमान 4. भैरोबा

22. ....की चट्टानी पीठ पर पोस्टर चिपकाए गए।

1. भैरों 2. लकडी 3. हनुमान 4. पत्थर

23. तजुर्बो का ताबूत ....है।

1.भैरों 2. गली 3. चाँद 4. बरगद

24. पोस्टर लगाने की हलचलों के कारण बरगद में पले हुए पंक्षियों की फडफड हुई और इस फडफड से एक .... चौकन्नी हुई।

1. गाय 2. मोरनी 3. बिल्ली 4. कुतिया

25. गांधी और तिलक के पुतले पर दो ....बैठे हुए हैं।

1.मोर 2. कौए 3. बाज 4. घुग्घु

26. अंधियाले ताल के पास नगर को निहारने वाला एक पहाड खडा है, जिसका नाम ....है।

1. लोहांगी 2. पितांबी 3. भैरों 4. कालाटोप

1.4. पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ।

कुहरीला : कुहरे से युक्त

स्याह : स्याही की तरह काला

अचेतन : चेतना रहित

निज संभावनाएँ : स्वयं के लिए मुमकिन स्थितियाँ

साँकल : जंजीर

चट्टानी : बडे पत्थर जैसी

मृतात्मा : मृत व्यक्ति की आत्मा

पथराए : पत्थर जैसे भावहीन, कठोर

अवचेतन : गहरे अंतर्मन में स्थित चेतना

आँत : आँतडियाँ

बीट : पंछियों का मैला

धुतिमान : प्रकाशमान

संगर : संघर्ष

शत दल कोश : सौ पंखुडियों का कोश

निज आलोक : स्वयं प्रकाश

1.5 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1 श्योपुर	2. अज्ञेय	3. फॅण्टशिया	4. चाँद का मुंह टेढा है
5. ब्रह्मपिशाच	6. बुद्धिजीवी	7. बावडी	8. उल्लु
9. नहाता	10. नमस्ते	11. गुरू	12. पक्षी
13. 1953	14. ‘चाँद का मुँह टेढा है’		15. किंग्सवें
16. मजदूर	17. पूँजीवादी	18. हरिजन	19. मजदूर
20. बरगद	21. भैरो	22. भैरो	23. बरगद
24. बिल्ली	25. घुग्घु	26. लोहांगी	

1.6 सारांश :

1. ‘चाँद का मुँह टेढा है’ सन् 1953 अर्थात आजादी के बाद की कविता है। मुक्तिबोध प्रगतिवादी विचारधारा के कवि होने के कारण स्वाभाविक रूप में इस कविता में तत्कालीन राजनीतिक पृष्ठभूमी, आजादी के बाद की मोहभंग की स्थितियाँ, देश के वातावरण में व्याप्त आतंक और संत्रास को उन्होंने चित्रित किया है। अत्याचार और शोषण के विरूद्ध षडयंत्र की एक रात का चित्रण कविता में अंकित हुआ है। कवि ने यहाँ सौंदर्य के परंपरागत प्रतीकों को नकार दिया है और इसी कारण यहाँ चाँद का मुंह टेढा है।

2. कवि ने ‘बरगद का पेड’ तथा ‘भैरों की मूर्ति’ को प्रतीक रूप में चित्रित कर भय और विस्मय के वातावरण की सृष्टि की है। कविता में कवि ने चाँदनी के लिए संदर्भों के अनुसार अलग–अलग उपमाओं का प्रयोग किया है। जेल के कपडे–सी फैली, सफेद अंडरवियर–सी, तिमंजिले की एक खिडकी में बिल्ली के सफेद धब्बे–सी चमकती, मछलियाँ फँसाती आवारा मछुआरों–सी, शोहदों सी चाँदनी आदि। कवि ने रात

की काली करतूतों पर गांधी तथा तिलक के माध्यम से संभाषण द्वारा करारा व्यंग्य किया है। रात्रि के अंधकार में जो काले धंधे और अवैध व्यापार चलते हैं, वे ही हमारी वर्तमान संस्कृति के प्रतीक बन गए हैं, जिसके विरूद्ध संघर्ष की बात को वाणी मिली है।

3. चंद्रमा मुक्तिबोध की अन्य कविताओं की तरह ही इस कविता में भी वर्तमान पतनशील पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। कविता में दो पक्ष स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। एक पक्ष है- मीनारों वाले कारखानें, चंद्रमा और उसके जासूस चाँदनी का तो दूसरा पक्ष है-नाले के उस पार बसी हरिजन बस्ती, बरगद का पेड और भैरों का। यह कविता इन दोनों पक्षों के वर्गीय संघर्ष की कविता है।

4. चंद्रमा वर्ग का फुसफुसाता षड्यंत्र चलता रहता है और गलियों में हडताली पोस्टरों की संघर्ष गाथा जारी रहती है। पोस्टर और उसमें छपे हडताली अक्षरों के प्रति मुक्तिबोध का लगाव उनकी वर्गीय पक्षधरता की सहज रागात्मक अभिव्यक्ति है।

5. मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता में ब्रह्मराक्षस को मध्यवर्ग की बौद्धिक चेतना का प्रतीक माना है। इसी चेतना के लिए वह छटपटाता है। जीवनभर जो ज्ञान वह अर्जित करता है उसी से अपनी मुक्ति का पथ खोजता है। यहाँ मुक्तिबोध हमें यह संकेत देते हैं कि व्यक्ति प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक नहीं बना पाता परिणामस्वरूप भटकता रहता है और कुण्ठा तथा निराशा का शिकार हो जाता है। इस कविता का केंद्रीय स्वर ब्रह्मराक्षस नहीं मुक्तिबोध की समय और समाज द्वारा की गई उपेक्षा है और इस तरह आम आदमी की उपेक्षा भी है और उसके अस्तित्व का अपमान भी।

6. कवि ने ब्रह्मराक्षस के प्रतीक रूप में एक अतिशय ज्ञानी के आत्मसंघर्ष, उलझन, भटकाव एवं अथिर मानसिक स्थिति को रूपायित किया है। हिंदी में फैंटेसी को स्थापित करनवाले प्रख्यात कवि मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता भी 'अंधेरे में' की तरह ही एक उत्कृष्ट फैंटेसी है पर इसका आकार उसकी तुलना में छोटा है। जो ब्रह्मराक्षस इस कविता का मुख्य अभिप्रेत है वह अपने पूर्व मानव योनि में एक महत्वाकांक्षी प्रकांड विद्वान था किंतु उस आत्मचेता को यथार्थ महत्त्व नहीं मिला और प्राणों से उसकी अनबन हो गई। आत्म-चेतना को विश्व-चेतना बनाने की अभिलाषा में अपने विराट व्यक्तित्व को लेकर सच्चे गुरू की तलाश में वह भटका पर उसे गुरू नहीं मिला और अतृप्त आत्मा ब्रह्मराक्षस बन गई।

7. खंडहर और बावडी के वर्णन द्वारा कवि ने एक रहस्यमय वातावरण का सृजन किया है, जो प्रेत-कथा का एक आवश्यक अंग है। बावडी के अंदर से गूँज और अनुगूंज ध्वनित होती है। कुछ पागल के प्रलाप जैसे स्वर उठते हैं। ब्रह्मराक्षस बावडी के जल से मैल और पाप- छाया को धोना चाहता है, पर मैल निकलता ही नहीं। कविता के दूसरे भाग में मुक्तिबोध एक निराले अभ्यंतर लोक के सांवले जीने की अंधेरी सीढियों की परिकल्पना करते हैं। आभ्यंतर लोक से लगता है कि यह ब्रह्मराक्षस के मानव जीवन से संबंधित उसका निज व्यक्तित्व है। अपने विराट ज्ञान-प्रासाद रूपी व्यक्तित्व की सीढियों पर चढते-उतरते वह कई बार गिरा।

8. अपने मानव जीवन में ब्रह्मराक्षस ने अच्छे और बुरे के बीच का संघर्ष, अच्छे और अधिक अच्छे के बीच का युद्ध, नाममात्रिक सफलता और बडी असफलता के अंतराल का जो व्यापक अध्ययन किया उससे वह लहुलुहान ही हुआ। 'ब्रह्मराक्षस' मानव मन के विवेकहीन, रहस्यपूर्ण सत्ता के दूसरे पक्ष को उजागर करनेवाली, जीवन के उच्च और जटिल सत्यों की खोज करनेवाली कविता है।

9. 'अंधेरे में' कविता में व्यक्ति-मानस के यथार्थ और उसके अतंद्वद्व को वाणी दी गई है। मुक्तिबोध का व्यक्तित्व और काव्य-वैशिष्ट इस कविता में एकाकार हुआ है। मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में उपमा, रूपक, अलंकार, बिंब, प्रतीक एक साथ मिलकर फैंटेसी का रूप लेकर प्रयुक्त हुए हैं। मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ परंपरागत लंबी कविताओं से काफी अलग हैं। क्योंकि वे न तो किसी केंद्रीय भाव पर आधारित है और न उसमें किसी स्पष्ट कथानक का आभास मिलता है। आगे चलकर कविता जटिल और अस्पष्ट होकर बिखर जाती है जिससे कविता के सूत्र को पकडे रहना कठिन हो जाता है। अंत तक आते-आते यह कविता विचारों और बिंबों के विभन्न टुकडों में बँट जाती है।

10. मुक्तिबोध अपनी कविताओं के माध्यम से मानव-मात्र के समानता के तथ्य को रेखांकित कर धनिक-पूँजीपति-शोषक वर्ग के मस्तिष्क में इस तथ्य को प्रतिबिंबित करना चाहते हैं कि मनुष्य-मनुष्य में कोई अंतर नहीं है। प्रस्तुत कविताओं में ऐसी फेंटेसी युक्त चित्रात्मकता है जिसमें यथार्थ बिंबों के कारण कथ्य के प्रति विश्वसनीयता बनती है और कल्पनाजन्य प्रतीक बिंबों से काव्यात्मक गरिमा बढती है। उनकी कविताओं में सर्वथा मौलिक एवं नवीन बिंबों एवं प्रतीकों का इस्तेमाल हुआ है।

1.7 स्वाध्याय :

अ. ससंदर्भ के लिए प्रश्न :

'ब्रह्मराक्षस'

1. ''शहर के उस ओर खँडहर की तरफ, परित्यक्त सूनी बावडी, के भीतर

ठंडे अँधेरे में, बसी गहराईयाँ जल की, सीढियाँ डूबी अनेकों, उस पुराने घिरे पानी में ...

बावडी को घेर, डालें खून उलझी हैं, खडे हैं मौन औदुंबर।

व शाखों पर, लटकते घुग्घुओं के घोंसले, परित्यक्त, भूरे, गोल।''

संदर्भ :

प्रस्तुत कवितांश गजानन माधव मुक्तिबोध की लंबी कविता 'ब्रह्मराक्षस' से उद्धृत किया गया है। यह कविता मुक्तिबोध के मरणोपरांत प्रकाशित काव्यकृति 'चाँद का मुँह टेढा है' में संकलित है। यह कविता एक प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के आत्मसंघर्ष और वैचारिक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाने की हताशा को

मिथकीय फैंटेसी में चरितार्थ करती है। प्रस्तुत कवितांश में नगर के एक तरफ खंडहर के समीप स्थित निर्जन बावडी का चित्र खिंचा गया है।

व्याख्या :

कवि बावडी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नगर के एक तरफ जो खंडहर है, उसके समीप एक निर्जन बावडी है। यह बावडी बहुत गहरी है और इसके भीतर ठंडक और अंधकार है। इसके गहरे पानी में इसकी सीढियाँ डूबी हुई है। यह गहराई समझ से परे है, लेकिन इसका आभास मिल जाता है। बावडी को घेर कर गूलर के पेड खडे हैं। इन पेडों ने मौन धारण कर रखा है और इनकी उलझी हुई शाखाओं पर घुग्घुओं द्वारा छोड दिए गए गोल और भूरे घोंसले लटके हुए हैं।

विशेष :

1. कवि मुक्तिबोध परित्यक्त और निर्जन बावडी के माध्यम से भय का वातावरण उत्पन्न करते हैं। यह भय का वातावरण आधुनिक समाज के भय को व्यंजित करता है।

2. 'खडे हैं और औदुंबर' में मानवीकरण है।

   1. ''बावडी की इन मुँडेरों पर, मनोहर हरी कुहनी टेक
      बैठी है टगर, ले पुष्प-तारे-श्वेत।''

   2. ''बावडी की उन घनी गहराईयों में शून्य, ब्रह्मराक्षस एक पैठा है,
      व भीतर से उमडती गूँज की भी गूँज, बडबडाहट शब्द पागल से।''

   3. ''गहन अनुमानिता, तन की मलिनता दूर करने के लिए प्रतिपल
      पाप-छाया दूर करने के लिए, दिन-रात,स्वच्छ करने -
      ब्रह्मराक्षस घिस रहा है देह''

   4. ''किंतु, गहरी बावडी की भीतरी दीवार पर तिरछी गिरी रवि-रश्मि
      के उडते हुए परमाणु, जब तल तक पहुँचते हैं कभी

      तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने झुककर 'नमस्ते' कर दिया। ''

   5. ''बुरे-अच्छे-बीच के संघर्ष, से भी उग्रतर
      अच्छे व उससे अधिक अच्छे, बीच का संगर गहन किंचित सफलता,
      अति भव्य असफलता!!..अतिरेकवादी पूर्णता
      की ये व्यथाएँ बहुत प्यारी हैं...''

   6. ''उस भाव-तर्क व कार्य-सामंजस्य-योजन, शोध में
      सब पंडितों, सब चिंतकों के पास वह गुरू प्राप्त करने के लिए भटका!!''

7. ''किंतु युग बदला व आया कीर्ति-व्यवसायी, लाभकारी कार्य में से धन,
व धन में से ऱ्हदय-मन, और, धन-अभिभूत अंतकरण में से

ब) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. कवि मुक्तिबोध के व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता का आशय अपने शब्दों में लिखिए
3. 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता के 'चाँद' की प्रतीकात्मकता समझाइए।
4. 'चाँद का मुँह टेढा है' कविता की फॅण्टेसी को समझाइए।
5. 'ब्रह्मराक्षस' कविता का आशय स्पष्ट कीजिए।
6. 'ब्रह्मराक्षस' कविता की फैंटेसी को समझाइए।
7. 'अंधेरे में' कविता का आशय अपने शब्दों में लिखिए
8. 'अंधेरे में'कविता की प्रतीकात्मकता समझाइए।

1.8 क्षेत्रीय कार्य :

1. लंबी कविताओं की सूची बनाकर लंबी कविता के तत्वों को जानने का प्रयास करें।
2. हिंदी और मराठी की लंबी कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास करें।
3 'चाँद का मुँह टेढा है', 'ब्रह्मराक्षस' तथा 'अंधेरे में' कविता पर लघुनाटिका लिखने का प्रयास करे।
4. मुक्तिबोध की कविताओं की फैंटेसी को समझ लिजिए।

1.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. मुक्तिबोध की तीन लंबी कविताएँ - नीलकांत
2. तारसप्तक - संपादक अज्ञेय
3. कविता के नए प्रतिमान - डॉ. नामवर सिंह

4. मुक्तिबोध एवं नागार्जुन का काव्यदर्शन – डॉ. प्रभा दीक्षित

5. मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना – डॉ. नंदकिशोर नवल

6. मुक्तिबोध : कवि, छवि – डॉ. नंदकिशोर नवल

7 मुक्तिबोध : प्रतिबद्ध कला के प्रतीक – चंचल चौहान

8. प्रतिबद्धता और मुक्तिबोध का काव्य – प्रभात त्रिपाठी

9. 'चाँद का मुँह टेढा है' (काव्य संग्रह) – संपादक श्रीकांत वर्मा

10. मुक्तिबोध का काव्यसौष्ठव– डॉ. शंकर मुदगल

11. मुक्तिबोध – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

❑❑❑

इकाई 2

पाठ्यपुस्तक – संसद से सडक तक 'कल सुनना मुझे' – धूमिल

(नक्सलबाड़ी, मोचीराम, अकाल दर्शन, रोटी और संसद)

अनुक्रम–

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय विवरण

2.3.1 धूमिल का परिचय

2.3.2 'नक्सलबाड़ी' कविता का परिचय

2.3.3 'नक्सलबाड़ी कविता का आशय

2.3.4 'मोचीराम' कविता का परिचय

2.3.5 'मोचीराम' कविता का आशय

2.3.6 'अकाल दर्शन' कविता का परिचय

2.3.7 'अकाल दर्शन' कविता का आशय

2.3.8 'रोटी और संसद' कविता का परिचय

2.3.9 'रोटी और संसद' कविता का आशय

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1) धूमिल के जीवन एवं साहित्य से परिचित होंगे।

2) 'नक्सलबाड़ी' कविता के आशय से परिचित होंगे।

3) 'मोचीराम' कविता के आशय से परिचित होंगे।

4) 'अकाल दर्शन' कविता के आशय से परिचित होंगे।

5) 'रोटी और संसद' कविता के आशय से परिचित होंगे।

6) धूमिल साठोत्तरी पीढ़ी के यथार्थवादी कवि हैं इस का परिचय इन चारों कविताओं के माध्यम से होगा।

2.2 प्रस्तावना :

धूमिल साठोत्तरी पीढ़ी के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि रहे हैं। धूमिल का पूरा काव्य समाज को प्रेरणा देनेवाला काव्य है। स्वांतत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं को उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। मजदूर, किसान, पद-दलित तथा नारी जीवन का यथार्थ चित्रण उनकी कविताओं में हुआ है। 'नक्सलबाड़ी' कविता धूमिल के 'संसद से सड़क तक' कविता संग्रह की महत्वपूर्ण कविता है। प्रस्तुत कविता में धूमिल का विद्रोही रूप दिखाई देता है। कवि ने स्वतंत्रता के पश्चात एक वर्गहीन शोषणरहित प्रजातंत्र का सपना देखा था लेकिन वर्तमान प्रजातंत्र के दोषों की वजह से कवि का यह सपना अधूरा रहा। वर्तमान प्रजातंत्र की विफलता को उन्होंने देखा और उसे मूल से बदलने की मांग की। किसी भी देश का प्रजातंत्र उस देश की आम जनता के लिए होता है लेकिन भारतीय प्रजातंत्र देश की आम जनता को सुखी न बना सका। 'नक्सलबाड़ी' कविता स्वाधीन भारत के प्रजातंत्र की विफलता को प्रस्तुत करती है और व्यवस्था के बदलाव की मांग करती है।

'मोचीराम' कविता प्रगतिशील कविता है। प्रस्तुत कविता में धूमिल मोची के माध्यम से अपने चारों ओर की स्थिति का परिचय करवाते हैं। मोची शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। कवि उसे एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में चित्रित करते हैं। मोची अपने व्यवसाय को इज्जत की दृष्टि से देखता है। वह अपने व्यवसाय के प्रति अत्यंत ईमानदार है। मोची देश के आम आदमी का प्रतीक है। मोची जैसा छोटा मोटा व्यवसाय करनेवाले लोग अपना व्यवसाय ईमानदारी से करते हैं और अपनी रोजी रोटी कमाते हैं। लेकिन आए दिन देश का शोषक वर्ग उनका शोषण करता रहता है। यह वर्ग अपनी वेदना चुपचाप सहता अंदर ही अंदर उबलता रहता है। दो वर्गों के बीच का संघर्ष दिखाना प्रस्तुत कविता का सही उद्देश्य रहा है। मोची सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो उसके पास जूतों की मरम्मत के लिए आनेवाला उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

'अकाल दर्शन' कविता में धूमिल ने देश की वर्तमान स्थिति को रेखांकित किया है। आज़ादी के कई वर्षों बाद भी देश के नेताओं ने हमारे बुनियादी प्रश्नों का कोई समाधान नहीं ढूंढा है। जब भी राजनेताओं को इस संदर्भ में पूछा गया तब उन्होंने किसी दूसरे ही प्रश्न को सामने रखते हुए मूल प्रश्न को नजरंदाज किया है। धूमिल कहते हैं भोली-भाली जनता को आजादी और गाँधी के नाम पर ठगा जा रहा है। आम आदमी के अज्ञान का लाभ उठाकर स्वार्थी राजनेता अपना स्वार्थ पूरा कर रहे हैं। प्रस्तुत कविता में धूमिल ने एक ओर स्वार्थी राजनेताओं को फटकारा है, तो दूसरी ओर जनता के दोषों को भी दिखाया है। उनके अनुसार जनता, राजनेता और व्यवस्था के विरोध में आवाज नहीं उठाती। जब तक जनता उठ खड़ी होकर अपने प्रश्नों को नहीं कहती तब तक बदलाव असंभव है। प्रस्तुत कविता में धूमिल औसतन आम आदमी के यथार्थ जीवन को प्रस्तुत करते हैं।

'रोटी और संसद' कविता प्रगतिशील कविता है। धूमिल ने प्रस्तुत कविता में शोषित और शोषक वर्ग का चित्रण किया है। उन्होंने आम आदमी के रोटी के प्रश्न को प्रस्तुत किया है। धूमिल के अनुसार हमारे देश में आज जो इतनी आर्थिक विषमता दिखाई देती है उसका मूल कारण वे लोग हैं जो आम लोगों की कमाई की रोटी भी निंगल जाते हैं। रोटी बेलनेवाला व्यक्ति देश का आम आदमी है जो दिनरात मेहनत कर अपने गाड़े पसीने से रोटी कमाता है। लेकिन रोटी को आराम से बैठकर खानेवाला कोई दूसरा है। तो इन दोनों से हटकर रोटी से खेलनेवाला भी एक वर्ग है, जिसके बारे में कोई कुछ नहीं कहता। इस आदमी के बारे में संसद का मूक होना इस बात का सूचक है कि वह तीसरा आदमी संसद में बैठा राजनेता है। रोटी बेलनेवाला अर्थात इस देश का निर्माता मजदूर, किसान, किसान मजदूर, छोटा-मोटा व्यवसाय करनेवाला व्यक्ति, लेकिन वह देश में मिलनेवाली सुख-सुविधाओं से कोसो दूर है। धूमिल ने प्रस्तुत कविता के माध्यम से दो वर्ग के बीच के संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। रोटी बेलनेवाला सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो रोटी से खेलनेवाला उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

2.3 विषय विवरण :

2.3.1 धूमिल का जीवन परिचय :

1. **जन्म:**

धूमिल का जन्म 9 नवम्बर, 1936 ई.में वाराणसी के करीब खेवली नामक गाँव में एक सामान्य कृषक परिवार में हुआ। धूमिल का पूरा नाम 'सुदामा प्रसाद पाण्डेय' है। बचपन में सभी धूमिल को 'सुदामा'नाम से बुलाते थे। जब वे 'पहलवानी' करने लगे तब सभी उन्हें 'सीकिया पहलवान' के नाम से पहचानने लगे। आगे चलकर उन्होंने अपना खुद का साहित्यिक नाम 'धूमिल' रखा। आज भी वे इसी नाम से पहचाने जाते हैं।

2. **माता–पिता:**

धूमिल के पिता का नाम शिवनायक पाण्डेय था। वे किसी दुकान में नौकरी करते थे। धूमिल की माता का नाम रजवंती देवी था, वह धार्मिक विचारों की महिला थी। पिता की मृत्यु जल्द ही हुई, इसी कारण घर की पूरी जिम्मेदारी धूमिल पर आ गई। धूमिल ने अपने संयुक्त परिवार को बनाए रखने के लिए हर प्रकार की कठिनाईयों को सहा और अपने परिवार को एक रखा।

3. बचपन:

धूमिल का बचपन उनके खेवली नामक छोटे से गाँव में बीता। उन्हें बचपन ही से अखाड़े का शौक था, वे जिद्दी एवं साहसी थे। पिता का देहांत हुआ तब धूमिल मात्र बारह वर्ष के थे। पिता की मृत्यु के कारण धूमिल को बचपन ही से रोजी–रोटी की तलाश में जुट जाना पड़ा। अपनी शिक्षा को आधुरी छोड़कर धूमिल को शहर जाकर नौकरी करनी पड़ी। इस प्रकार धूमिल को बचपन से लेकर अंत तक अपनी आजीविका के लिए संघर्ष करना पड़ा।

4. **शिक्षा:**

धूमिल की प्रारंभिक शिक्षा अपने गाँव खेवली में ही हुई। सन 1953 में हाईस्कूल की परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाली धूमिल अपने गाँव के पहले छात्र थे। आगे पारिवारिक समस्याओं के कारण उनका शिक्षा का स्वप्न अधूरा रहा। कुछ दिनों के पश्चात धूमिल ने वाराणासी के 'ओद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान' से विद्युत डिप्लोमा का कोर्स पूरा किया। धूमिल ने अपनी प्रतिभा के बल पर हिंदी और अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया।

5. **नौकरी:**

धूमिल के बचपन में ही पिता की मृत्यु हुई ,कुछ ही दिनों में चाचा की भी मृत्यु हुई, जिससे परिवार की पूरी जिम्मेदारी धूमिल पर आ पड़ी। परिवार के उपजीविका के लिए धूमिल ने शहर में जाकर नौकरी की। कोलकोत्ता में अपने एक मित्र के मदत से धूमिल ने एक छोटे से कारखाने में लोहा ढ़ोने का काम किया। कुछ दिनों तक वही पर पासिंग ऑफिसर की भी नौकरी की। वही से वे वापस वाराणसी चले आए। तत्पश्चात उन्होंने आय.टी.आय. वाराणसी में 'विद्युत डिप्लोमा' का कोर्स प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया और वहीं पर विद्युत अनुदेशक के पद पर नियुक्त हुए।

6. **विवाह:**

पिता की मृत्यु के पश्चात मात्र तेरह वर्ष की आयु में उनका विवाह वाराणसी के पं.नान्हक दीक्षित की पुत्री से हुआ। उन्हें एक पुत्र और एक पुत्री हैं, जिनका नाम रत्नशंकर और आशादेवी है।

7. **मृत्यु :**

सन 1974 में सरदर्द के कारण धूमिल को सर सुन्दरलाल अस्पताल में जाँच पड़ताल के लिए दाखिल किया गया। जाँच के पश्चात उन्हें ब्रेन–ट्यूमर होने का पता चला। नवम्बर 1974 को उन्हें लखनऊ लाया

गया। उनका ऑपरेशन किया गया, लेकिन वह कामियाब नहीं रहा। 10 फरवरी, 1975 ई. को उनकी मृत्यु हो गई।

8. **व्यक्तित्व :**

आधुनिक हिंदी कविता के क्षेत्र में धूमिल अपने अनोखे व्यक्तित्व के लिए पहचाने जाते हैं। अनके व्यक्तित्व में स्वाभिमानी यह गुण कुट-कुट कर भरा था। उन्होंने अपने जीवन में हर कठिनाई का सामना किया लेकिन कभी भी अपने स्वाभिमान को ठेंस आने नहीं दी। नौकरी करते समय भी उन्होंने अपने स्वाभिमान को बनाए रखा। धूमिल अत्यंत साहसी थे। साहस उनमें बचपन से ही था। नौकरी करते समय भी उन्होंने अंत्यत साहस से काम लिया। अपने ही भ्रष्ट अधिकारीयों के चेहरों को बेनकाब करते समय वे जरा भी हिचकिचाए नहीं। उन्होंने हर जगह साहस और धैर्य का परिचय दिया। अपनी कविताओं द्वारा भी उन्होंने पूंजीपतियों और राजनेताओं के विरोध में कड़े शब्दों में अत्यंत साहस के साथ प्रहार किए। निर्णयक्षमता का बड़ा गुण उनमें था। वे हर निर्णय सोच-समझकर लिया करते थे। यह गुण उनकी कविताओं में भी दिखाई देता है। धूमिल अत्यंत स्पष्टवादी थे। सही बात किसी के भी समाने कहने से वे हिचकिचाते नहीं थे। अपने जीवन में स्पष्टवादी रहे धूमिल की कविता की भाषा भी अत्यंत स्पष्ट थी। अपने समकालीन कवियों के सम्बन्ध में उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में अपना वक्तव्य दिया है। धूमिल का पूरा जीवन विद्रोही रहा। कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर धूमिल की कविता विद्रोही दिखाई देती है। साठोत्तरी कविता को विषय की दृष्टि से उन्होंने पूर्ण रूप से नया रंग दिया।शिल्प में भी उन्होंने अभिनव प्रयोग कर उन्होंने कविता की भाषा को ही बदल दिया। वे अपनी विद्रोही कविताओं द्वारा राजनेताओं और प्रजातंत्र के अमानवीय चेहरे को बेनकाब करते रहे। अर्थाभाव के कारण धूमिल उच्च-शिक्षा ग्रहण न कर सके लेकिन उच्च-शिक्षा की लालसा उनमें निरंतर बनी रही। धूमिल अध्ययनशील वृत्ति के थे, उन्होंने अपने अध्ययन से अंग्रेजी सीख ली। हिंदी के बड़े कवियों एवं आलोचकों के संपर्क से उनका बौध्दिक स्तर बढ़ता गया। इसीकारण धूमिल उच्च कोटी के बौध्दिक कवि के नाते हिंदी कविता जगत में पहचाने जाने लगे। धूमिल के मन में बचपन ही से गरीब किसानों, मजदूरों के प्रति गहरी सहानुभूति थी, वे अपने जीवन के अंतिम साँस तक इन गरीब किसानों, मजदूरों के पक्ष में लड़ते रहे, साथ ही अपनी कविताओं में भी इस वर्ग की समस्याओं को अत्यंत अंतरंग से अभिव्यक्त करते रहे।

9. **कृतित्व:**

धूमिल की मृत्यु बहुत कम उम्र में हुई। उनकी मृत्यु तक उनका एक मात्र कविता-संग्रह 'संसद से सड़क तक' प्रकाशित हुआ था। कुछ कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी और कुछ अप्रकाशित थी। उन कविताओं को उनके मरणोपरांत उनके पुत्र रत्नशंकर और राजशेखर जी ने 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' कविता संग्रह द्वारा प्रकाशित किया। धूमिल के यह तीन काव्य-संग्रह महत्वपूर्ण हैं।

1. **संसद से सड़क तक** (1972):

सन 1972 में धूमिल का प्रथम काव्य-संग्रह 'संसद से सड़क तक' प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत काव्य-संग्रह में कुल 25 कविताएँ है। 1965 से 1970 तक लिखी हुई कविताओं को इस संग्रह में सम्मिलित किया गया है। सभी कविताओं का विषय राजनीति और समाज से सम्बन्धित है। हर कविता राजनीतिक चेतना से परिपूर्ण है। यह काव्य-संग्रह कथ्य और शिल्प की दृष्टि से सातवे दशक का महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह है।

2. **कल सुनना मुझे** (1977) :

धूमिल के मरणोपरांत उनके अनुज कन्हेंया जी और राजशेखर जी के प्रयत्नों से धूमिल का यह दूसरा काव्य-संग्रह 1977 में प्रकाशित हुआ। इस में कुल 37 कविताएँ हैं। इस काव्य-संग्रह की भी अधिकांश कविताएँ राजनीतिक और सामाजिक चेतना से युक्त हैं। धूमिल ने इस काव्य-संग्रह में शोषण व्यवस्था का विरोध तथा आम गरीब जनता के प्रति सहानुभूति अभिव्यक्त की है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह में धूमिल का क्रांतिकारी तथा विद्रोही रूप दिखाई देता है।

3. **सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र** (1983):

धूमिल के पुत्र रत्नशंकर के प्रयत्नों से धूमिल का यह तीसरा काव्य-संग्रह सन 1984 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत काव्य-संग्रह में कुल 60 कविताएँ हैं। अन्य दो कविता-संग्रहों की तरह धूमिल ने प्रस्तुत काव्य-संग्रह में भी राजनीतिक, सामाजिक प्रतिबद्धता और आर्थिक विषमता आदि विषयों पर अपनी कविताओं को लिखा है। व्यवस्था के प्रति व्यंग और मेहनतकशों की हालत को यह कविताएँ तलाशती हैं।

2.3.2 'नक्सलबाड़ी' कविता का परिचय :-

'नक्सलबाड़ी' कविता धूमिल के 'संसद से सड़क तक' काव्य-संग्रह की महत्त्वपूर्ण कविता है। प्रस्तुत कविता में स्वतंत्रता के पश्चात की आम लोगों की स्थिति को दर्शाया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात देश के आम लोगों ने एक वर्गहीन शोषणरहित प्रजातंत्र का सपना देखा था, लेकिन देश के आम आदमी का मोहभंग हो गया। धूमिल आम आदमी की इस व्यथा को अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। धूमिल वर्तमान प्रजातंत्र के दोषों को दिखाते हैं और इस प्रजातंत्र में देश का आम आदमी सुखी नहीं हो रहा है इसीकारण यह प्रजातंत्र बदलने की आवश्यकता है। धूमिल को ऐसा लगता है कि प्रजातंत्र में मुलभूत बदलाव लाने की आवश्यकता है। किसी भी देश का प्रजातंत्र उस देश की आम जनता के सुख के लिए होता है, लेकिन इतने वर्षों पश्चात भी भारतीय प्रजातंत्र आम जनता को सुखी न बना सका। धूमिल प्रस्तुत कविता में आम जनता की स्थिति को दर्शाते हुए उसमें बदलाव की आशा रखते हैं।

2.3.3 'नक्सलबाड़ी' कविता का आशय :-

धूमिल प्रस्तुत कविता में स्वतंत्रता के पश्चात की आम आदमी की जिन्दगी को तलाशते हैं, तब उन्हें यह महसूस होता है कि स्वतंत्रता के इतने वर्षो बाद भी आम आदमी की बुनियादी जरूरतें पूरी न हो सकी। उसे दो वक्त की रोटी तक वक्त पर नहीं मिल रही रही, पहनने के लिए कपडे और रहने के लिए मकान बहुत दूर की बात रही। आजादी लाने के पिछे का ऊद्देश्य अत्यंत साफ था। इस देश का आम-आदमी सुखी हो जाए, उसकी बुनियादी समस्याएं पूरी हो जाएँ, लेकिन जब इतने वर्षों बाद भी वह पूरी होती दिखाई नहीं दी तब धूमिल जैसे कवियों ने यहाँ के राजनेता और व्यवस्था के दोषों पर अपनी कविताओं द्वारा सीधा प्रहार किया। देश को जब आजादी मिली तब देश का पूरा माहोल खुश था, सारों को लगा कि अब देश में सभी ओर खुशहाली आएगी। रोटी, कपडा और मकान की समस्या दूर हो जाएगी। हर एक को दो वक्त की रोटी, पहनने के लिए कपडे और रहने के लिए मकान मिल जाएगा। देश के आम आदमी को बहुत वर्षों बाद पता चला कि, जनतंत्र, त्याग, स्वतंत्रता, संस्कृति, शांति मनुष्यता यह सब मात्र वादे थे। कुछ ही दिनों में देश की जनता को यह शब्द अर्थहीन लगने लगे। जो व्यवस्था देश देश के आम गरीब लोगों की उन्नति के लिए बनाई गई थी वह व्यवस्था आम गरीब आदमी का विकास न कर सकी। धूमिल को ऐसा बार-बार लगने लगा है कि यह व्यवस्था सिर्फ एक वर्ग को ही ऊपर ले जा रही है। इस व्यवस्था में अमीर और अधिक अमीर बनता जा रहा है और गरीब और अधिक गरीब ही बन रहा है। इसीकारण धूमिल इस व्यवस्था को ही मूल से बदलना चाहते हैं। अपनी कविताओं की माध्यम से धूमिल ने इसकी मांग भी की-

''फिर भी हकलाते हुए उसने कहा-

मुझे अपनी कविताओं के लिए

दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है;''

देश का आम आदमी भी यही चाहता है लेकिन वह बोल नहीं सकता। वह भूख से परेशान है उसे इस बात पर गुस्सा भी आता है कि क्या सोचकर हमने आजादी पाई थी और आज स्थिति क्या है? वह बार-बार इस पर सोचता है लेकिन इसका कोई वाजिब उत्तर उसे नहीं मिल पाता। तब वह भी प्रजातंत्र की विफलता को दोष देता है। लेकिन उसकी मज़बूरी यह है कि वह कुछ कह नहीं पाता। धूमिल को दुःख इस बात का है कि इतना सब-कुछ सहने के पश्चात भी देशा का आम आदमी इसे खुले-तौर पर अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा है। वह मजबूर है, लाचार है उसे अपने अस्तित्व पर ही प्रश्न नजर आने लगते हैं। कुछ न कहना चुपचाप सारी चीजों को सहते रहना यही भारतीय आम आदमी की नियति बन गई है।

''यह एक खुला हुआ सच है कि आदमी

दायें हाथ की नैतिकता से

इस कदर मजबूर होता है

कि तमाम उम्र गुजर जाती है मगर गांड

सिर्फ बायों हाथ धोता है।''

आदमी थोड़ी-सी लालच के आगे अपने ईमान को तक बेच देता है। आदमी के अन्दर इस कद्र मैल भरा हुआ है कि वह चंद सिक्कों के लिए कुछ भी करने तैय्यार हो जाता है। विपक्ष नाम की कोई चीज राजनीति में बची नहीं, कौन सताधारी और कौन विपक्ष कुछ समझ में नहीं आता। प्रति दिन राजनेता गिरगिट की तरह रंग बदलते रहते हैं। चुनाव के समय एक-दूसरे के विरोध में लड़नेवाले राजनेता चुनाव के बाद एक होकर चुनाव के हिस्सेदार बन जाते हैं। आम आदमी राजनेताओं के बहलावे में आ जाती है। व्यवस्था उस समय वह बहरी, अंधी और गूंगी हो जाती है। भारतीय चुनाव मात्र धर्म और जाति के अधार पर लडे जाते हैं। वहां रोजमर्रा की जिंदगी कोई मायने नहीं रखती। इन चुनाओं में नैतिक मूल्य एवं आदर्श कोई मायने नहीं रखते, लोग अपनी छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए चुनाव में अपने मतों को बेच देते हैं। इसी कारण आगे चलकर विरोधी राजनेता भी सताधारी राजनेताओं के प्रलोभन में आकर अपने कर्तव्य से हट जाता है। वह भी सत्ता का हिस्सेदार बन जाती है। धूमिल ने यह कविता लिखी तब की परिस्थिति कही-कही ही ऐसी थी कुछ हद तक उसूलों पर चलनेवाले राजनेता दिखाई देते थे, लेकिन आज तो हर राज्य में यही स्थिति है। वक्त आनेपर सभी व्यवस्था के पक्ष में चले जाते हैं

''और वह सड़क
समझौता बन गई है
जिस पर खड़े होकर
कल तुमने संसद को
बाहर आने के लिए आवाज दी थी
नहीं, अब वहाँ कोई नहीं है
मतलब की इबारत से होकर
सब के सब व्यवस्था के पक्ष में
चले गए हैं।''

इन सब के बीच मात्र आम आदमी पीस रहा है। अपने स्वार्थ के लिए जहाँ राजनेता आए दिन अपने विचारों को बदलते रहते हैं वहाँ जनता का हमदर्द कोई नहीं रहता । जनता को ही दोषी करार दिया जाता है और उसे कटघरे में खड़ा किया जाता है। भारतीय किसान तो मात्र पिसता ही दिखाई देता है। कवि को लगता है उसके खेत मानों हथकड़ी पहने खड़े हैं। इन खेतों को पूर्णत: मौसम पर निर्भर रहना पड़ता है और दोनों ओर के मौसम के चक्रव्हीव में वे झूलते रहते हैं। बारिश नहीं हुई या कम हुई तो 'सूखा-अकाल' और अगर बारिश ज्यादा हुई तो 'गीला- अकाल' है अर्थात किसान किसी भी हालत में सूरक्षित नहीं है। धूमिल

को लगता इन सब के पक्ष में केवल कविता खडी है। इसीलिए कवि को चाहिए कि वह अपनी कविता किसानों के, मजदूरों के पक्ष में रखे।

कविता के अंतिम चरणों में धूमिल मानवता की बात करते हैं। उनके अनुसार आज आदमी आदमी से बेहद नफरत करने लगा है। हमारा परिवार भी मानों नफरत के उस मुकाम पर आ पहुँचा है जहाँ हमारे परिवार का सदस्य भी अपने ही पड़ोसी की गर्दन अपनी स्लेट से काट सकता है। अर्थात कवि नफरत के इस दौर को दिखाकर आदमी और आदमी के बीच की खाई को मिटाना चाहते हैं।

2.3.4 'मोचीराम' कविता का परिचय :-

धूमिल की मोचीराम कविता प्रगतिशील कविता है। यह कविता दो वर्गों के बीच के संघर्ष को अभिव्यक्त करती है। मोची 'शोषित' वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो उसके पास अपने जूतों की मरम्मत के लिए आनेवाला 'शोषक' वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। धूमिल मोची के आँखों से अपने चारों ओर की दुनिया देखते हैं। वे मोची को एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मोची अपने व्यवसाय को इज्जत की दृष्टि से देखता है, वह अपने व्यवसाय के प्रति अत्यंत ईमानदार है। मोची देश के औसतन आम आदमी का प्रतिनिधित्व करता है, जो छोटा-मोटा व्यवसाय कर अपना जीवन व्यतित करते हैं। देश का शोषक वर्ग इन्हीं लोगों के बलबूते पर उच्च वर्ग तक पहुँच जाता है लेकिन वह कभी मुड़कर इस वर्ग की ओर नहीं देखता, सही और गलत की इस वर्ग को पहचानता नहीं है। कवि प्रस्तुत कविता में व्यंग के माध्यम से उच्च वर्ग की पोल खोलते हैं। उनकी सहानुभूति मोची के प्रति है। मोची के माध्यम से धूमिल शोषित वर्ग की समस्या को उसके दुःख को प्रस्तुत करते हैं।

2.3.5 'मोचीराम' कविता का आशय :-

धूमिल की मोचीराम कविता प्रगतिशील विचारधारा की कविता है। धूमिल शोषक और शोषित के बीच के खाई को मिटाना चाहते थे। शोषक वर्ग जो शोषितों के बलबूते पर ही बड़ा होता है लेकिन वह जहाँ से आया है उसे वह भूल जाता है। धूमिल मोची की जुबान से शोषक वर्ग को उसकी अपनी असलियत दिखाते हैं। कविता का प्रारम्भ मोची और मोची के पास जूतों की मरम्मत के लिए आए व्यक्ति के साथ चल रहे संवादों से होता है।अपने सामने खड़े व्यक्ति को मोची एक ही दृष्टि से देखता है। वह किसे बड़ा या छोटा नहीं समझता। वह अपनी रॉपी से काम करते-करते सामने खड़े व्यक्ति के साथ संवाद स्थापित करता है और सीधी भाषा में उस व्यक्ति को कहता है-

''बाबूजी! सच कहूँ मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है

जो मेरे सामने

मरम्मत के लिए खड़ा है।''

मोची को यह हरदम लगता है कि मेरे सामने खड़ा हुआ हर व्यक्ति जूते की नाप से बाहर नहीं है। वह स्पष्ट रूप से कहता है मेरे सामने का हर आदमी एक जोड़ी जूता है। मोची किसी भी व्यक्ति को बड़ा-छोटा नहीं समझता, वह हर एक को समान दृष्टि से देखता है। मोची को इस बात का लेना-देना नहीं है कि कौन कैसा है? कहाँ से आया है? किधर जानेवाला है? उसे तो बस लगता है इन सब के बीच एक अदद आदमी है। मोची तो उसे 'आदमी' के ही दृष्टि से देखता है लेकिन वह अदद आदमी शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। मोची के सामने अलग-अलग नीयति बतलाते हैं। मोची के पास आनेवाले हर व्यक्ति की शेली भिन्न-भिन्न है। एक आदमी ऐसा जूता लेकर आता है जो सीधी तरह मरम्मत नहीं हो सकता, मोची जब उसे समझाना चाहता है तब वह मोची पर ही बिगड़ जाता है, तब मोची उसे कहता है

''बाबूजी! इस पर पैसा

क्यों फूंकते हो?

मैं कहना चाहता हूँ

मगर मेरी आवाज लडखडा रही है

मैं महसूस करता हूँ- भीतर से

एक आवाज आती है- कैसे आदमी हो

अपनी जाति पर थूकते हो।

आप यकीन करें, उस समय

मैं चकतियों की जगह आँखे टांकता हूँ

और पेशे में पड़े हुए आदमी को

बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ।''

मोची को तरह-तरह के व्यक्तियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन वह हर एक के साथ निभाकर चलता है, उसके पास कुछ उच्च वर्ग के लोग भी आते हैं, वे लोग न अकलमंद होते हैं और न ही वक्त के पाबंद होते हैं। उनकी आँखों में हर बार किसी न किसी चीज का लालच होता है। उसके चेहरे पर ऐसी हडबडी होती है जैसे वह कोई बड़ा बनिया है या फिर बिसाती है, लेकिन रोब उसका ऐसा होता है जैसे वह हिटलर का रिश्तेदार हो। बात करने में भी उसमें कोई मुरव्वत नहीं है-

''इशे बांधो, उशे काट्टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पिट्टो

घिश्शा दो, आइशा चमकाओ, जुत्ते को ऐना बनाओ

ओफ्फ! बड़ी गर्मी है रुमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर बिसरता है
सडक पर 'आतियों-जातियों' को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घण्टे-भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ 'नट' जाता है
'शरीफों को लूटते हो' वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है''

धूमिल ने बड़े सटिक शब्दों में उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला व्यक्ति मोची तथा उस जैसा छोटा-मोटा व्यवसाय करनेवाले गरीबों का शोषण किस प्रकार करते हैं इसे दिखाया है। यह लोग गरीबों से अपना काम तो करवाते हैं लेकिन जब काम का मोबदला देने का वक्त आता है तब उनपर ही भड़क उठते हैं। उन्हें ही 'शरीफों को लूटते हो' कहकर कुछ पैसे फेंककर आगे बढ़ जाते हैं। कवि मोची के माध्यम से इन लोगों की नीयति को सामने रखता है। लेकिन मोची को इस बात से दुःख होता है, उसे लगता है चोट जब पेशे पर पड़ती है तब कहीं न कहीं एक चोर कील मन तक पहुँच जाती है। मोची को कोई गलत-फहमी नहीं है,उसे हर बार ऐसा लगता है कि जूते और पेशे के बीच एक ऐसा आदमी है जो हर बार उसे सोचने पर मजबूर करता है। मोची उस आदमी की नियती पर हर-दम सोचता रहता है। जहाँ कहीं उसे ऐसा आदमी दिखाई देता है वह उसे जीवन जीने के सही तर्क को बताता है-

''और बाबूजी! असल बात तो यह है कि जिन्दा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रण्डियों की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है''

मोची की जुबान से धूमिल जीवन का बड़ा तत्वज्ञान सामने रखते हैं। मोची की यह अपेक्षा है कि, जिन्दा रहने के पीछे सही तर्क का होना आवश्यक है। मोची अपने पेशे के प्रति ईमानदार है। मौसम के अनुसार मोची को काम करने में दिक्कत होने लगती है। गर्मी के कारण राँपी के मूढ़ को हाथ में संभालना मुश्किल हो जाता है। आँख कहीं देखती है और हाथ कहीं और चला जाता है। ऐसे धूप में मन काम पर

आने से बार-बार इन्कार करता है। मोची के माध्यम से हमें आम-आदमी की समस्याओं का पता चलता है। कविता के अंतिम चरणों में मोची के तेवर तेज होते हैं, वह अपने आपको कवि से कम नहीं समझता और यह भी मानता है भाषा पर किसी जाती का अधिकार नहीं होता- वह एक दार्शनिक की भाषा में कहता है, जब जीवन की आग सब को समान रूप से जलाती है,तो भाषा की अभिव्यक्ति का अधिकार भी सभी को है। अनपढ़ जनता अन्याय को चुपचाप सह रही है, कोई एक अपनी वेदना को चीख का रूप देता है तो कोई दूसरा चुप रहता है-

''वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं-

और पेट की आग से डरते हैं

जबकि मैं जानता हूँ कि 'इन्कार से भरी हुई चीख'

और 'एक समझदार चुप'

दोनों का मतलब एक है

भविष्य गढ़ने में 'चुप' और 'चीख'

अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से

अपना-अपना फर्ज अदा करते हैं।''

देश के अनपढ़ लोग अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहते हैं। समाज में दो प्रकार के लोग पाए जाते हैं। कोई अन्याय को 'चीख' कर विरोध करता है तो कोई उसे 'चुपचाप' सहता है। मोची की नजर में दोनों अपना-अपना फर्ज अदा कर रहे हैं। दोनों अपनी-अपनी जगह सही हैं। कवि मोची की नजर से गाँव और शहर में छोटा-मोटा व्यवसाय करनेवाले आम-आदमी की जिन्दगी को तलाशते हैं। देश का आम आदमी अंत्यत ईमानदारी से अपना जीवन जी रहा है लेकिन उसे अपनी मेहनत का फल नहीं मिलता । मोची की तरह देश का यह वर्ग शोषित होने के बावजूद स्वाभिमानी है। मोची सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो उसके पास जूतों की मरम्मत के लिए आनेवाला उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। कवि मोची के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर काल में भी देश में वर्ग चेतना बराबर बनी रही है इसे रेखांकित करते हैं। 'मोचीराम'खुद अपनी व्यथा को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ कहता है। कविता का यह विषय मात्र अकेले 'मोचीराम' का नहीं है, बल्कि आम भारतीय समाज का यह यथार्थवादी चित्रण है।

2.3.6 'अकाल-दर्शन' कविता का परिचय :-

'अकाल-दर्शन' कविता में देश की वर्तमान यथार्थ स्थिति का चित्रण धूमिल ने प्रस्तुत किया है। आजादी के इतने वर्ष पश्चात भी देश के नेताओं ने आम आदमी की बुनियादी समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया है। इन बुनियादी समस्याओं का सही समाधान इन्होंने नहीं खोजा है। जब इनसे इस सम्बन्ध में पूछा गया तब उन्होंने किसी दूसरे प्रश्न की ओर जनता ध्यान आकर्षित कर मूल प्रश्न को दरकिनार कर दिया है।

रोटी के हल के किए जो उपाय सरकार बताती है, उससे धूमिल सहमत नहीं हैं। रोटी की समस्या के लिए सरकार ने जिम्मेदार बढ़ती आबादी को बताया, लेकिन यह सच नहीं है बढ़ती आबादी की जिम्मेदारी जनता की नहीं सरकार की है। बढ़ती आबादी को रोकने के लिए जो कानून बनाए गए, जो कदम उठाए गए, जो प्रयास किए गए वे सभी निरर्थक रहे। इन प्रयासों के पहले जनता में जो जनजागृति होनी आवश्यक थी वह नहीं हुई। भोली-भाली जनता को आजादी और गाँधी के नाम पर ठगाया जा रहा है। इन नामों से आमा जनता का न भूख का प्रश्न मिट रहा है न इन की अन्य समस्याओं का हल ढूंढा जा रहा है। आम जनता के अज्ञान का लाभ उठाकर स्वार्थी राजनेता अपना स्वार्थ पूरा कर रहे हैं। कवि ने एक ओर स्वार्थी राजनेताओं को दोषी ठहराया है तो दूसरी ओर जनता को भी दोषी करार दिया है। जनता जब तक राजनेताओं के विरोध में आवाज नहीं उठाती तब-तक राजनेता अपने स्वाथ से दूर नहीं जायेंगे। इसीलिए धूमिल को क्रांति की बात अब कोसों दूर लगने लगती है। प्रस्तुत कविता के माध्यम से धूमिल राजनेताओं के दोगलेपण का चित्रण करते हैं साथ ही चुपचाप सहनेवाली जनता को बदलने का आग्रह करते हैं।

2.3.7 'अकाल-दर्शन' कविता का आशय :-

धूमिल की 'अकाल-दर्शन' कविता आम आदमी की वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत करती है। आम आदमी की बुनियादी जरूरते हैं रोटी,कपड़ा और मकान, लेकिन आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी देश के लोगों की इन बुनियादी जरूरतों को देश के राजनेताओं ने पूरा नहीं किया। हर पांच वर्षों के बाद राजनेता देश की जनता को मात्र आश्वासन देते रहे कि आज नहीं हो सका लेकिन कल जरुर हम इस समस्या का समाधान ढूढेंगे। लेकिन 'आज-कल' के झमेले में आज-तक इस समस्या का हल पूरा न हो सका। देश की जनता मात्र इंतजार करती रही लेकिन इन लोगों ने जब-जब इन्हें प्रश्न पूछा गया जनता का ध्यान दूसरी तरफ ही आकर्षित किया। धूमिल कहते हैं

''उस चालाक आदमी ने मेरी बात का उत्तर

नहीं दिया।

उसने गलियों और सडकों और घरों में

बाढ़ की तरह फैले हुए बच्चों की ओर इशारा किया

और हँसने लगा म''

देश के राजनेता जब भी जिस प्रश्न को हम पुछते हैं, उसका उत्तर नहीं देते बल्कि लोगों का ध्यान दूसरी ओर ही आकर्षित करते हैं। राजनेता रोटी के लिए जिम्मेदार बढ़ती आबादी को बताते हैं, लेकिन असल में ऐसा नहीं है, बढ़ती आबादी की जिम्मेदार जनता नहीं सरकार है। बढ़ती आबादी को रोकने के लिए जो कानून बनाए गए, जो कदम उठाए गए वे सभी निरर्थक रहे। जो जनजागृति होनी आवश्यक थी वह न हो सकी। इसीकारण धूमिल ने इन राजनेताओं को 'चालक-आदमी' की उपमा दी है। यह लोग अंत्यत चालाक हैं। जब-जब देश का आम-आदमी प्रश्न करता है तब-तब इन्होंने उसका ध्यान दूसरी ओर

भटकाया है। कभी यह चालाक नेता बच्चों की ओर ईशारा करके हमारा ध्यान भटकाते हैं तो कभी हम पर हँसते दिखाई देते हैं। दूसरों की ओर अपनी गलतीयों को डालना इनकी आदत बन गई है। अपने खुद के अपराधों को जनता पर ठोंसना इन की सही नियति है। धूमिल ने दरअसल इस कविता में न केवल राजनेताओं के दोगलेपन को प्रस्तुत किया है बल्कि जनता के भोलेपन को भी दिखाया है। भोलीभाली जनता राजनेताओं की चालबाजी को नहीं समझती वह तो राजनेता जैसा कहते हैं उसे स्वीकारती रहती है। आजादी और गांधी का नाम लेकर राजनेता दिनदहाड़े जनता को लुटते रहते हैं लेकिन उसका कोई असर जनता पर नहीं होता। धूमिल व्यंग से कहते हैं

''उस मुहावरे को समझ गया हूँ
जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम
बदल रहा है।''

दो नाम ऐसे 'आजादी' और 'गांधी' जिसे लेने से न हमारी भूख मिटेगी न मौसम का रंग बदलेगा। भारतीय किसान पूर्णत: मौसम पर अवलंबित है। मौसम की दोहरी मार उसे खानी पडती है। बारिश न गिरी तो 'सूखा अकाल' और अगर बारिश ज्यादा गिरी तो 'गिला-अकाल'। भारतीय किसान को इस प्रकार से दोनों प्रकार के 'अकाल' का सामना करना पड़ता है। अपनी खेती में दिन-रात मेहनत करनेवाले किसान को दो वक्त की रोटी तक नसीब नहीं होती वह हर वक्त भूख के कारण तिलमिलाता रहता है, कुछ भी खा-पी कर वह अपना जीवन बसर करता है, उसे न पहनने के लिए अंगभर वस्त्र हैं न रहने के लिए पक्का मकान है। आजीवन वह इसी दूविधा में अपना जीवन बसर करता रहता है। वह शासन से आस लगाए बैठता है लेकिन उसे शासन की ओर से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। कवि ने राजनेताओं को भेडियों की उपमा दी है। वह स्पष्ट रूप में कहते है यह जो इन किसानों का बुरा हाल है इसकी वजह वह राजनेता हैं जो शासन की ओर से मिलनेवाली इन की सुख-सुविधा को खुद ही हडप कर जाते हैं, और उपर से कहते हैं 'भारतवर्ष नदियों का देश है।' भ्रष्टाचार इस देश को लगा हुआ सब से बड़ा रोग है, राजनेता और सरकारी अधिकारी इन दोनों की मिली-भगत है। दोनों मिलकर आम जनता को फंसाते हैं। यही वह कारण है कि आजादी के पश्चात भी इस देश में दो वर्ग बराबर बने रहे एक वह वर्ग है जो राजनेताओ और अधिकारीयों का है जो आम किसानों और मजदूरों के माल को हडप कर जाता है। दिन-ब-दिन यह वर्ग ऊँचा ही उठता दिखाई देता है तो दूसरा वर्ग इन गरीब किसानों-मजदूरों का है जो दिन-ब-दिन नीचा ही जाता दिखाई देता है। कविता के अंत में धूमिल ने इन दो वर्गो का सही चित्र खिंचा है जो हम सब को सही लगता है

''वह कौन-सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है
कि जिस उम्र में
मेरी माँ का चेहरा

झुर्रियों की झोली बन गया है

उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला

के चेहरे पर

मेरी प्रेमिका के चेहरे-सा

लोच है।''

स्पष्ट है आजादी के बाद भी हमारे देश में दो वर्ग बराबर बने रहे। एक किसान-मजदूरों का वर्ग जिस के चेहरों पर की झुर्रियां खत्म नहीं हुई। दूसरा वर्ग उन राजनेताओं, अधिकारीयों, मील मालिकों और साहूकारों का रहा जिन के चेहरे की चमक कभी खत्म न हुई। इसी वर्ग के शोषण के कारण देश का आम-आदमी हर हाल में परेशान, फटेहाल, भूखा, नंगा दिखाई देता है। धूमिल तटस्था से इसपर के उपाय पर सोचते हैं लेकिन उन्हें यह महसूस होता है कि जब तक इस देश की जनता इन उच्च वर्ग के विरोध में क्रांति नहीं करती तब तक यह प्रश्न वैसे ही बने रहेंगे जैसे आज हैं। धूमिल ने प्रस्तुत कविता के माध्यम से एक ओर भारतीय आम जनता की स्थिति को तलाशा है तो दूसरी ओर इसके जिम्मेदार कौन हैं? इसे भी खोजने का प्रयास किया है। साथ इस का उपाय भी सुझाया है कि जब-तक जनता उठ-खड़ा होकर एक मुख से क्रांति नहीं करती तब-तक यह हालत बदलना असंभव है।

2.3.8 'रोटी और संसद' कविता का परिचय :

'रोटी और संसद' कविता में धूमिल ने दो वर्ग के संघर्ष को दिया है। यह कविता आम-आदमी के रोटी के प्रश्न को प्रस्तुत करती है। देश की आर्थिक-विषमता का कारण वे लोग हैं जो आम लोगों की कमाई की रोटी भी निंगल जाते हैं। इस कविता में धूमिल ने दो ही नहीं बल्कि तीन वर्गों का चित्रण किया है। एक वर्ग गरीब किसान-मजदूरों का है जो चुपचाप दिन-रात मेहनत कर रोटी बेलता है अर्थात रोटी कमाता है । देश में एक वह शोषक वर्ग है जो सिर्फ रोटी खाना जानता है अर्थात वह भ्रष्टाचारी वर्ग है जो किसानों-मजदूरों ने बनाई हुई रोटी को खाता है। लेकिन इससे भी बढ़कर एक वर्ग देश में ऐसा निर्माण हुआ जो मात्र रोटी से खेलता है। धूमिल हम सब से पूछते हैं यह तीसरा वर्ग कौन सा वर्ग है? इस प्रश्न के आगे हम ही नहीं बल्कि देश की संसद भी मौन है। संसद का मौन होना इस बात का सूचक है कि वह तीसरा वर्ग संसद में बैठा राजनेता है। रोटी बेलनेवाला अर्थात इस देश को बनानेवाला इस देश में मिलनेवाली सुख-सुविधाओं से कोसों दूर है। धूमिल की यह कविता देश के तीनों वर्गों का सटिक चित्रण करती है।

2.3.9 'रोटी और संसद' कविता का आशय:

धूमिल की 'रोटी और संसद' कविता प्रगतिवादी विचारधारा की रचना है । इस में चित्रित 'रोटी बेलनेवाला व्यकित' सर्वहारा शोषित वर्ग का और 'रोटी से खेलनेवाला व्यकित' पूंजीपति शोषक वर्ग का प्रतीक है । धूमिल ने इन दोनों के माध्यम से प्रगतिवादी विचारों को अभिव्यक्त किया है । कवि इन दोनों के माध्यम से वर्ग-संघर्ष का चित्रण करते हैं । धूमिल की अनेक कविताओं में प्रगतिवादी मूल दिखाई देते हैं ।

वे रूस की साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित थे और अपनी कविताओं में सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति अभिव्यक्त करते रहे। धूमिल की अनेक कविताओं में शोषित, उपेक्षित वर्ग का अपनत्व के साथ वर्णन हुआ है। प्रस्तुत कविता में भी धूमिल ने निम्न शोषित वर्ग की महत्ता, उपयोगिता एवं सर्व व्यापकता को 'रोटी बेलनेवाले व्यक्ति' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। आम व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए धूमिल ने 'रोटी बेलनेवाले व्यक्ति' की प्रतिष्ठा एवं महत्त्व को अधोरेखित किया है-

''एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ
यह तीसरा आदमी कौन है?
मेरे देश की संसद मौन है।''

धूमिल की प्रस्तुत कविता अत्यंत छोटी कम शब्दों में लिखी गई कविता है। वर्तमान की सब से विक्राल समस्या 'रोटी की समस्या' का चित्रण कवि ने इस कविता में किया है। आजादी के पश्चात भी देश में आर्थिक विषमता वैसे ही बरकरार रही जैसे आजादी के पहले थी। धूमिल साम्यवादी विचारों से प्रभावित थे, वे चाहते थे कि देश के हर व्यक्ति को समान रूप से सभी चीजे मुहय्या हो जाए। लेकिन देश में आर्थिक विषमता के कारण गरीब गरीब ही बना रहा और अमीर और अधिक अमीर होता चला गया। धूमिल इस विषमता को नष्ट करना चाहते थे। वे गरीबों को भी वही हक दिलाना चाहते थे जो अमीरों को मिल रहा है। देश के अमीर आम लोगों की कमाई हुई रोटी भी आराम से निंगल जाते हैं। धूमिल ने प्रस्तुत कविता के माध्यम से शोषित वर्ग के दुःख को दिखाया है, साथ ही शोषक वर्ग की विशेषता को भी रेखांकित किया है-

धूमिल की सोच प्रगतिवादी सोच थी। उन का मानना था कि पूंजीवादी व्यवस्था के पतनशील चरित्र ने वर्तमान आर्थिक विषमता को जन्म दिया है। धूमिल की हर कविता वर्तमान समाज के आर्थिक ढांचे को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करती है। उनकी सहानुभूति हर वक्त बेकार युवक, मोची, किसान, श्रमिक, मजदूर के साथ रही। उनका हर वक्त यही मानना था कि जब तक देश का आम आदमी आर्थिक दृष्टि से दूसरे उंचे व्यक्ति के समान नहीं होता तब-तक हमारा देश आर्थिक विषमता की खाई में ही छटपटाता रहेगा।

प्रस्तुत कविता में धूमिल ने रोजी-रोटी की समस्या को सब से प्रधान समस्या स्वीकार किया है। दो वक्त की रोटी के लिए दर-दर भटकनेवाले कितने ही लोग समाज में हैं। रोटी की समस्या धूमिल के चिंता का विषय रही। इस समस्या ने आम आदमी का जीना कठिन किया है। स्वतंत्र भारत में आर्थिक प्रगति के बाद भी उससे होनेवाले लाभ साधारण जनता तक नहीं पहुँच सके। साधारण मनुष्य की बुनियादी समस्याएँ भी पूरी न हो सकी। भूखी, नंगी, दर-दर भटकनेवाली जनता एक ओर तो अपना जीवन विलासिता में बितानेवाले राजनेता एक ओर ऐसी स्थिति हो गई। धूमिल ने अपनी समग्र कविताओं में रोटी की समस्या को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। आम जनता रोटी बेलती जरुर है अर्थात वही रोटी का निर्माण करती है। लेकिन उसे आराम से बैठकर खानेवाला और उस से खेलनेवाला दूसरा और तीसरा वर्ग है। धूमिल इस दूसरे और तीसरे वर्ग को अपने व्यंग्य का निशाना बनाते हैं। उन्हें इस वर्ग से घृणा आती है क्योंकि वह 'रोटी बेलनेवाला' वर्ग से बेखबर हैं। इस वर्ग को रोटी बनानेवाले वर्ग की समस्याओं का पता नहीं है। इसीलिए जब वह प्रश्न करता है कि 'यह तीसरा आदमी कौन है?' तब इस प्रश्न के उत्तर में संसद का मूक होना इस बात का सूचक है कि यह तीसरा आदमी संसद में बैठा राजनेता है। इस प्रकार धूमिल की यह कविता शोषित वर्ग और शोषक वर्ग के बीच की खाई को प्रस्तुत करती है। कवि 'रोटी से खेलनेवाले' अर्थात उच्च वर्ग के प्रति घृणा से देखता है तथा उसपर व्यंग्य कर उसे सर्वहारा वर्ग के साथ सही व्यवहार करने की सीख देता है।

2.4 स्वंयअध्ययन के लिए प्रश्न:

1. धूमिल का जन्म .... गाँव में हुआ।

   1) वाराणसी 2) खेवली 3) राजापुर 4) दिल्ली

2. 'मोचीराम' कविता .... काव्य-संग्रह में संकलित है।

   1) संसद से सड़क तक 2) कल सुनना मुझे

   3) यहाँ से देखो 4) सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र

3. धूमिल का पूरा नाम............. है।

   1) शिवप्रसाद पाण्डेय 2) रतनकुमार पाण्डेय

   3) सुदामा प्रसाद पाण्डेय 4) नारायण कुमार पाण्डेय

4. धूमिल की मृत्यु .... के कारण हुई।

   1) कैन्सर 2) ब्रेन-ट्यूमर 3) बुखार 4) तपेदिक

5. 'नक्सलबाड़ी' कविता में धूमिल का .... रूप दिखाई देता है।

   1) सौम्य 2) विद्रोही 3) रंगीन 4) उत्साही

6. 'नक्सलबाड़ी' कविता के माध्यम से धूमिल .... प्रजातंत्र की मांग करते है।

1) अलग 2) दूसरे 3) विद्रोही 4) साम्यवादी

7. 'नक्सलबाड़ी' कविता में धूमिल ने .... विचारों को व्यक्त किया है।

1) राजनीतिक 2) सामाजिक 3) धार्मिक 4) सांस्कृतिक

८. 'मोचीराम' कविता का मोची .... वर्ग का प्रतीक है।

1) शोषक 2) शोषित 3) अमीर 4) उच्च

9. 'वह बड़ी आसानी से कह सकता है, कि यार! तू मोची नहीं .... है।'

1) लेखक 2) कवि 3) शायर 4) दूकानदार

10. 'मोचीराम' कविता का प्रमुख स्वर .... है।

1) आत्मकथात्मक 2) व्यंग्यात्मक

3) मनोविश्लेषणात्मक 4) सम्बोधनात्मक

11. 'अकाल-दर्शन' कविता .... विचारों की कविता है।

1) सामाजिक 2) राजनीतिक 3) धार्मिक 4) सांस्कृतिक

12. ''उस मुहावरे को समझ गया हूँ जो आजादी और .... के नाम पर चल रहा है।''

1) नेहरु 2) गांधी 3) वल्लभभाई पटेल 4) मौलाना आजाद

13. 'अकाल-दर्शन' कविता में स्वार्थी .... का चित्रण हुआ है।

1) लोगों 2) देशवासियों 3) राजनेताओं 4) धार्मिक नेताओं

14. 'रोटी और संसद' कविता में............. वर्ग के बीच के संघर्ष को रेखांकित किया गया है।

1) दो 2) तीन 3) चार 4) पांच

15. 'रोटी और संसद' कविता में 'रोटी बेलनेवाला' .... वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

1) शोषक 2) शोषित 3) अमीर 4) उच्च

16. मैं पूछता हूँ 'यह तीसरा आदमी कौन है?' मेरी देश की संसद .... है।

1) चुप 2) मौन 3) मूक 4) लापरवाह

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1) बालिग - वयस्क, बाल्यावस्था पार कर जो युवा हो चुका है।

2) वाजिब - उचित, मुनासिब।

3) इश्तहार - विज्ञापन।

4) इबारत - लेख, लेख-शैली।

5) मुखबिर - खबर देनेवाला, जासूस।

6) बेमुरव्वत - जिसे शील, संकोच न हो।

7) नवैयत - नीति।

8) चेचक - शीलता रोग (चेहरे पर शीतलता के डाग पड़ना)

9) नौधना - लाँधना

10) इशे बाँद्धो - इसे बांधों

11) उसे काट्टो - उसे काटो

12) हियाँ ठोक्को - यहाँ ठोको

13) घिश्श्या दो - घीस दो

14) अश्श्या चमकाओ - आईसा चमकाओ

15) ऐना - दर्पन

16) बिसूरना - मन दुःख करना

17) रंडी - वेश्या

18) सुखताला - चमड़े का टुकड़ा जो जूते के अन्दर रखा जाता है।

19) बरकत - लाभ, प्रसाद, किसी वस्तु में वृद्धी

20) जुलुस - भीड़, सभा, जनयात्रा, शोभायात्रा

21) जलसा - समारोह

22) गिज़ा - भोजन, खुराक

23) नुस्का - नकल

2.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर :

1) खेवली 2) संसद से सड़क तक 3) सुदामा प्रसाद पाण्डेय 4) ब्रेन-टयूमर

5) विद्रोही	6) दूसरे	7) राजनीतिक	8)शोषित
9) शायर	10) व्यंग्यात्मक	11) सामाजिक	12)गांधी
13) राजनेताआ	14) दो	15) शोषित	16) मौन

2.7 सारांश :

1) 'नक्सलबाड़ी' कविता में स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों को अभिव्यक्त किया गया है।

2) 'नक्सलबाड़ी' कविता में धूमिल का विद्रोही रूप दिखाई देता है। स्वतंत्रता के पश्चात देश के आम आदमी ने जो सपना देखा था वह पूरा न हो सका। इसीकारण धूमिल अपनी कविता के माध्यम से दूसरे प्रजातंत्र की मांग करते हैं।

3) किसी भी देश का प्रजातंत्र उस देश की जनता को सुखी बनाने के लिए होता है, लेकिन जब हमारा प्रजातंत्र देश की आम जनता को सुखी न बना सका तब धूमिल ने व्यवस्था में ही बदलाव करने का सुझाव दिया।

4) प्रस्तुत कविता के माध्यम से धूमिल ने मजदूरों को, किसानों को, श्रमिकों को शोषक तथा राजनेताओं के विरुद्ध में उठ खड़ा होने का सन्देश दिया है।

5) 'मोचीराम' कविता में कवि ने मोची के माध्यम से देश में छोटा-मोठा व्यवसाय करनेवाले आम आदमी की हालत को तलाशा है। कवि मोची को एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में दिखाते है, तथा उस की आँखों से अपने चारों ओर की दुनिया देखते हैं।

6) 'मोचीराम' कविता दो वर्ग के संघर्ष को अभिव्यक्त करती है। मोची 'शोषित' वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो उसके पास आनेवाले व्यक्ति 'शोषक' वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

7) मोची अपने व्यवसाय को इज्जत की दृष्टि से देखता है। वह ईमानदार है, वह किसी को छोटा या बड़ा नहीं समझता, वह सभी को समानता की दृष्टि से देखता है।

8) कविता के अंत में मोची एक दार्शनिक की तरह बाते करता है। वह अनपढ़ जनता से 'चुप' न रहते हुए 'चीखने' को कहता है। प्रस्तुत कविता अकेले 'मोचीराम' की कथा नहीं है बल्कि आम भारतीय आदमी की कथा है जो छोटा-मोटा व्यवसाय कर अपना जीवन जी रहे हैं।

9) 'अकाल-दर्शन' कविता वर्तमान भारत की सही तसवीर है, जिसमें देश की सामाजिक परिस्थिति का वास्तववादी चित्रण हुआ है।

10) आजादी के बाद आम-जनता की उन्नत्ति के लिए जितने भी कानून बनाए गए, आम जनता को उठ खड़े रहने के लिए जितने भी कदम उठाए गए वे सब निरर्थक रहे। धूमिल इन सभी प्रयत्नों को निरर्थक मानते हैं, तथा राजनेताओं की स्वार्थी वृत्ति को दोष देते हैं।

11) प्रस्तुत कविता में धूमिल एक ओर राजनेताओं को दोषी करार देते हैं तो दूसरी ओर जनता को भी नहीं छोड़ते। उनके अनुसार जब-तक जनता उठ खड़ी हो आवाज नहीं उठाती तब-तक बदलाव नहीं होगा।

12) 'अकाल-दर्शन' कविता सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों से ओत-प्रोत कविता है, जिस में आजादी के बाद के औसतन भारतीय आम आदमी का सही चित्रांकन हुआ है।

13) 'रोटी और संसद' कविता प्रगतिवादी विचारधारा से प्रेरित है, जिस में दो वर्गों के बीच के संघर्ष को दिखाया गया है।

14) स्वतंत्रता के पश्चात भी देश में दो वर्ग बराबर बने रहे। एक सर्वहारा वर्ग जो रोटी बेलता है, अर्थात रोटी के लिए दिन-रात मेहनत करता है तो दूसरा वर्ग जो रोटी से मात्र खेलता है, वह सर्वहारा वर्ग की मेहनत से कमाई हुई रोटी भी निगल जाता है। धूमिल ने दोनों वर्गों की विषमता का चित्रण प्रस्तुत कविता में किया है।

15) धूमिल व्यंग के माध्यम से तीसरे आदमी की पहचान पूछते हैं, और संकेत के मध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि यह तीसरा आदमी संसद में बैठा 'राजनेता' है। धूमिल की यह अत्यंत छोटी कविता है, लेकिन कम शब्दों में उन्होंने स्वतंत्रता के पश्चात की भारतीय आम आदमी की स्थिति को रेखांकित किया है।

2.8 स्वाध्याय :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) 'नक्सलबाड़ी' कविता का आशय स्पष्ट कीजिए।
2) 'नक्सलबाड़ी' कविता में चित्रित राजनीतिक चेतना को स्पष्ट कीजिए।
3) 'मोचीराम' कविता का आशय स्पष्ट कीजिए।
4) 'मोचीराम' कविता के व्यंग को समझाईए।
5) 'अकाल-दर्शन' कविता का आशय स्पष्ट कीजिए।
6) 'अकाल-दर्शन' कविता में चित्रित सामाजिक चेतना को स्पष्ट कीजिए।
7) 'रोटी और संसद' कविता का आशय स्पष्ट कीजिए।
8) 'रोटी और संसद' कविता के माध्यम से दो वर्ग के बीच के संघर्ष को अधिव्यक्त कीजिए।

अभिव्यक्त कीजिए।

ख) ससंदर्भ के लिए प्रश्न :

मोचीराम

1) ''बाबूजी! सच कहूँ- मेरे निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है।''

2) ''सड़क पर 'आतियों-जातियों' को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घंटे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ 'नट' जाता है
'शरीफों को लुटते हो' वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है।''

4) ''और बाबूजी! असल बात तो यह है कि जिन्दा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रण्डियो की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है।''

5) ''वह बड़ी असानी से कह सकता है
कि यार! तू मोची नहीं, शायर है।''

6) ''जबकि मैं जानता हूँ कि 'इनकार से भरी हुई एक चीख'

और 'एक समझदार चुप'
दोनों का मतलब एक है-
भविष्य गढ़ने में, 'चुप'और 'चीख'
अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना-अपना फर्ज अदा करते हैं।''

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1) धूमिल और मराठी के कवि नारायण सुर्वे की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
2) धूमिल के 'संसद से सड़क तक' और मराठी के कवि नामदेव ढसाल के 'गोलपीठा' कविता-संग्रह का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) संसद से सड़क तक धूमिल
2) सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र धूमिल
3) कल सुनना मुझे धूमिल
4) कटघरे का कवि धूमिल डॉ. ग. तु. अष्टेकर
5) विपक्ष का कवि धूमिल राहुल
6) धूमिल और उसका काव्यसंघर्ष डॉ. ब्रम्हदेव मिश्र
7) समकालीन कविता और धूमिल डॉ. हुकुमचंद राजपाल
8) धूमिल की कविता शुकदेव सिंह

❑❑❑

इकाई 3

पाठ्यपुस्तक – नए युग में शत्रु –मंगलेश डबराल

नए युग में शत्रु, यथार्थ इन दिनों, हमारे शासक, यह नंबर मौजूद नहीं, भूमंडलीकरण, माँ की स्मृति, कॉलगर्ल, शरीर, आदिवासी, पैसा (दस कविताएँ)

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय विवरण

- 3.3.1 कवि मंगलेश डबराल का जीवन परिचय
- 3.3.2 'नए युग में शत्रु' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.3 'आदिवासी' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.4 'यथार्थ इन दिनों' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.5 'हमारे शासक' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.6 'यह नंबर मौजूद नहीं है' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.7 'भूमंडलीकरण' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.8 'माँ की स्मृति' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.9 'कॉलगर्ल' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.10 'आदिवासी' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.11 'पैसा' कविता का परिचय एवं आशय
- 3.3.12 मंगलेश डबराल की कविताओं में भूमंडलीकरण
- 3.3.13 समकालीन कविता की प्रवृत्तियों के तत्व और मंगलेश डबराल की कविताओं में समस्याएँ
- 3.3.14 मंगलेश डबराल की कविताओं में यथार्थ बोध

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वंयअध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :-

इस इकाई को पढने के बाद आप

1. मंगलेश डबराल के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित होंगे।
2. मंगलेश डबराल की काव्य विशेषताओं को समझ पाओगे।
3. मंगलेश डबराल की कविताओं के संदर्भ में विशेष जानकारी पाओगे।
4. मंगलेश डबराल समकालीन कविता के उल्लेखनीय कवि हैं, इसे दस कविताओं के माध्यम से समझ जाएँगे।

3.2 प्रस्तावना

नई कविता के विविध आन्दोलनों में एक महत्वपूर्ण काव्य आन्दोलन आधुनिक कविता है। आपातकाल के बाद जो विविध काव्य सम्प्रदाय निर्माण हुए उनमें आधुनिक कविता, समकालीन कविता, समसामयिक कविता आदि विशेष महत्वपूर्ण है। इन रचनाओं का आधार मात्र यथार्थ और केवल यथार्थ ही है। इसमें जीवन की न केवल गंध है बल्कि यह कविता दिन-ब-दिन कठोर होती जाती जिन्दगी का एक सशक्त दस्तावेज भी है। इस काव्यधारा में बाजारवाद, भूमंडलीकरण, विज्ञापन के साथ पर्यावरण पर भी अधिक बल दिया गया है। समकालीन कविता में जीवन की लघुता का निरंतर प्रतिपादन हुआ है। समकालीन कविता सामाजिक असंतोष आतंकवाद, राजनीति, युद्ध, बढती आबादी, बदलते परिवेश से आक्रांत जनमानस, जातीयवाद, जटिल बुद्धिवादिता, बिगडती सामाजिक हालात, अभिशप्त संत्रास, मानवीय मूल्यों का विघटन आदि विषयोंपर रोशनी डालने का प्रयास करती है।

3.3 विषय विवरण :-

मंगलेश डबराल का हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। समकालीन कविता के वे प्रमुख रचनाकार हैं। कवि का दृष्टिकोण समाज पर अधिक होता है। मंगलेश की कविताओं में सामाजिक चेतना पर अधिक बल दिया गया है। मंगलेश की सामाजिक प्रतिबद्धता को गौर से देखते हुए हम कह सकते हैं कि उनकी कलम में एक अजीब शक्ति है। उनकी रचना पढने के बाद चुपचाप रहना बहुत मुश्किल बात है । उनकी वाणी में एक कटु प्रहार है, जो सीधे हृदय को भेदती है। मंगलेश की कविताएँ समाज के अंतर्विरोधों को

उधाडते हुए, समाज के भीतर की अमानवीय शक्तियों की पहचान कराने के साथ उसका प्रतिरोध करने की क्षमता रखती है। साथ ही नये मानव समाज और राष्ट्र की कल्पना करती है। सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया की चपेट में आकर कुचल दिए गए लोगों को सम्मान और गौरव का एहसास करनेवाली इन कविताओं में मंगलेश डबराल का सर्वाधिक सार्थक कवि-कर्म प्रकट हुआ है। मंगलेश डबराल की कविता यथार्थ है, मौलिक है, सहज है और जनजीवन से जुडी हुई है। कविता लेखन में पांडित्य प्रदर्शन नहीं है, शब्दभंडार नहीं है बल्कि ह्रदय का उद्गार है। वे अपनी कविताओं में समकालीन परिवेश में फैली हुई बुराइयों की बाते करते हैं। इस प्रकार कवि की सोच का संसार बहुत ही व्यापक है। यहाँ हम मंगलेश डबराल द्वारा लिखित दस चुनिदां कविताओं पर चर्चा करेंगे।

3.3.1 मंगलेश डबराल का परिचय :-

मंगलेश डबराल का जन्म 16 मार्च 1948 के दिन उत्तराखण्ड के टिहरी गढवाल जिसे के काफलपानी नामक गाँव में हुआ था। उनकी जन्मभूमि प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण थी इसलिए कवि को प्रकृति से विशेष लगाव होना कोई अचरज की विषय वस्तु नहीं है। मंगलेश डबराल के पिता रामसहाय प्रसिद्ध ज्योतिषी और वैद्य थे और गढवाली भाषा में कविता लिखते थे, साथ ही एक अच्छे गायक भी थे। नाटकों में अभिनय करने में उनकी रूचि थी। उनकी अपनी नाटक मंडली भी थी। वे नाटकों का निर्देशन भी करते थे। संक्षेप में मंगलेश के पिता ज्योतिषी, वैद्य, कवि, गायक, अभिनेता, नाटककार और नाट्य निर्देशक के रूप में हमारे सामने आते हैं। माता का नाम रूकमणी देवी था। इनकी आरंभिक शिक्षा-दीक्षा देहरादून में ही हुई उसके बाद दिल्ली आकर 'हिन्दी पैट्रियट', 'प्रतिपक्ष' और 'आसपास' में काम करने के बाद वे भोपाल स्थित मध्यप्रदेश कला परिषद, भारत भवन से प्रकाशित साहित्यिक त्रैमासिक 'पूर्वाग्रह' में सहायक सम्पादक रहे। प्रयाग और लखनऊ से प्रकाशित 'अमृत प्रभात' में भी कुछ समय तक काम किया। 1983 ई. में 'जनसत्ता' में साहित्य सम्पादक पद पर कार्यरत रहे। कुछ समय 'सहारा समय' में सम्पादन कार्य करने के बाद 'नॅशनल बुक ट्रस्ट' से जुडे रहे। इस संस्थान में तीन वर्ष तक उन्होंने सलाहकार का पद संभाला।

प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, रूसी, डच, जर्मन, फ्रांसीसी, स्पानी, इतालवी, पुर्तगाली, बल्मारी, पोल्स्की आदि विदेशी भाषाओं के कई संकलनों और पत्र-पत्रिकाओं में मंगलेश डबराल की कविताओं के अनुवाद प्रकाशित हैं। मरिओला ओफ्रेदी द्वारा उनके कविता संग्रह 'आवाज भी एक जगह है' का इतालवी अनुवाद 'अंके ला वोचे ऐ उन लुओगो' नाम से प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी अनुवादों का एक चयन 'दिस नंबर इज नॉट एग्जिस्ट' भी प्रकाशित हुआ।

मंगलेश डबराल कविता के अतिरिक्त साहित्य, सिनेमा, संचार माध्यम, संस्कृति आदि विषयों पर नियमित लेखन करते हैं। उनकी कविताओं में सामंती बोध एवं पूँजीवादी छल-छद्म दोनो का प्रतिकार है। उनका प्रतिकार किसी हंगामा, शोर के साथ नहीं अपितु प्रतिपक्ष में एक सुन्दर स्वप्न रचकर करते हैं। उनका सौन्दर्यबोध सूक्ष्म है और पारदर्शी भाषा में व्यक्त होता है।

उनके कुल सात काव्य संकलन प्रकाशित हुए हैं, जिनका परिचय उनके कृतित्व में मिलेगा। 'हम जो देखते हैं' के लिए वर्ष 2000 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से उन्हें सम्मानित किया गया। इसके साथ ही उन्हें ओम प्रकाश स्मृति सम्मान, शमशेर सम्मान, पहल सम्मान, हिन्दी अकादमी दिल्ली का साहित्यकार सम्मान, श्रीकांत वर्मा पुरस्कार, द्विजदेव सम्मान और कुमार विकल स्मृति सम्मान आदि सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है।

उन्होंने आयोवा विश्वविद्यालय के अंतर्राष्ट्रीय लेखन कार्यक्रम, जर्मनी के लायपजिग पुस्तक मेला, रोतरदम के अंतर्राष्ट्रीय कविता उत्सव में और नेपाल, मॉरिशस व माँस्को की यात्राओं के दौरान कई जगह कविता पाठ किये हैं।

जनसंस्कृति मंच से जुडे हुए मंगलेश डबराल आजीविका के लिए पत्रकारिता करते रहें और पत्रकार के रूप में भी उनका प्रदेय उल्लेखनीय है।

उनके व्यक्तित्व की और एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने नागार्जुन, निर्मल वर्मा, महाश्वेतादेवी, यू. आर. अनन्तमूर्ति, गुरूदयाल सिंह, कुर्रतुल-ऐन-हैदर जैसे कृति साहित्यकारों पर वृत्तपत्रों के लिए पटकथा लेखन किया है। वे समाज, संगीत, सिनेमा और कला पर समीक्षात्मक लेखन भी करते रहें। संक्षेप में अनुवाद, पत्रकारिता और सम्पादन के साथ के आजीवन लेखन करते रहे।

विदेश यात्राएँ :-

मंगलेश अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा मेधावी होने के कारण विदेशियों ने उन्हे कई बार बुलाया। 1988 ई. में बल्गेरिया, चेकोस्लोवाकिया, 1991 ई में आयोवा विश्वविद्यालय अमरिका, 1999 ई में रूस, मॉरिशस और नेपाल तथा 2006 ई. में जर्मनी आदि राष्ट्रों की उन्होंने यात्राएँ की हैं और वहाँ काव्यपाठ किया है। बकौल मंगलेश-यात्रा करना मुझे बहुत अच्छा लगता है लेकिन यात्रा करने में मुझे घबराहट होती है।

मंगलेश डबराल का कृतित्व :-

मंगलेश डबराल के अब तक कुल सात काव्य संकलन प्रकाशित हुए हैं। इसके साथ दो गद्य कृतियाँ और एक यात्रा वृत्तांत भी प्रकाशित है।

काव्यसंकलन :-

1. पहाड पर लालटेन - 1981
2. घर का रास्ता - 1988
3. हम जो देखते हैं - 1995
4. आवाज भी एक जगह है - 2000

5. नए युग में शत्रु – 2013

6. घर का रास्ता – 2017

7. स्मृति, एक दूसरा समय है – 2020

गद्य कृतियाँ :-

1. लेखक की रोटी – 1997

2. कवि का अकेलापन – 2000

यात्रा वृत्तान्त :-

एक बार आयोवा – 1996

गद्य और पद्य रचनाओं के साथ मंगलेश डबराल ने अनुवाद क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है – ब्रेटोल्ट ब्रेस्ट, हाँस माग्नुस ऐंत्सेसबर्गर, यानिस रित्सोस, ज्बिग्नीयेव हेर्बेत, तादेरूष रूजेविच, पाब्ली नेरूदा, एर्नेस्तो कार्देनाल, डोरा गावे आदि की कविताओं का अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद किया है। वे बांग्ला कवि नबारूण भट्टाचार्य के संग्रह 'यह मृत्यु उपत्य का नहीं है मेरा देश' के सह अनुवादक भी हैं।

कोरोना से संक्रमित होने के कारण 9 दिसंबर 2020 को वसुंधरा गाजियाबाद के एक अस्पताल में मंगलेश डबराल का निधन हुआ।

निष्कर्षतः यह स्पष्ट कि हिन्दी जनवादी कविता को आवेग और बडबोलेपन मे बचाते हुए उसे शुद्ध मानवीय और यथार्थवादी जमीन पर प्रतिष्ठित करनेवाले कवियों में मंगलेश डबराल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

3.3.2 'नए युग में शत्रु' कविता का परिचय एवं आशय :–

इस कविता में कवि ने बाजारवाद को केन्द्र में रखकर इस कविता का लेखन किया है। कवि कहते हैं कि हमारा शत्रु बाजारवाद एक नए युग में प्रवेश कर रहा है। जूते, कपडे और मोबाइलों के साथ वह इस शती के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। साथ ही वह तहखाने में अर्थात जीवन के मूल में स्थान बना चुका है। यह सदी और सहस्त्राब्दी की तरह अथाह और अज्ञात है। भले उसने अपनी लडाई जीत ली है किन्तु वह यह भी जानता है कि उसे और भी लडाइयाँ लडनी हैं। हमारा शत्रु किसी एक स्थान पर नहीं रहता लेकिन हम जहाँ भी जाते हैं उसे हमारा पता चलता है और वह हर स्थान पर मौजूद है। अपनी पहचान को उसने हर जगह पर छोड दिया है। जो लोग ऊँची जगह पर भव्य कुर्सी में बैठे दिखाई देते हैं वे शत्रु नहीं अपितु उसके कर्मचारी और साथी है। जिन्हें वह भर्ती करता रहता है ताकि हमें उसका पता आसानी से न चले।

यह शत्रु खुद को संगणकों, टेलीविजनों, मोबाइलों और आईपैडों की जटिल प्रणाली में फैला देता है। अचानक किसी महंगी गाडी के भीतर उसका साया नजर आता है लेकिन वहाँ पहुचने पर पता चलता है कि

शत्रु वहाँ नहीं है बल्कि किसी और महंगी चमचमाती गाडी में बैठकर वह चला गया है। कभी लगता है कि वह किसी सौन्दर्य प्रतियोगिता में सहभागी हो रहा है। मगर वहाँ पर सिर्फ बनियान, जांघिया और सौन्दर्य प्रसाधनों का ढेर नजर आता है। कवि सोचता है कि किसी गरीब के घर वह हमला करने चला गया है लेकिन वहाँ भी उसका पता नहीं है। वहाँ एक परिवार अपनी दरिद्रता को झाँकता हुआ टी. वी. देख रहा है जिसपर की रंगीन समारोह चल रहा है।

हमारे शत्रु के पास मोबाइल के ढेरो नंबर हैं जिनकी सहायता से वह लोगों को सूचना देता है कि फलाँ-फलाँ प्रतियोगिता में आप जीत गए हैं और आप एक धनराशि मिलनेवाली है। आप बहुत सारा कर्ज ले सकते हैं और साजो-सामान खरीद सकते हैं। एक अकल्पनीय उपहार आप की प्रतीक्षा कर रहा है। लेकिन जब बाद में हम उसे फोन करते हैं तो कुछ भी सुनाई नहीं देता।

हमारा शत्रु हमसे मिलने कभी नहीं आता और न हमें ललकारता है। जब कि उसके आने-जाने की आहट हमेशा बनी हुई रहती है। कभी-कभी उसका संदेश भी आता है कि हम आप के शत्रु नहीं है बल्कि मित्र हैं। आपसी भेद भूलकर हमें मित्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए क्योंकि हमारा नारा 'वसुधैव कुटुंबकम' अर्थात यह धरती हमारा परिवार है, इस बात पर हमारा विश्वास है। आप को धन्यवाद और शुभ रात्रि कहते हुए आप का भविष्य उज्ज्वल हो यहीं मंगल कामना हम करते हैं।

पुराने युग में शत्रु आसानी से पहचाने जाते हैं लेकिन समकालीन परिवेश में कौन शत्रु और कौन मित्र है इसके बारे में हमें अधिक ज्ञान नहीं होता। अब शत्रु अपना रूप बदलकर मित्र के भेस में आते हैं और उत्तर आधुनिकता से प्रेरित इस अपसंस्कृति का एक रूप है बाजारवाद जिसे रचनाकार ने शत्रु और मित्र के रूपक के द्वारा स्पष्ट किया है।

3.3.3 'आदिवासी' कविता का परिचय एवं आशय :-

'आदिवासी' यह कविता आदिवासी जनसमुह का केवल चित्रण ही नहीं करती अपितु इस कविता के माध्यम से आदिवासी जनसमुह की असलियत, उनको परिस्थिती को भी उजागर करती है। आदिवासी समुह का जीवन वैश्वीकरण के चपेट में आने के बाद कितना प्रभावित हुआ है इसका कवि ने चित्रण किया है। आदिवासी समुह की अस्मिता और चेतना पर किस तरह खतरे के बादल लहरा रहे हैं जिनसे आदिवासी बुरी तरह से प्रभावित हो रहें हैं इस सभी बातों का लेखा जोखा कवि ने प्रस्तुत कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

इंद्रावती, गोदावरी, शबरी, स्वर्ण रेखा, तीस्ता, बराक, कोयल नदियों के केवल नाम नहीं है बल्कि यह आदिवासियों के वाद्य यंत्र है।

मूरिया, बैगा, संथाल, मुंडा, उरांव, डोंगरियां, कोंध, पहाडिया यह केवल आदिवासी जनजातियों, समुहों के नाम नहीं है बल्कि वे संगीत के राग हैं जिन्हें आदिवासी पुरातन समय से गाता चला आ रहा है।

अर्थात इन नामों से ही उसकी पहचान है यह कवि का मंतव्य है। यह गहरा अरण्य कोई आरण्यक ग्रंथों में वर्णित अध्यात्म नहीं है अपितु यह उनका घर है।

वैश्वीकरण की आँधी से पहले वह अपनी तस्वीरों में एक चौडी और उन्मुख हंसी हंसता हुआ दिखाई देता था। उसकी देह नृत्य की भावभंगिमाएँ इसी के सहारे स्थिर रहती थी। एक युवा जोडा एक दूजे की इस कदर देखता था जैसे वे जीवनभर एक दूसरे देखते रहेंगे। युवती अपना बालों में एक फूल रखती थी और युवक के सर पर बांधी हुई बांसुरी अपने आप मधुर स्वर निकालती थी।

अब भी क्षितिज पर बार-बार उसकी कृष्ण वर्ण की देह उभरती है किन्तु वह कभी उदास, और डरा हुआ दिखाई देता है। उसके आस पास के पेडों पर पत्ते नहीं और मिट्टी पर अब घास नहीं है। पत्तों को व्यापारी ले गए और प्रदूषण की वजह से अब घास उगती ही नहीं है। आदिवासी जल जंगल और जमीन के स्वामी थे। अब उनसे सब कुछ छीन लिया गया है। उसे अपने घर अर्थात अरण्य से दूर किया जा रहा है। उसे लोहे, कोयले और अभ्रक से दूर घास की ढलानों से तपती हुई चट्टानों की और ढकेला जा रहा है। सात सौ साल पुराने हरसुद शहर से एक नये हरसुद की ओर जहाँ पानी से भरी हुई टिहरी परियोजना थी जो अब सूखी है। वह क्रोध से कैमरे की तरफ देखता है और अपनी असहिष्णुता का एक पुराना गीत गाता है।

सब कुछ गँवाने के बावजूद उसने एक बांसुरी और तुरही वाद्ययंत्र बचा लिए हैं। एक फूल, एक मांदर वाद्ययंत्र और एक धनुष अभी भी उसके पास है।

अखबार के रिपोर्ट यह बताते हैं कि जो लोग उसपर शासन करते हैं, देश के 636 जिलों में से 230 जिलों में उन्हें मनुष्य जैसा समझने की अब कोई परवाह नहीं करता। शासकों को आदिवासी समुह के पैरों तले दबी हुई जमीन में सोने की एक नयी चिडिया दिखाई देती है।

जब आदिवासी समुह के सब्र की सीमा टूट जाती है वह अपने वाद्ययंत्रो को तीव्र गति से बजाता है। अपने नदियों, जगहों और नामों को अपने लोह, कोयले, अभ्रक के खदानों को बुला लेता है। अपने वाद्ययंत्र इतनी ऊची आवाज में बजाता है कि जो लोग उसपर शासन करते हैं वे तुरंत अपनी बंदूके निकाल कर आते हैं और उनपर तान देते हैं।

आदिवासियों की बगावत को इसी तरह से खत्म किया जाता हैं। और बेबस आदिवासी के सामने चुपचाप देखने के अलावा और कोई चारा नहीं होता। यही इस कविता का उद्देश्य और प्रतिपाद्य भी है।

3.3.4 'यथार्थ इन दिनों' कविता का परिचय एवं आशय :-

यथार्थ की जब अति होती है तो जीवन में कौनसे परिवर्तन होते हैं इसका चित्रण इस कविता के माध्यम से कवि ने किया है। यथार्थ अर्थात सच्चाई की पीडा को कवि ने स्पष्ट किया है। कवि कहता है कि जब वह यथार्थ का पीछा करता है तब उसे यह महसूस होता है कि वह यथार्थ का पीछा नहीं कर रहा है अपितु यथार्थ ही उसका पीछा कर रहा है। वह कवि से अधिक तीव्र गति से भाग रहा है। घर हो या बाजार हर जगह उसके चमकीले दाँत कवि को नजर आते हैं। चाहे अंधेरा हो या उजाला, डरा हुआ कवि जब सो

जाता है तब भी वहाँ यथार्थ उपस्थित होता है। जब उसका सपना टूटता है तो वहाँ भी वह (यथार्थ) पहले से ही बात लगाकर बैठे हुए मौके की फिराक में रहता है।

इन दिनों में यथार्थ इतना चमकता है कि उससे नजर मिलाना भी मुश्किल हुआ है। जब उसे पकडने के लिए कवि आगे बढता है तो वह किसी हिंस्त्र पशु की भाँति हमला करके निकल जाता है। सिर्फ कहीं-कहीं उसके निशान नजर आते हैं। किसी सडक पर, किसी पेड के नीचे वह चिह्‍ न देखकर आदमी डर जाता है। इन निशानों को देखकर यही महसूस होता है कि किसी पुरानी झोंपडी के भीतर की उजडा हुआ चुल्हा हो जिसकी छत कमजोर हो गई है और झोंपडी में रहनेवाले लोग वहाँ एक सुनसान वातावरण छोडकर चले गए हो।

एक मृत मानव जिंदा मानव की तुलना में कहीं अधिक बातें कर रहा है। उसके शरीर से बहता हुआ रक्त शरीर के भीतर से दौडते हुए रक्त से कहीं अधिक आवाज कर रहा है। एक तेज हवा चल रही है और विचारों को, सपनों को, यादों को किसी फटे हुए कागज की तरह उडा रही है। एक अंधेरी काली चीज कवि को हिंस्त्र पशुओं से भरी हुई रात उसके इर्द गिर्द फैलती जा रही है। एक लूटेरा, एक हत्यारा, एक दलाल धरती के मैदानों, पहाडों को ही नहीं बल्कि आकाश को लाँघता हुआ जा रहा है. उसके हाथ धरती के मर्मस्थान को दबोचने के लिए आगे बढ रहे हैं।

एक आदिवासी को उसके जंगल से खदेडने का एक ढाँचा बन चुका है। विस्थापित आदिवासियों की भीड अपनी बची खुची गृहस्थी जो पोटलियों में बाँध रही है क्योंकि उन्हे किसी अज्ञात और अंधेरे में डूबे भविष्य की ओर ढकेलने की कोई योजना तैयार है। उपर आकाश में एक विकराल हवाई दल का जहाज उनपर बम बरसाने के लिए उडान भर चुका है। नीचे घाटी में एक आत्मघाती दस्ता अपने शरीर पर बम और मिसाइलें बांध कर खडा है। दुनिया के राष्ट्राध्यक्षों के अंगरक्षक, सुरक्षा गार्ड, अर्धं सैनिक बल गोलियों, बंदूकों और रॉकेटों से लैस होकर खडे हैं।

अन्त में कवि कहता है कि यथार्थ इन दिनों कुछ अधिक यथार्थ है क्योंकि उसका शरीर खून से सना हुआ है और उसके शरीर से कहीं अधिक उसका बहता रक्त दिखाई देता ह। यथार्थ की भयावहता को स्पष्ट करना कवि का उद्देश्य है।

3.3.5 'हमारे शासक' कविता का परिचय एवं आशय :-

इस कविता के द्वारा कवि ने शासकों की निर्मम मनोवृत्ति और संवेदनहीनता को रूपायित किया है। जनता कितना भी आक्रोश क्यों न करें किन्तु उसका शासनों पर कुछ भी असर नहीं होता यही तथ्य इस कविता से उद्घाटित होता है। यह कविता राजनीति का घिनौना चित्रण करती है। शासकों की अवधारणाओं को स्पष्ट करते हुए कवि ने यह कविता लिखी है।

हमारे शासक गरीबों के बारे में मौन और खामोश रहते हैं। वे शोषण के बारे में कुछ भी नहीं बोलते। इस संदर्भ में उनकी जुबान भी खामोश रहती है और वाणी में मौन होता है। अन्याय को देख नहीं पाते और

अपना मुँह फेर लेते हैं। हमारे शासक तब खुश होते हैं जब उनकी पीठ पर कोई हाथ रखता है। वे तब नाराज होते हैं जब कोई उनके चरणों में गिर जाता है। दूर्बल प्रजा उन्हें सुहाती नहीं। 'गरीबी हटाओं' का नारा आज से पहले दिया जा चुका है लेकिन अंजाम यह हुआ कि गरीब हट गए और दरिद्रता अपने स्थान पर यथावत अर्थात अक्षय रही। शासक कहते हैं कि गरीब और गरीबी हमारी समस्याएँ हैं। उस समस्या को दूर करने के लिए वे अमीरों को गले लगाते रहते हैं अर्थात अमीरों को साथ सोहबत में अधिक रहते हैं। जो लखपति रातोंरात करोडपति और जो करोडपति रातोरात अरबपति बन जाते हैं उनका ही शासकों के द्वारा सम्मान किया जाता है।

हमारे शासक हर वक्त देश की आय बढाना चाहते हैं। अर्थात वे देश की अर्थव्यवस्था में सुधार लाना चाहते हैं मगर इसके लिए वे देश की परवाह भी नहीं करते। जो लोग विदेश में जाकर संपत्ति अर्थात पूँजी बढाते हैं उन पर हमारे शासकों का प्रेम होता है। हमारे शासक यहीं सोचते हैं कि पूरा देश उसी राह पर चले और विदेश में जाकर अकुत धन प्राप्त करे। इससे देश की आय में निश्चित ही वृद्धि हो सकती है और इसके लिए वे लोगों को उकसाते रहते हैं।

हमारे शासक ताकतवरों की अगवनी अर्थात स्वागत करते हैं। तथाकथित आधुनिक भगवानों के आगे सिर झुकाते रहते हैं। आदिवासियों की जमीनों पर निगाहें रखते हुए उन्हें बेचने की खुराफत में रहते हैं। आदिवासियों का सर्वस्व जैसे उनकी मुर्गियाँ, कलाकृतियाँ यहाँ तक की उनकी औरतों पर बुरी नजर रखते हैं। माटी के नीचे दबी हुई बहुत-सी चमकदार चीजों की अर्थात खदानों पर भी वे नजर रखते हैं। हमारे शासक हवाई जहाज से सफर करते रहते हैं। हमारे शासकों की वेशभूषा भी अलग-अलग मौकों पर अलग-अलग होती है। कभी वे पगडी अर्थात साफा भी पहनते हैं तो कभी लुंगी और कभी कोट-टाई पहनते है। कुर्ता-पाजामा, बरमूडा टी शर्ट कभी कभी पहनते हैं। अंत में कवि व्यंग्य से कहता है कि हमारे शासक यह अक्सर कहते हैं कि उन्हें अपने देश पर गर्व है। इस तरह यह कविता राजनीति का चित्रण करती है और राजनेताओं की अवधारणाएँ कितनी कठोर एवं निर्मम होती है यह दिखाने का कवि का उद्देश्य है जिसमें कवि निःसंदेह सफल हुआ है।

3.3.6 'यह नंबर मौजुद नहीं' कविता का परिचय एवं आशय :-

'यह नंबर मौजूद नहीं' कविता आदमी के अकेलेपन की त्रासदी को प्रस्तुत करती है। आज संवाद की सुविधा हर जगह पर उपलब्ध है किन्तु वे सारे फोन नंबर्स जो काफी पुराने हैं 'आऊट ऑफ सर्व्हिस' होते हैं। आदमी संवाद के लिए फोन करता है लेकिन जब फोन नंबर का अस्तित्व ही नहीं है तो वह किससे संवाद करेगा? इसी भीषण त्रासदी को कवि ने इस कविता के द्वारा प्रस्तुत किया है। बाजारवाद का शिकार आदमी अब फोन से भी बाजार के मूल्य की बात सुनता है तो वह अस्वस्थ हो जाता है।

कोई भी मानव कहीं भी जाता है और फोन मिलाता है तब उसे यह आवाज सुनाई देती है 'दिस नंबर डज नॉट एग्जिस्ट' अर्थात 'यह नंबर मौजूद नहीं है' और इससे परेशान आदमी की व्यथा को कवि ने यहाँ

व्याख्यायित किया है। फोन मिलाने के बाद एक ही पराई और बेगानी आवाज को वह सुनता है यह नंबर मौजूद नहीं है। कुछ समय पहले इसी नंबर पर बहुत सारे लोगों से वह बातचीत कर चुका होता है। वे उसे कहते थे कि आओ, हम तुम्हें पहचानते हैं। इस अंतरिक्ष में तुम्हारे लिए भी एक जगह बना दी गई है और यहाँ आकर हम से बतियाते रहो।

लेकिन अब इस नंबर का कोई अस्तित्व नहीं है क्योंकि वह कोई पुराने गार का पुराना फोन नंबर था। अब उस पुराने पते पर बहुत कम लोग बचे थे। जहाँ पहले आहट पाने के बाद दरवाजे खुलते थे, उन घरों के सामने बेल बजाकर डरते हुए बाहर खडे रहना पडता है। आखिर जब कोई आकृति दरवाजा खोलकर प्रकट होती है तो यह भी संभव है कि उसका हुलिया बदला हुआ नजर आता है। या वह आकृति कह देती है कि मैं वह नहीं हूँ जिससे तुम फोन पर बातें करते थे। यह वो नंबर नहीं है जिससे तुम अपनी मन की पीडा सुनाते थे और खुद के लिए एक सुकुन महसूस करते थे। अर्थात इससे यह भी पता नहीं चलता कि नंबर वही है आदमी बदल गया था आदमी वही है नंबर बदल गया है?

कवि जहाँ कही भी जाता है वह देखता है कि पुराने नंबर, नक्शे, चेहरे सब कुछ बदल गया है। नाली गटर में पडी कई पुरानी डायरियाँ दिखती है और पानी के कारण उनके पन्ने धीरे-धीरे गल गए हैं और वह लिखावट अब स्पष्ट नजर नहीं आती। और वहाँ पर दूसरे ही नंबर मौजूद है पहले से कहीं अलग और वार्तालाप का स्वर भी बदला हुआ प्रतीत होता है। उन नंबरों पर केवल बाजार, व्यापार और खरीद-फरोख्त की बातें होती रहती है। वह आवाजें अजनबी आदमियों की होती है और लगातार अजनबी बन जाती है।

वह जहाँ भी जाता है हताशा और निराशा से कोई नंबर डायल करता है और उस आवाज के बारे में पूछता है कि जो आवाज कहती, दरवाजे खुले हैं, तुम यहाँ रह सकते हो। थोडी देर के लिए ही न सहीं तुम यहाँ आओं, कभी इस खाली और रिक्त जगह में क्योंकि इस घर में काफी जगह है।

इस कविता के द्वारा कवि ने एक और बाजारवाद का भयावह चित्रण किया है तो दूसरी ओर लोगों में बढती हुई संवेदनाहीन भावनाएँ जिन्हें वर्तमान युग का सबसे बडा अभिशाप माना जा सकता है। आज के आलम में लोगों के पास समय नहीं है और लोग एक दूसरे से बात करना नहीं चाहते। परदुःखकातरता का भाव अब लोगों में नहीं रहा और लोगों का एक दूसरे के साथ का व्यवहार 'अपने-अपने अजनबी' जैसा बन गया है। भीड तो काफी होती है लेकिन पहचान न दिखाकर लोग अपना रास्ता निर्धारित करते हुए एक दूसरे से अलग होते जा रहे हैं इसी वैश्विक सत्य को कवि ने इस कविता के द्वारा यहीं उद्घाटित किया है।

3.3.7 'भूमंडलीकरण' कविता का परिचय एवं आशय :-

प्रस्तुत कविता के माध्यम से भूमंडलीकरण के परिणामों की चर्चा करते हुए कवि ने इसका असली चेहरा दुनिया के सामने रखने का सफल प्रयास किया है।

अचानक किसी चीज से टकराकर आदमी जब लडखडाता है तो जैसे अपने भीतर से ही कोई हास्य की ध्वनि आती है। कुछ कहते हुए बाद में वह हकलाता रहता है तो कोई कहता है कि तुम को हमने फिर

से पकड लिया है। जिनके पास अपनी निजी योग्यता नही है वह उसकी तलाशी ले रहे हैं। उसने लिखे हुए शब्दों को उलटी तरफ से पढ रहा है। उसकी भाषा में उगे हुए पेडों और पहाडों को जमींदोज कर रहे हैं। और नदियों का पानी सूखा रहे हैं। अर्थात यह सारे भूमंडलीकरण के दुष्परिणाम है जिन्हें कवि स्पष्ट कर रहा है।

इन दिनों लोग संवेदनाहीन बन चुके हैं उन्हें इस बात का पता तक नहीं है कि उनके साथ क्या हो रहा ह? कोई भी मनुष्य अन्याय के खिलाफ मुकाबला नहीं कर सकता और न मुकाबला करने की उसके पास क्षमता बची हुई है। लोग अत्याचारों को धूल की तरह झाड दे रहे हैं और अचानक चिल्लाते हैं 'नहीं नहीं' और उसे पल में भूलकर कहीं से कोई खुशी तुरंत खोजकर लाते हैं। खुशियों को इस तरह अपने पास रखते हैं कि मानों यह सारी चीजें उनके लिए ही बनी हुई है। बहुत से ब्रेंडेड कपडे और जूते पहनते हैं और भरपेट खाना खाकर सुस्त हो जाते हैं। आज मनुष्य की दुनिया मोबाइल में ही सिमट गई है और वह अपने मोबाइल को जी जान से जतन करते हैं क्योंकि इसमें बहुत बार अश्लील संदेश भी होते हैं। वहीं लोग दंगा-फसादों में शामिल हो जाते हैं। दंगों में मारे गए लोगों के घर से टी. वी. के सेट उठाकर ले आते हैं ताकि उनके खुशियों में इजाफा हो और उनका मनोरंजन जारी रह सके। आज मीडिया इक्कीसवीं शती का संकेत शब्द बन गया है जिसके उपकरण टी. वी. और मोबाइल है जिन्हें महाजाल (इंटरनेट) की मदद लेकर चलाया जाता है।

वैश्वीकरण से दुनिया एक बडा देहात बन चुकी है और दूरियाँ सिमटकर नजदीक आ रही है। अब लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष के लिए कहीं अन्य स्थान पर जाना नहीं पडता क्योंकि हर चीज हर जगह समान रूप से मिल रही है। दुनिया जितनी सिमट गई उसके अनुपात से समस्याओं का भी वैश्वीकरण होता जा रहा है। उदाहरण के लिए हम आतंकवाद को ले सकते हैं। आतंकवाद ने दुनिया के हर कोने में अपना स्थान निश्चित किया है और वर्तमान परिवेश युद्ध से आक्रांत है। इसलिए मनुष्य के आपसी संबंध पतले तारों से अर्थात बहुत ही महीन बन गये है। और यह रिश्ते इतने कमजोर हुए हैं कि वे कभी भी टूट सकते हैं। सीधी-सादी बात पर यह रिश्ते टूट जाते हैं। उन्हें दोबारा जोडने के लिए फिर से बाजार जाना पडता है। बाजार में तमाम स्वादिष्ट चीजें मौजूद हैं किन्तु अपना जीवन अब बेस्वाद बन गया है और जीवन में कोई रूचि नहीं रही। पहले जीवन पाकर मानव खुद को धन्य समझता था, लेकिन अब उसे अपने जीवन पर रोना आ रहा है यही तथ्य उभरता है। जीवन में इतनी आपाधापी मची है कि भीड कभी खत्म होने का नाम नहीं लेती है। दाये हाथ को बाया हाथ नहीं सूझता फिर भी दोनों हाथ लगातार तालियाँ बजाने में व्यस्त और मस्त है।

भूमंडलीकरण से बाजारवाद में होनेवाली भयावह वृद्धि का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि कोई ऐसा है जो हमारे कपडों में छेदों को खोज रहा है ताकि उन छेदों के माध्यम से अपने हाथ, कुहनियाँ और पाँव उन कपडों में समा सके। अर्थात भूमंडलीकरण हर मार्ग से हमारे जीवन में दाखिल होना चाहता है और हमें प्रभावित करने की बार-बार कोशिश करता है। कोई ऐसा भी है जो हमारे भीतर की खाली जगह को देख रहा है ताकि वहाँ बचा-खुचा खाना ठूंसा जा सके। कोई है जो हमारे जबडों की जाँच कर रहा है ताकि वहाँ लालच के कुछ कौर रखे जा सके। कोई हमसे तपाक से हाथ मिला रहा है, हमारी गर्दनों में फूल की मालाएँ पहना रहा है। अर्थात भूमंडलीकरण और भूमंडलीकरण से समुचा परिवेश व्याप्त है। बाजार-फरोख्त

के लिए अपनी जेब में हाथ डालने के लिए, लोगों को बहला-फूसलाकर खरीदने के लिए, मनुष्य में लालच बढाने के लिए, उसे झूठी हमदर्दी दिखाकर, उसकी आवभगत और झूठे स्वागत को स्वीकार करने के लिए साधारण मनुष्य को भूमंडलीकरण विवश और मजबुर कर रहा है। आज आम आदमी भूमंडलीकरण के चक्रव्यूह में इसतरह फंस गया है कि उसकी नियति अभिमन्यु के समान हुई है इसके प्रति कोई संदेह नहीं है। वैश्वीकरण का सबसे बडा नुकसान यह है कि आज सारी दुनिया पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं और दुनिया विश्वयुद्ध की कगार पर जा बैठी है। चारो ओर आतंक से दुनिया आंतकित हुई है। सर्वसाधारण मनुष्य को रणभूमि की ओर धकेला जा रहा है और लाचार, बेबस आदमी युद्ध लडने के खातिर मजबुर हो रहा है।

अन्त में यह सब करनेवाला भूमंडलीकरण कह रहा है जब धीरे-धीरे मनुष्यों की तादाद कम हो जाएगी तो इस खेल के अंत में तुम्हें पुरस्कारों से सम्मानित किया जाएगा और एक आकर्षक पुरस्कार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। बस तुम्हें कुछ क्षणों की प्रतीक्षा करनी होगी और तुम मालामाल हो जाओगे।

भूमंडलीकरण के इस जहरिले माहौल के पक्ष को कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है। भूमंडलीकरण मानव जाति के प्रगति के लिए हैं यह आम अवधारणा है किन्तु इससे जिस अपसंस्कृति का निर्माण होता है उसे कवि ने यहाँ स्पष्ट किया है। यही इस कविता का उद्देश्य एवं प्रतिपाद्य भी है और इस कविता की प्रासंगिकता भविष्य में बरकरार रहेगी इसमें कोई संशय नहीं है।

3.3.8 'माँ की स्मृति' कविता का परिचय एवं आशय :-

हर मनुष्य के निजी जीवन में माँ का स्थान, उसकी जगह कितनी महत्वपूर्ण होती है इसे हर कोई जानता है। जब हम छोटे होते हैं तब अपने भाई-बहनों के साथ झगडते हैं कि 'माँ मेरी हैं ... माँ मेरी हैं' और जब हम बडे हो जाते हैं तब कहते हैं माँ तेरी है ...... माँ तेरी है और जब तक माँ जीवित होती है तब तक हमें उसका मूल्य समझने नहीं आता और न उसकी अहमियत को हम जानते हैं। जिस दिन माँ अपनी आँखों से दूर होती है, ओझल हो जाती है तब माँ का मूल्य, माता के होने का अर्थ इसपर हम लंबी चौडी बाते करते हैं। 'माँ की स्मृति' कविता भी इसी बात की ओर संकेत करती है। माँ जीवन भर हमारा साथ निभा नहीं सकती किन्तु जब तक वह हमारे साथ है उसे उचित सम्मान देना चाहिए और जिस दिन माता इस दुनिया से विदा हो जाती है उसकी यादों में तडपने के सिवा हमारे हाथ में कुछ भी नहीं रहता इस तथ्य को यह कविता उद्घाटित करती है। माता का याद बन जाना हर मनुष्य के लिए किसी क्षति से कम नहीं होता यह कवि की अवधारणा है जिसे कवि ने यहाँ स्पष्ट किया है।

आए दिन संसार में औरतों की मृत्यु विविध वजहों से हो जाती है। किन्तु कवि को यह प्रतीत होता था कि उसकी माँ अमर है, वह कहीं नहीं जाएगी। अधिक से अधिक वह पास पडोस में जाती रहेगी अन्यत्र कहीं नहीं। या फिर खेत और जंगलों की ओर, क्योंकि जैसे शाम हो जाती है चिडियाँ अपने घरौदों की ओर लौट कर आती है, माँ भी लौटकर आएगी। शाम के समय में आकाश अपने-अपने घरों की ओर लौटनेवाली और घरवापसी के लिए आनेवाली माताओं से भरा होता है।

कुछ वर्षों के बाद माँ बीमार हो जाती है और इलाज के लिए शहर आ गई। वहाँ उसे बार-बार अस्पताल जाना पडा था तब भी वह जल्दी घर वापस आने की घर लौटने की ही बात करती थी। उसकी जुबान पर यहीं शब्द रहते थे। रचनाकार को यह प्रतीत होता था कि शायद वह अपने बचपन के दिनों को याद करती होगी या बचपन का परिवेश उसकी आँखों के सामने साकार होता होगा। लेकिन अब वह दूसरा लोक था। क्योंकि चाहकर भी हम अतीत की ओर लौट नहीं सकते। उसे भी पता नहीं था कि कवि की माँ ने कब अपनी माँ और दादी से विदा ली थी। अर्थात उसकी माता और दादी से विदा होकर उसके लिए एक जमाना बीत चुका था।

वह सदैव यह कहा करती थी औरतों के दो घर और दो जन्म होते हैं। दोनों घर और दोनों जन्म में उसे न चाहते हुए इन अभागियों को मृत्यु तक साथ-साथ रहना पडता है। सब का सुख चाहने के लिए अगले जन्मों में भी ईश्वर उन महिलाओं को फिर एक बार नारी के रूप में ही जन्म देता है। अर्थात औरत का जन्म दूसरों का दु:ख दर्द दूर करने के लिए ही होता है इस बात की अवधारणा हर एक औरत के मन में होती है जिसका कवि ने संकेत दिया है।

जब उसकी पीडा अधिक बढ जाती थीं, जब उसे लगता था जिस धरती पर वह हवा की तरह थीं। वहाँ उसका बोझ बढता जा रहा है तो वह हर किसी से क्षमा याचना करती हुई कवि को नजर आती है। अर्थात माँ की सेवा करने से उसके बच्चों को जब कोई तकलीफ पहुँचती है तब हर माँ अपने मन में यही सोचती रहती है जिसे कवि की माँ भी अपवाद नहीं है।

आखिर जब उसका इस दुनिया से जाने का समय हुआ, तब वह अपने बादलों, खेतों, पेडों और हवाओं को बुला रही थी, उनसे विदा लेना चाहती थी। उसकी पाँचो बेटियाँ दौडती हुई चली आई। पता नहीं वह अपने बेटियों के चेहरें में क्या ढूंढती रही इसको कोई भी नहीं जान सका। फिर उसने जो कुछ कहा वह किसी को भी ठीक तरह से सुनाई नहीं दे रहा था। उसके शब्द उसके होठों के अंदर ही रहे और वह केवल बुदबुदाती थी जिसको समझ पाना किसी के लिए संभव ही नहीं था। 'कुछ कहों, कुछ बताओ, हमारे लिए कुछ कहो', सब यहीं पूछते थे लेकिन माँ की बात किसी की समझ में नहीं आ रही थी।

माँ की मृत्यु के पश्चात कवि ने उसके तमाम कपडे बाँट दिए। उसका बिस्तर, तकिया, शॉल, चश्मा, उसके जूते भी बाँट दिए। उसकी सारी दवाएँ फेंक दी और बदबूदार दाग-धब्बों से भरी हुई चादरें भी नजरों के सामने से हटा दी। कमरे में उसका कोई भी सामान नहीं बचा था। उसका अगर कुछ बचा था तो केवल उसका पुत्र अर्थात कवि। कवि ने उसकी (माता की) देह को एक बदबूदार नदी के किनारे ले जाकर उसे जलाया और उसकी आस्थियों को प्रवाहित किया। कवि ने इस क्रिया विधि को एक कर्मकाण्ड कहा है। और न चाहते हुए हम भी कर्मकाण्ड करते रहते हैं यह सर्वपरिचित बात है। यह केवल कवि की माँ से संबंधित नहीं है अपितु संसार से विदा होनेवाले हर माँ की यह नियति होती है उसे कवि ने स्पष्ट किया है।

अंतिम पंक्तियों में कवि ने सबसे बडी पते की बात कही है, कि मेरी माँ को कितनी जल्दी से एक स्मृति में बदल जाना था। एक पूर्वज की तरह एक कर्मकाण्ड में याद आना था। जीवन का मोह जब समाप्त

होता है तब आदमी मृत्यु की शरण में जाना चाहता है। उसकी मृत्यु के बाद वह एक स्मृति में बदल जाता है। हम अपने पूर्वजों का श्राद्ध करते हुए उन्हें साल में एक बार ही क्यों न सही लेकिन याद करते हैं और पूर्वजों की उस सूची में कवि की माता का नाम अब दर्ज हुआ है इसी बात का कवि को अफसोस है इसलिए 'माँ की स्मृति' यह कविता माँ और पुत्र के बीच होनेवाले संबंधों का जायजा लेती है और इसकी अंतिम पंक्तियाँ कविता के शीर्षक की सार्थकता को स्पष्ट करती है। यहीं इस कविता का उद्देश्य और संदेश भी है। यह कविता कल सार्थक थी, आज भी सार्थक है और भविष्य में भी प्रासंगिक रहेगी इसके प्रति कोई आशंका नहीं है।

3.3.9 'कॉलगर्ल' कविता का परिचय एवं आशय :-

कॉलगर्ल यह नाम सुनकर मन गहरी वितृष्णा से भर जाता है और उनकी ओर देखने का समाज का नजरिया कितना जहरिला एवं विषादपूर्ण है इस बात से हम सब परिचित है। यह कविता कॉलगर्ल की आपबीती का परिचय कराने में सक्षम है। कवि कॉलगर्ल के बारे में लिखता है कि यह अकेले नहीं हमेशा समुह में पकडी जाती है। किसी बंगले या शानदार फ्लॅट से सामान की तरह उन्हें निकाला जाता है अर्थात कभी पुलिस आती है तो कभी समाजसेवा संघटन के द्वारा इनपर एफ. आई. आर. फाइल करके इनको निकाला जाता है। टी. वी. या अखबारों में एक झलक दिखाने के बाद वे लापता हो जाती है। शायद उनकी सहेलियाँ ग्राहकों की तलाश में इधर उधर घूमने के लिए आजाद हो सकती हैं। राजधानी के भीड भरे व्यस्त बस अड्डों पर खुद की पहचान छिपाने के लिए वह शाम औरतों की तरह उनके बीच घर लौटती है। शहर में कुछ ऐसे एकांत कोने होते हैं जहाँ कभी भीड नहीं होती, वहाँ पर शाम होने के बाद वे प्रकट हो जाती है। उनका हुलिया किसी प्रेमिका की तरह अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करते हुए नजर आता है।

कवि एक बार उनमें से किसी एक का चेहरा देखना चाहता था। जिस चेहरे को वे विवश होकर अपने चेहरे को हमेशा अपनी चुनर में छिपाई रहती है। लेकिन इतने वर्षो के बाद एक भी कॉलगर्ल का चेहरा देखना कवि को संभव नहीं हुआ। उसे कोई कॉलगर्ल नजर नहीं आई। हाँ ! कवि ने कभी खुद में डूबी हुई खिलाखिलाती और मुस्कराती युवतियों के समुह जरूर देखे हैं। उनका मुआयना करनेवाले पुरूषों की तरफ उन्होंने कभी अपनी आँख उठाकर देखा तक नहीं। एक अंधेरी शाम में कवि ने एक युवती का अंधेरे में डूबा अंधेरा जैसा चेहरा जरूर देखा था। अगर उस पर कोई अचानक अप्रत्याशित आक्रमण न हो इसलिए बचाव की मुद्रा में उसने अपने दोनों हाथ अपने वक्ष पर बाँधे हुए थे। पता नहीं उसकी आँखों में संशय था, इंतजार था या धिक्कार था? यह सब पुरूष जाति के प्रति ही था, इसमें कोई दो राय नहीं थी।

उन लडकियों की अर्थात कॉलगर्ल की कहानी किसे और कैसे मालूम होगी? जो रोज सडक पर दिखती है और नुक्कडों पर भी अपने मन का डर छिपाते हुए ताकि उन्हें उनका परिचित पहचान न सके। या काम से लौटकर बसों में उंघती हुई या आँखें मुंद कर ध्यानस्थ बैठी हुई। इन लडकियों को कभी कई तथाकथित सभ्य पुरूष घुरते हुए नजर आते या कुछ मनचले लडके छेडते हैं। क्षण भर वे उनकी ओर क्रोध की मुद्रा से उनकी तरफ देखती रहती है लेकिन बहुत जल्द उनका गुस्सा ठंडा हो जाता है और अनमन भाव

से उनकी आँखे कही दूर शुन्य में झांकती हुई नजर आती है। जब पंछियों पर कोई आक्रमण होता है तो वे अपने आप उतर जाते हैं और इलाज ढूंढते हैं उसी तरह इनका आचरण रहता था। उस समय उन पुरूषों की निगाहों में देखो तो एक चमकदार बिम्ब नजर आता है कि जैसे इन्हें फिर से कोई कॉलगर्ल दिखाई दे रही है। हालांकि सभी लडकियाँ कॉलगर्ल नहीं होती किन्तु वासना प्रदीप्त पुरूषों की आँखों को सभी लडकियाँ कॉलगर्ल के समान ही नजर आती है यह युगीन सत्य इन पंक्तियों से प्रकट हो जाती है।

और जों लडकियाँ पकड में आती है क्या वे सचमुच कॉलगर्ल होती है यह इनके सिवा कोई और जान नहीं पाता। इन लडकियों की आपबीती केवल वहीं जानती है, अन्य कोई नहीं इसलिए इन लडकियों के आँखो के द्वारा होनेवाला अत्याचार सहने के अलावा इनके सामने कोई और रास्ता नहीं होता। ऐसी साहसपूर्ण व्यक्तित्व की स्वामिनी लडकियाँ अब दिखती नहीं है जो यह बेहिचक कह सके कि वे विज्ञापन करनेवाली मॉडेल्स हैं जो अब मुजरिम बनी हुई हैं। जिन्हें ढलती उम्र के कारण अब काम मिलना बंद हो गया है और वे दुर्भाग्य से इस व्यवसाय से जुड गई है। वह अपनी बेरोजगारी की वजहें भी प्रकट नहीं करती क्योंकि ऐसा करने के लिए उनकी कोई आजादी नहीं होती। हमारे मन की अश्लीलता उनकी फोटो में ही अपनी खूराक प्राप्त कर लेती है। किसी सुंदर स्त्री की तसवीर देखने के बाद हमारी दमित और कुण्ठीत वासनाएँ जागृत हो जाती है यह कवि का अभिमत है।

फिर भी इस महानगर में कोई कॉलगर्ल निश्चित ही होंगी। शायद उनके जीवन जीने का कोई तंत्र होगा, शहर के किसी तहखाने में उनका नारी संगटन होगा। नारी जाति का शत्रु एक समाज अपनी वासना बुझाने के लिए एक कॉलगर्ल ढूंढता फिरता है। अक्सर लंबी-चौडी चमचमाती कारों में तथाकथित अमीर घरानों के युवक घुमते फिरते नजर आते हैं। रास्ते पर दिखाई देनेवाली लडकियाँ में अपने लिए कॉलगर्ल की तलाश करनेवाले और संभावनाओं को खोजनेवाले युवक दिनरात भटकते रहते हैं। अपन इस अभियान में शायद सफलता प्राप्त करते होगे। उन लडकियों का उपभोग करने के बाद, उन्हें अपने लिए बेकार जानकर ताकि भविष्य में वह लडकी उनके लिए सिरदर्द न बन जाए, वे उन्हें खुद पुलिस के हाथों सौंप देते हैं। खुद सुर्खियों में आने से पहले या हेडलाइन से बचने के लिए अपनी गाडियों सहित वहाँ से फरार हो जाते हैं नए आखेट के स्थलों की ओर।

बहुत कम बार यह पाया जाता है कि वेश्यावृत्ति कोई भी महिला या लडकी आसानी से अपनाती नहीं है बल्कि उसे इस व्यवसाय में ढकेलने के लिए उसके परिचित पुरूष और कभी-कभी महिलाएँ भी जिम्मेदार होती हैं। अपनी इच्छा से इस व्यवसाय में देह का व्यापार करने हेतु बहुत कम महिलाएँ तैयार होती हैं और समाज एक ओर इन औरतों का उपभोग करता है तो दूसरी ओर इनकी आलोचना करने में भी पीछे नहीं रहता इसी कथ्य और तथ्य को उद्घाटित करने के लिए मंगलेश डबराल ने यह कविता लिखी है। यही इस कविता का उद्देश्य भी है।

3.3.10 'शरीर' कविता का परिचय एवं आशय :-

बढती या ढलती उम्र के साथ शरीर में जो बदलाव आते हैं उसे कवि ने इस कविता के माध्यम से चित्रित किया है। यह कविता शारीरिक अनुभूति एवं परिवर्तन के स्वरूप को स्पष्ट करती है और इस कविता के द्वारा रचनाकार ने अपना शारीर अनुभव को प्रस्तुत किया है। इस कविता में बाजारवाद की झलक भी मिलती है लेकिन बहुत ही संक्षिप्त शब्दों में क्योंकि इस कविता का प्रतिपाद्य शरीर के आसपास ही घूमता रहता है।

जिनसे हम प्रेम करना छोड देते हैं वे चीजें हमें छोडकर चली जाती है। यह कोई नई बात नहीं है बल्कि अपने जीवन की यह अनुभूति भी है। वह चीजे अपनी ही जगह ओझल होती है। हमारे शरीर भी इस तरह हम से धीरे-धीरे दूर होते जाते हैं। 'खुदा जब हुस्न देता है नजाकत आ ही जाती है' यह जवानी के संदर्भ में लिखा हुआ वाक्य ढलती उम्र के साथ असत्व प्रतीत होता है। एक समय ऐसा भी होता है जब हमारे हाथ-पाँव कितने सुंदर होते हैं किन्तु आज वह हमें बेगाने लगते हैं। यह हमारा चेहरा जो कभी हमारी नजर में दुनिया का सबसे सुंदर चेहरा होता है आज किसी दूसरे शरीर का या उधार सा चेहरा लगता है। यह दिमाग जो दुनिया में अकेला जगमग करता रहता था अब एक छोटी सी भुरभुरी चट्टान जैसा प्रतीत होता है। हमारे शरीर का आकार सुनिश्चित करनेवाली यह हडिड्याँ जो मृत्यु के बाद भी चमकती रहती है अब एक खटखट में बदल गई है। शरीर के भीतर से दरवाजा खोलने का प्रयास कर रही है।

ईश्वर या प्रकृति ने हमें इतनी सुंदर देह दी है किन्तु इसके साथ हम मनमाना व्यवहार करते हैं। जैसे कि यह देह हमें कुछ ही समय के लिए मिली है। 'मुफ्त माल दिले बेरहम' की तर्जपर हम शरीर के साथ व्यवहार करते रहते हैं। अपने शरीर को लूटते रहते हैं। हमने कभी अपनी देह के स्पंदन अर्थात संवेदना नहीं सुनी। उसके दर्द को स्पर्श नहीं किया, कभी अपनी देह को उसकी निबिड एकांकी सुंदरता में नहीं देखा। यहाँ तक की हमने यह भी कभी सोचा नहीं कि इस सुंदर शरीर में, भीतर एक आत्मा रहती है। शरीर के उपभोक्ता हम कभी आत्मा से प्रेम करना चाहिए इस बात को भी जान नहीं सके। अर्थात न कभी हमने अपने शरीर से प्रेम किया और न उसके अंदर बसनेवाली आत्मा से भी प्रेम किया। हमने तो केवल शरीर का इस्तेमाल अपनी निजी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए ही किया। इस शरीर के मूल्य को न कभी हमे जाना और न कभी पहचाना।

अब कवि बाजारवाद के विराट् रूप का वर्णन करता है। बाजारवाद के विराट् और स्थुल शरीर का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इस विराट् एवं स्थुल शरीर के विस्तार के लिए दिन रात खुली हुई व्यायामशालाएँ अर्थात जिम है। फूले हुए सीने को दिखाने और बाजूओं की मोटी मछलियों के प्रदर्शन के लिए कई तस्वीरे दिखाई देती हैं। टांगे और बाहों पर जो फालतू बाल उडाए जाने के लिए कई करामाते मौजूद है। उनका मैल छूडाने के लिए नित नए साबुनों के विज्ञापन हमें नजर आते हैं।

शरीर के कमजोर नसों को ठीक करने के लिए खुशबुओं की फूहारें भी आज उपलब्ध है। शारीरिक क्षमताओं का इतना शोर और प्रचार करने के लिए यह सब कार्यरत है। शरीर की मृत्यु छिपाने के खातिर शरीर के जन्म के उत्सव अर्थात बर्थ डे सेलिब्रेशन लगातार बढते जा रहे हैं।

'शरीर' इस कविता के द्वारा कवि ने जीवन की विडंबना और विसंगतियों के पक्ष को यहाँ उजागर किया है। कवि की यह अवधारणा है कि हमें एक बार ही मानवी शरीर प्राप्त होता है और इस शरीर का हमें सही उपयोग करना चाहिए। अगर हम निजी देह से प्रेम करते हैं तो मरते दम तक हमारी देह हमारा साथ नहीं छोडती। इसके विपरित अगर हम शरीर से प्रेम करना छोड देते हैं उसकी चिंता नहीं करते तो शरीर भी हमारा साथ देना छोड देता है और निरोग तथा निरामय देह रोग और शारीरिक दिक्कतों से घिर जाती है और हमें वह कमजोर देह ढोने के अलावा हमारे सामने अन्य कोई विकल्प नहीं रहता इसी उद्देश्य को लेकर कवि ने इस कविता का सृजन किया है।

3.3.11 'पैसा' कविता का परिचय एवं आशय :-

'पैसा' यह कविता भी भूमंडलीकरण के कारण दुनिया में जो परिवर्तन हुए इसका चित्रण करती है। आदमी को बचपन से ही पैसे की प्रति लगाव एवं मोह होता है और उसकी अंतिम परिणति पैसा ईश्वर ही है इस अवधारणा में होती है जिसे कवि ने इस कविता के द्वारा स्पष्ट किया है। पैसा अर्थात मनुष्य की धन लालसा कभी खत्म नहीं होती और वह जीवनभर पैसे के पीछे भागता रहता है इसी सत्य को कवि ने प्रस्तुत किया है।

बचपन में पैसा छोटे-से सिक्के की शक्ल में दिखाता था। सिक्के की चमक अनूठी थी। वह चमकता था और कवि उसे उछालता हुआ चलता था। वह मन में सोचता था कि हमारे यहाँ जो पहाड हैं उन पहाडों पर ही पत्थरों के आसपास सिक्का पैदा होता है । सिक्के के बदले मूंगफली, इलायची दाना या लेमनचूस भी मिलती थी। बचपन के उस जीवन में एक नई आवाज और नया स्वाद उस सिक्के का था।

एक दिन कवि ने एक सिक्का आकर्षण के कारण निगल लिया। वह सिक्का उसके गले में अटक गया। घर के लोगों ने उसकी पीठ पर घौल जमाये तब वह सिक्का बाहर आ गया। उस दिन रचनाकार को सचमुच पैसे से डर प्रतीत हुआ। कवि कहता है पैसे से मेरे डर का पहला पडाव था। जब वह बडा हुआ तो उसने सिक्के के जमा होने के और खनखनाने के दृश्य देखे। पैसे के गिने जाने के और दुगुने-तिगुने होने के वृद्धि के रहस्यमय दौर देखे।

सृष्टि का जैसे-जैसे विकास हुआ और अर्थ को अर्थ प्राप्त हुआ पैसे की अहमियत बढने लगी। वैश्वीकरण के इस युग में बाजारवाद प्रबल हो रहा है और वर्तमान अर्थशास्त्र एडम स्मिथ का अर्थशास्त्र है, वह कौटिल्य का अर्थशास्त्र नहीं है। आज बाजारवाद को वृद्ध पूँजीवाद की संतान माना जाता है और निवेश करने वालों की तादाद दिन ब दिन बढती ही जा रही है। लोग पागलों की तरह पैसे के पीछे दोड रहे हैं और पैसा ही वर्तमान युग का भगवान है यह लगभग सभी की अवधारणा बन चुकी है।

बडे-बडे कारों के काफिले दूर-दूर तक जाते हैं। नए आखेट स्थल की टोह में विमान उडानें भरते हैं। रात्रि के समय समुद्र पर झिलमिल करती हुई सोने की सभ्यता से परिपूर्ण नौकाएँ तैरती हुई नजर आती है। धन राशि पर सवार धर्म मार्तण्ड एवं महंतो की शोभायात्रा निकाली जाती है। है न कितनी बडी मजेदार बात, जो साधु महंत धन को मिट्टी कहते हैं वे ही अपने शरीर पर सुवर्ण अलंकार पहनकर शोभायात्रा में शामिल हो जाते हैं। ज्यादा पैसे की चाहत में आदमी खोज करता है और दिनभर लूटपाट करते हुए रात को लौटता है। वह खिलखिलाता है, उसके चेहरे पर कृर हास्य है। वह चुटकले भी सुनाता है और धनराशि पर बैठकर अपनी तस्वीर खींचता है और इसे अपनी सब से बढिया तस्वीर मानता है। मेरे पास इतना अकूत धन है और 'मैं बडा आदमी हूँ धनवान हूँ, अमीर हूँ, करोडपति हूँ' यह दुनिया को दिखाना चाहता है और उसी तरह से उसका आचरण भी होता है।

दारिद्रय या दरिद्रता हमारे देश में किसी भीषण अभिशाप से कम नहीं है। कवि ने एक बार दरिद्रता को बडी निकटता से देख लिया। उसने घर की अलमारी और मेज की दराजों के साथ अपनी जेबों से बहुत सारे कागजात इकठ्ठा किये। ढेर सारे कागज, जिसमें रसीदे थी, मुडे - तुडे पूर्जे थे, खाली लिफाफे थे, पुरानी डायरियाँ थीं। सब पृष्ठों पर पुराने हिसाब-किताब, लेखा-जोखा, गुणनफल जोड घटाव की असंख्य संख्याएँ थी। चिट्ठियों पर लिखे हुए अक्षर धुंधले और धूमिल बन गये थे जिन अक्षरों पर कवि की जिन्दगी का हिसाब था। काव्यपंक्तियों के अलग-बगल के बीच अनेक शून्य घूसे हुए थे जो कवि को नजर आते हैं। शब्दों को काटकर लिखी हुई संख्यांएँ चक्रवृद्धि करती हुई उन सब को कवि देखता है। मन ही मन में कवि सोचता है मैंने आज तब जितनी कर्जो की किश्तें जमा कर दी, उतना ही कर्ज अब तक उसने हिसाब में दर्ज है। साँप-सीढी के प्रतीक को लेकर कवि ने अपनी बात को स्पष्ट किया है। साँप-सीढी खेलते समय आदमी उँचाई पर चला जाता है किन्तु बीच में कुछ ऐसा होता है कि वह साँप के मुँह से नीचे गिरता है और अपने खेल की शुरूआत उसे नए सिरे से करनी पडती है। जितनी कर्ज की किश्ते उसने जमा की थी, फिर भी उतनाही कर्ज शेष रहता है। जीवन का भी वहीं हाल है। हर बार आदमी को जीवन की शुरूआत ऩए ढंग से करनी पडती है। अपने जीवन को सुचारू ढंग से दोबारा बनाना पडता है। कवि को अचानक एक आत्मीय प्रिय व्यक्ति दिखाई देता है। वह कवि को इसलिए प्रिय था और कवि का आत्मीय था कि वक्त आने पर कवि उससे उधार पैसे मांगता था और वह आदमी उसे पैसे देता था।

इस तरह इस कविता के माध्यम से कवि ने पैसे की महत्ता का वर्णन किया है। वर्तमान युग अर्थ युग है और वह युग वैश्वीकरण, बाजारवाद और निजीकरण के कारण पैसे की अहमियत को बढा रहा है इस तथ्य को उद्घाटित करने वाली यह रचना निश्चित ही बाजारवाद की महत्ता को प्रमाणित करती है इसके प्रति कोई संशय नहीं है।

3.3.12 मंगलेश डबराल की कविताओं में चित्रित भूमंडलीकरण :-

पाठ्यक्रम में मंगलेश डबराल की दस कविताएँ निर्धारित की गई है। मूल रूप से मंगलेश डबराल समकालीन कवि हैं इसलिए उनकी कविता में समकालीन संदर्भ आसानी से उभर कर आते हैं और यह सहज

एवं स्वाभाविक रूप से उद्घाटित हो जाते हैं। मनए युग में शत्रुफ मंगलेश डबराल का काव्य संकलन 2013 ई. में प्रकाशित हुआ था। भूमंडलीकरण की आहट विगत शती के अंतिम दशक से ही सुनाई दे रही थी अतः इस संकलन में भूमंडलीकरण को लेकर अनायास संदर्भ उभरते हैं। इस संदर्भ में और एक बात द्रष्टव्य है कि कवि ने भूमंडलीकरण को मानवजाति का शत्रु माना है इसलिए कवि के मन में भूमंडलीकरण के संदर्भ में कुछ नकारात्मक अवधारणाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती है जो इस प्रकार है। भूमंडलीकरण एक मुख्य अर्थव्यवस्था है किन्तु इससे वस्तु और नौकरी में वृद्धि होती नहीं।

कवि कहता है कि हमारा शत्रु भी अब एक नये युग में प्रवेश कर रहा है। ब्रँडेड कपडे और जूतों के साथ वह नई सदी के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है और इस घर के तहखाने में छिप जाता है। हमारा यह शत्रु एक जगह नहीं रहता, वह सदैव अपने स्थान बदलता रहता है और इसकी मदद करनेवाले कई साथी हैं जिनके बलबुते वह अपनी तिकडम बाजी से लोगों को भ्रमित करता है। वह अत्याधुनिक उपकरण जैसे टी. वी., मोबाईल, संगणक और आइ पॅड की तह तक जा पहुँचा है। किसी नई चमचमाती गाडी में भी उसका साया नजर आता है लेकिन पल में वह जगह बदल देता है। वह अलग-अलग फॅशैन परेड में सहभागी होता है और विज्ञापनों के द्वारा अपना अस्तित्व दिखाता है। हमारा शत्रु हमारे सामने कभी आता नहीं और न हमसे मिलता है बल्कि हमारे साथ मित्रता का व्यवहार करते हुए कहता है -

'कभी-कभी उसका संदेश आता है कि अब कहीं शत्रु नहीं
हम सब एक दूसरे के मित्र है
आपसी मतभेद भुलाकर आइए हम एक ही प्याले से पियें
वसुधैव कुटुंबकम हमारा विश्वास है।'

बस्तर जिले में बडी तादाद में आदिवासी जनसमुह रहते हैं। उनके नाम अलग-अलग हैं, उनकी जातियाँ अलग-अलग हैं किन्तु वे सब एक ही है और आदिवासी है। भूमंडलीकरण की वजह से उनके जंगल, जल और जमीन छीनी जा रही है और इन सब के स्वामी अब दर-दर भटकने वाले भिखारी बन चुके हैं। जब कोई पत्रकार उनसे मुलाकात करने के लिए वहाँ जाता है तो गुस्से में आकर वह कैमरे की तरफ देखता है और क्रोध तथा आवेश में आकर कोई गीत गाता है। अब उसके पास कुछ भी बचा है केवल उसके वाद्य यंत्र उसके पास है जिसे तीव्र ध्वनि में बजाकर वह अपनी बगावत का ऐलान करता है। मादर, तुरही और बांसुरी को वह जोर जोर से बजाने लगता है और लोहे, कोयले और अभ्रक की खदानों को वह पुकारता है। क्योंकि इस धरती पर उसका स्वामीत्व था जो अब नहीं रहा। इसकी बगावत की प्रलय ध्वनि सुनकर -

'जो लोग उस पर शासन करते हैं
वे तुरंत अपनी बंदूके निकालकर ले आते हैं।'

अर्थात यहाँ उसके विद्रोह की इतिश्री हो जाती है और उसके विद्रोह को दबाया जाता है। शायद यही आदिवासियों की नियति है और भूमंडलीकरण उनके लिए एक अभिशाप बनकर उभरता है।

'यथार्थ इन दिनों' कविता भी भूमंडलीकरण के प्रभाव को रेखांकित एवं रूपायित करती है। एक आदिवासी को उसके जंगल से खदेडने का खाका बन चुका है। विस्थापित लोगों की एक भीड अपने बचे खुचे सामान को पोटलियों में भर रहे हैं। उस आदिवासी को किसी अज्ञात दिशा और अज्ञात भविष्य की ओर ढकेलने की योजना तैयार हो चुकी है। फिर भी गर वे अपना स्थान छोडने के लिए तैयार नहीं हो जाते तो उनपर हवाई जहाज से बम बरसाने की भी योजना है। इसलिए कवि कहता है कि आदिवासी समुह का भविष्य बहुत ही धूमिल है और लाचार आदिवासी समुह के सामने कोई और विकल्प नहीं है –

'यथार्थ इन दिनों बहुत ज्यादा यथार्थ है
उसके शरीर से ज्यादा दिखाई दे रहा है उसका रक्त।'

मयह नंबर मौजूद नहीफ कविता भूमंडलीकरण के प्रभाव को चित्रित करती है। कोई मनुष्य पुराने नंबर को डायल करता है लेकिन उसे जबाब नहीं मिलता। उस पुराने पते पर खोज बीन के लिए जब वह जाता है तो वहाँ बहुत कम लोगों उसे नजर आते हैं। अंत में एक आदमी प्रकट होता है और कहता है कि ममैं वह नहीं हूँ जिससे तुम बात करते थे यह वह नंबर नहीं है जिसपर तुम सुनाते थे अपनी तकलीफ।फ वह मनुष्य हैरान हो जाता है और अपना पुराना रिकार्ड निकालकर नंबर की पडताल करता है और फिर एक बार नही नंबर डायल करता हैं और तब दूसरी तरफ से आवाजें आती है किन्तु वह आवाजें कुछ और बातें करती थी जैसे –

'अब दूसरे ही नंबर मौजूद हैं पहले से कहीं ज्यादा तार–बेतार
उनपर कुछ दूसरी तरह के वार्तालाप
महज व्यापार महज लेनदेन खरीद–फरोख्त की आवाजें
लगातार अजनबी होती हुई।'

हताश होकर कवि कोई और नंबर मिलाता है और उस आवाज के बारे में पूछता है कि मुझसे बात करनेवाली व्यक्ति कहाँ गई? जो अक्सर यह कहती थी –

'दरवाजे खुले हुए हैं तुम यहाँ रह सकते हो
चले आओ थोडी देर के लिए यों ही कभी भी इस अंतरिक्ष में'

भूमंडलीकरण के कारण दुनिया सिमट तो गई है, वैश्वीक देहात में बदल गई है किन्तु लोग नजदीक आने के बजाय एक दूसरे से दूर–दूर जा रहे हैं और भूमंडलीकरण की इसी त्रासदी को कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है। 'भूमंडलीकरण' शीर्षक की कविता सही अर्थ में भूमंडलीकरण के बढते प्रभाव का चित्रण करती है। जब भूमंडलीकरण का आगाज हुआ था लोगों ने अपने दिल में तरह–तरह के खयाल बांधे थे। भूमंडलीकरण की वजह से हमारा जीवन खुशहाल और सुखी होगा। जीवन में अधिक समस्याएँ नहीं रहेगी

और जीवन आनंद से परिपूर्ण होगा आदि। किन्तु यह सम्पूर्ण कविता भूमंडलीकरण की तीव्र आलोचना करती हुई प्रस्तुत होती है।

कोई आदमी अचानक किसी चीज से टकराकर लडखडाता है तो उसे अपने अंदर से ही हंसने की आवाज आती है। संभलने के बाद वह आदमी हकलाकर बोलने का प्रयास करता है तो उसे कोई कहता है कि तुम फिर पकड लिए गए। संसार में ऐसे भी कई लोग हैं जो अपनी अयोग्यता को छिपाकर रखते थे वे अब मेरी ही तलाशी ले रहे हैं और मेरे लिखे हुए शब्दों को विपरित ढंग से पढ रहे हैं। मेरी भाषा में उगे हुए पेडों, पहाडों को समतल कर रहे हैं और इन नदियों का पानी सुखा रहे हैं। जाहिर है भूमंडीलकरण की वजह से व्यापार में जो अपरिमित वृद्धि हुई है उसके ही यह सब दुष्परिणाम है ऐसा कथन सही होगा। प्रकृति का दोहन यह एक सरे आम बात हो रही है।

भूमंडलीकरण के परिणाम को कवि ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है -

'बडी तेजी से दुनिया बनती जा रही है एक बडा गाँव
लोभ क्रोध ईर्ष्या व्देष के लिए अब कहीं नहीं जाना पडता
हर चीज समान रूप से मिलने लगी है हर जगह
मनुष्यों के संबंध बहुत पतले तारों से बांध दिये गये हैं
जो बात-बात में टूट जाते हैं
उन्हें जोडने के लिए फिर से जाना होता है बाजार।'

भूमंडलीकरण की संतान के रूप में अब बाजारवाद उभर रहा है। बाजारवाद आदमी को खरीद फरोख्त करने के लिए विवश और बेबस कर रहा है और बाजारवाद की अंतिम परिणति युद्ध में हो रही है इसलिए कवि लिखता है-

'कोई हमें लगातार युद्ध के मैदान की तरफ ले जा रहा है
और कह रहा है धीरे-धीरे जब तुम बहुत कम मनुष्य रह जाओगे
तो इस खेल के अंत में तुम्हें मिलेगा एक बडा-सा पुरस्कार।'

भूमंडलीकरण अंत में मानवजाति की युद्ध की ओर ले जा रहा है यह कवि का कथन है और उसके अंजाम हम सभी ने देखे हैं और आज सम्पूर्ण दुनिया विनाश की कगार पर जा पहुँची है। मानवजाति का भविष्य अंधेरे में डूबने की सम्भावना है यह कवि का अभिमत है।

मानवी रिश्ते बाते संबंध अब पहले जैसे मधुर नहीं रहे हैं। क्योंकि अब एक ओर मानवी मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं तो दूसरी ओर रिश्ते-नातों की अहमियत पर भी प्रश्नचिह् न उपस्थित हो रहे हैं। दुनिया एक गाँव बन तो गई लेकिन इस गाँव में सद् गुणों के अलावा हमें दुर्गुण ही अधिक नजर आ रहे हैं। दुनिया के हर कोने की चीजें हमारे शहर में मिलती हैं लेकिन उससे चिपककर कई दुर्गुण भी हमारी बस्ती में आए हैं उनका

मुकाबला हम किस तरह से कर सकते हैं? रहीम ने प्रेम के धागे का निरूपण करते हुए कहा था कि यह धागा बहुत ही कोमल होता है, इसे संभलकर रखना चाहिए। आज उन धागों को, तारों को जोडने के लिए हमें बाजार की ओर जाना पडता है।

भूमंडलीकरण तेजी से भूमंडीकरण में परिवर्तित हो रहा है जहाँ तमाम स्वादिष्ट चीजें एक साथ मिलती तो हैं लेकिन अब हमारा जीवन ही बेस्वाद और रूचि हीन बन गया है। जीवन की सरगर्मियाँ और आपाधापी इस कदर बढ गई है कि –

'दायें हाथको बायाँ हाथ नहीं सूझता
हालांकि दोनों हाथ लगातार तालियाँ बजाते हैं।'

भूमंडलीकरण के प्रभाव का वर्णन करते समय कवि की कलम तेज और नुकीली बन जाती है और कवि लिखता है –

'कोई है जो हमारे कपडों में छेदों को खोज रहा है
ताकि उनमें अपने हाथ कुहनियाँ और पैर डाले जा सके
कोई है जो हमारे भीतर खाली जगह देख रहा है
ताकि वहाँ ठूंसा जा सके बचा-खुचा खाना
कोई हे जो हमारे जबडों को जाँच रहा है
ताकि वहाँ लालच के कुछ कौर रखे जा सकें
कोई तपाक से हाथ मिला रहा है
हमारे गर्दनों को फूलमालाओं से लाद रहा है'

'कॉलगर्ल' कविता भी भूमंडलीकरण के प्रभाव को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। कोई भी औरत आसानी से अपना शरीर नहीं बेच सकती। इसके पीछे उसकी कुछ मजबुरियाँ होती हैं। वर्तमान संस्कृति विज्ञापन संस्कृति भी है। हर जगह विज्ञापन ही दिखाई देते हैं। जिस्मफरोशी करनेवाली कोई भी औरत एक विज्ञापन की भांति ही होती है। इसलिए कवि लिखता है –

'और जो पकड में आती हैं क्या वे सचमुच कॉलगर्ल होती हैं
यह इनके अलावा और की नहीं जान सकता
ऐसी साहस की पुतलियाँ अभी दिखती नहीं जो यह बेहिचक कह सकें
और वे विज्ञापनी मॉडलें भूतपूर्व देहें जो अब मुजरिम बनी हुई हैं
जिन्हें ढलती उम्र के कारण काम मिलना बंद हो गया है
अपनी बेरोजगारी की वजहें भी प्रकट नहीं करती है।'

यहाँ रचनाकार ने भूमंडलीकरण से प्रभावित वेश्याओं की करूण गाथा का वर्णन किया है। प्रत्येक औरत एक कहानी होती है। भूमंडलीकरण की वजह से एक देश से दूसरे देश में आँखों जिस्मफरोशी के लिए आती जाती रहती है यह बात भी इस संदर्भ में द्रष्टव्य है।

'शरीर' कविता की भूमंडलीकरण की हकीकत को बयान करती है। दुनिया एक विराट मंच है किन्तु अब वह सिमटती जा रही है फिर भी उसका विराट अस्तित्व आज भी अक्षय है। उस विराट व्यक्तित्व के लिए दुनिया में कौनसी चीजे उपलब्ध हैं इसपर कवि ने अपनी बात रखते हुए लिखा है–

'अब हर तरफ एक विराट स्थूल शरीर पसरा हुआ है
जिसके विस्तार के लिए रात–दिन खुली हुई व्यायामशालाएँ हैं
फूलाए हुए सीनों और बाजूओं की मोटी मछलियों का प्रदर्शन
टांगों और बाहों के फालतू बाल उडाने की करामते उनका मैल छुडाते हुए नित नए साबुन।'

शरीर की दुखती रगों को आराम देने के लिए खुशबुओं की फूहारें आज बाजार में उपलब्ध है। आज शरीर में आत्मा होती है इस बात को सभी भूल गए हैं और शरीर की ओर सब की नेह लगी रहती है इसलिए कवि कुपित होकर अंत में लिखता है –

'शरीर की मृत्यु छिपाने के लिए
लगातार बढते जाते उसके जन्म के उत्सव।'

'पैसा' यह कविता भी भूमंडलीकरण के प्रभाव को स्पष्ट करती है। पहले लोग जंगल में जाकर जानवरों का शिकार करते थे। आज लोग पैसे के पीछे दौडकर उसका शिकार करने की फिराक में होते हैं। दुनिया में बढता हुआ व्यापार और पैसों का लेनदेन भूमंडीकरण के लक्षणों को प्रकट करता है। वर्तमान सभ्यता संस्कारों की नहीं बल्कि सुवर्ण की सभ्यता है और जिसके पक्ष अधिक धन वहीं दुनिया में श्रेष्ठ और चतुर है यह अवधारणा अब बढती जा रही है। आज का युग अर्थयुग है किन्तु इस युग में एडम स्मिथ के अर्थशास्त्र का जादू सब के सिर पर चढकर बोल रहा है इसलिए कवि लिखता है –

'इन दिनों लोग पैसे का शिकार करते दिखते है
यह हमारे युग का प्रमुख व्यवसाय है
बडी–बडी कारों के काफिले दूर–दूर तक जाते हैं
नयी शिकारगाहों की टोह में विमान उडाने भरते हैं।'

पैसे का शिकार करनेवालों के प्रति कवि लिखता है –

'ज्यादा पैसे की खोज में
दिन भर लूटकर झपटकर जो लौटता है

वही खिलखिलाता है सुनाता चुटकले

पैसे की ढेर पर बैठकर खींचाता अपनी सबसे अच्छी तस्वीर।'

जिस प्रकार किसी खेल में चढाव-उतार होते हैं वही नियम भूमंडलीकरण के संदर्भ में भी दिखाई देता है -

'मैं जितना कर्ज चुकाता उतना घटाता

घुम फिरकर उतना ही जोड आता

एक सीढी से उपर चढता

एक साँप के मुँह से नीचे गिरता।'

मंगलेश डबराल की पाठ्यक्रम में निर्धारित कविताओं का अध्ययन करने के बाद यह पता चलता है कि भूमंडलीकरण यह उनकी कविता का एक अभिन्न अंग है। भूमंडलीकरण के विविध प्रभावों की मंगलेश डबराल ने अपनी कविताओं में चर्चा की है और भूमंडलीकरण ने जीवन को किस तरह से प्रभावित किया है इस पर कवि मंगलेश डबराल ने अपने काव्य के द्वारा स्पष्ट किया है। इनकी कविताओं में आदिवासी, नारी, साधारण मानव और कॉलगर्ल आदि के साथ राजनेताओं का चित्रण मिलता है जो भूमंडलीकरण के यथार्थ को स्पष्ट करता है।

3.3.13 समकालीन कविता की प्रवृत्तियों के तत्व और मंगलेश डबराल की कविताओं में चित्रित समस्याएँ:-

समकालीन कविता वर्तमान युग की विडंबनाओं, संत्रासों एवं आम आदमी की पीडा तथा घुटन का सशक्त दस्तावेज है। समकालीन कवियों ने मूल्य क्षरण, मूल्य संकट अथवा मूल्यहीनता को अपनी कविता का कथ्य बनाया है। वर्तमान समय में मानवीय संबंधों में रिक्तता और तिक्तता नजर आती है। मंगलेश की कविता व्यवस्था विरोध और असहमति की कविता है लेकिन यहाँ विरोध का स्वरूप पूर्ववर्ती विरोध से बदला हुआ है और उनका मानवीय मूल्यों पर अधिक विश्वास है इसलिए वे इन मूल्यों को बचाने के लिए सदैव प्रयासरत रहते हैं। समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार से उद्घाटित होती हैं -

1. जीवन की सही पहचान
2. वाद मुक्ति
3. यथार्थ का प्रत्यक्ष साक्षात्कार
4. समाजीकरण की प्रवृत्ति
5. संघर्ष के आयाम
6. देशकाल वातावरण सम्बद्धता
7. व्यंग्यात्मकता

8. जुझारूपन

9. नारी विमर्श

10. दलित वमर्श

इन सभी तत्वों के आधार पर मंगलेश डबराल की कविताओं में विभिन्न समस्याओं का जिक्र मिलता है जो उजागर होता है। बुराई के खिलाफ संघर्ष करना साहित्य का परम कर्तव्य है और विरोध कविता की नैतिक शक्ति है। समकालीन कविता की प्रथम विशेषता है जीवन की पहचान जिसे मंगलेश डबराल ने अपनी कविता के द्वारा स्पष्ट किया है। जीवन की सही पहचान दूसरों के साथ संवाद स्थापित करने से होती है। अगर जीवन में संवाद का नामोनिशान नहीं रहता तो उस जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं है इसलिए कवि के मन में यह आकांक्षा है –

'जहाँ भी जाता हूँ हताशा में कोई नंबर मिलाता हूँ
उस आवाज के बारे में पूछता हूँ जो कहती थी
दरवाजे खुले हुए हैं तुम यहाँ रह सकते हो
चले आओ थोडी देर के लिए यों ही कभी भी इस अंतरिक्ष में।'

'कभी भी' शब्द सबसे महत्वपूर्ण है जो जीवन की सही पहचान को प्रस्तुत करता है।

'कॉलगर्ल' के संदर्भ में रचनाकार ने जो लिखा है वह जीवन की सही पहचान का एक आइना ही है –

'वे विज्ञापनी मॉडले भूतपूर्व देहें जो अब मुजरिम बनी हुई हैं
जिन्हें ढलती उम्र के कारण काम मिलना बंद हो गया है
अपनी बेरोजगारी की वजहें भी प्रकट नहीं करती हैं
हमारी अश्लीलता उनके फोटो में ही अपनी खूराक पा लेती हैं।'

समकालीन कविता की दूसरी विशेषता है वाद मुक्ति। कवि मंगलेश डबराल ने खुद को किसी भी वाद की परिधि में कैद नहीं किया है। कविता का कोई वाद विशेष कवि की सीमाओं को संकुचित करता है जिससे कवि की रचनाओं का दायरा सिमट जाता है। कवि ने विवेच्य कविताओं में कभी भी, कहीं भी उसकी कविता के सम्प्रदाय के संदर्भ में अपनी बात कहीं नहीं, इसलिए मंगलेश डबराल की कविता वाद विशेष से मुक्त है ऐसा कथन अनुचित नहीं है।

मंगलेश डबराल यथार्थ के पक्षधर कवि हैं। विरोध उनकी कविता की नैतिक शक्ति हैं और इसलिए उनकी कविता में यथार्थ तेजस्वी रूप में प्रकट होती है। कवि जब यथार्थ का सामना करता है तो कवि को यह महसूस होता है कि वह यथार्थ का पीछा नहीं कर रहा है अपितु यथार्थ ही उसका पीछा कर रहा है यह

मंगलेश डबराल की कविता की प्रमुख विशेषता है जिसे कवि ने स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जिन्दा मनुष्य की तुलना में मृत मनुष्य बहुत बोलता है –

> 'एक मरा हुआ मनुष्य इस समय
> जीवित मनुष्य की तुलना में कही अधिक ज्यादा कह रहा है
> उसके शरीर से बहता हुआ रक्त
> शरीर के भीतर दौडते हुए रक्त से कहीं ज्यादा आवाज कर रहा है।'
> यथार्थ का पीछा करना लगभग बेमानी सी चीज है क्योंकि –
> 'यथार्थ इन दिनों इतना चौधियाता हुआ है,
> कि उससे आँख मिलाना मुश्किल है
> मैं उसे पकडने के लिए आगे बढता हूँ
> तो वह एक हिंस्त्र जानवर की तरह हमला करके निकल जाता है।'
> इसलिए कवि अंत में इस नतीजे पर पहुँचता है –
> 'यथार्थ इन दिनों बहुत ज्यादा यथार्थ है
> उसके शरीर से ज्यादा दिखाई दे रहा है उसका रक्त।'

समाजीकरण की प्रवृत्ति हर एक मानव प्राणी में विद्यमान होती है। कोई भी जनसमुह इसे अपवाद नहीं है। यह बात संपूर्ण मानव जाति के संदर्भ में सार्थक प्रतीत होती है। आदिवासी समुह के समाजीकरण के संदर्भ में कवि लिखता है –

> 'इंद्रावती गोदावरी शबरी स्वर्णरेखा तीस्ता बराक कोयल
> सिर्फ नदियाँ नहीं उनके वाद्ययंत्र हैं
> मुरिया बैगा संथाल मूंडा उराव डोंगरिया कौंध पहाडियां
> महज नाम नहीं है वे राग हैं जिन्हें वह प्राचीन समय से गाता आ रहा है
> और यह गहरा अरण्य उसका अध्यात्म नहीं उसका घर है।'

यह समाजीकरण की प्रवृत्ति है जिससे कवि ने विभिन्न आदिवासी जन जातियों का एक समाज बनाने का प्रयास किया है। यहाँ तक नदियों के नाम और आदिवासियों के अलग-अलग समुह को भी कवि ने एक आदिवासी समाज मानकर उनके विशिष्ट जातिय पहचान देने की कोशिश की है।

वैश्वीकरण की वजह से दुनिया एक देहात बन गई है और इस देहात में रहनेवाले लोग आधुनिक उपकरणों की सहायता से विश्व के कोने-कोने में सम्पर्क करते हुए एक समाज बनने की क्रिया में सहभाग ले

रहे हैं। 'वसुधैव कटुंबकम' और 'सारा जहाँ हमारा' जैसे नारे हमारे कान सुन रहे हैं। जिन लोगों पर उनके अस्तित्व पर खतरों के बादल मंडराते रहते हैं वे फौरन एक हो जाते हैं और वहाँ समाजीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत होती है जिसे कवि ने आदिवासियों के संदर्भ में लिखी हुई कविताओं के द्वारा स्पष्ट किया है.

आज मानव जाति के सामने सबसे बडी समस्या है अपने आप को जिंदा रखने की, अपना अस्तित्व बचाने की। इसलिए आज कई जनसमुह संघर्ष कर रहे हैं। इस संघर्ष के अनेक आयाम हैं। कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से नारी संघर्ष, वेश्या संघर्ष, आदिवासी संघर्ष जैसे संघर्ष के बहुआयामी चित्र प्रस्तुत किए हैं। संघर्ष करना कोई मुश्किल बात नहीं है, बल्कि संघर्ष के माध्यम से क्या प्राप्त होता है इसको अधिक तरजीह देना आवश्यक है। ऐसा माना जाता है कि संघर्ष से हर समस्या का समाधान नहीं मिलता अपितु कभी-कभी संघर्षरत मानव के जीवन को भी खतरा उत्पन्न हो जाता है जिसे कवि ने विभिन्न उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट किया है -

'जो लोग उस पर शासन करते हैं
वे तुरंत अपनी बंदूके निकालकर ले आते हैं।'

'उपर आसमान में एक विकराल हवाई जहाज बम बरसाने के लिए तैयार है
नीचे घाटी में एक आत्मघाती दस्ता
अपने सुंदर नौजवान शरीरों पर बम और मिसाइले बांधे हुए हैं
दुनिया के राष्ट्राध्यक्ष अंगरक्षक सुरक्षा गार्ड सैनिक, अर्धसैनिक बल
गोलियों, बंदूको रॉकेटों से लैस हो रहे हैं।'

'हमारे शासक अक्सर ताकतवरों की अगवानी करने जाते हैं
वे अकसर आधुनिक भगवानों के चरणों में झुके रहते हैं'

देशकाल वातावरण से कविता की समृद्धता बढ जाती है। मंगलेश डबराल की काव्यधारा में देशकाल वातावरण का चित्रण मिलता है। शहरी, ग्रामीण एवं आदिवासी परिवेश का चित्रण एक तरफ है तो दूसरी तरफ भूमंडलीकरण की वजह से इस परिवेश में किस तरह परिवर्तन होते हैं इसका सूक्ष्मता से कवि ने चित्रण किया है। अलग शब्दों में कहा जाए तो एक ओर कवि की कविता में 'इंडिया' का चित्रण मिलता है तो दूसरी ओर 'भारत' की झाँकी भी नजर आती है इसलिए देशकाल वातावरण से उभरती हुई समस्याओं का भी कवि ने चित्रण किया है -

'यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है
उसे अपने अरण्य से दूर ले जाया जा रहा है
उसके लोहे कोयले अभ्रक से दूर

घास की ढलानों से तपती हुई चट्टानों की ओर
सात सौ साल पुराने हरसुद से
एक नये और बियाबान हरसुद की ओर
पानी से भरी हुई टिहरी से नई टिहरी की ओर
जहाँ पानी खत्म हो गया है।'

'हमारे शासक गरीबों के बारे में कहते हैं कि वे हमारी समस्या हैं
समस्या दूर करने के लिए हमारे शासक
अमीरों को गले लगाते रहते हैं।'

समकालीन कविता की और एक विशेषता है व्यंग्यात्मकता। विवेच्य कवि की रचनाओं में कई स्थानों पर व्यंग्य दिखाई देता है जिसेस समस्याओं की भयावहता में और भी वृद्धि हो जाती है-

'हमारे शासक अकसर ताकतवरों की आगवानी करने जाते हैं
वे आधुनिक भगवानों के चरणों में झूके रहते हैं।'

हमारे राष्ट्रीय नेताओं की देशभक्ति एक दिखावा होता है और परदे के पीछे जो राष्ट्र को नुकसान पहुँचानेवाली वारदाते होती हैं इनको हमारे नेताओं का आशिर्वाद होता है इसलिए कवि व्यंग्य से कहता है -

'हमारे शासक अकसर जहाजों पर चढते और उनसे उतरते हैं
हमारे शासक पगडी पहने रहते हैं
अकसर कोट कभी-कभी टाई कभी लूँगी
अकसर कुर्ता-पाजामा कभी बरमूडा टी-शर्ट अलग-अलग मौकों पर
हमारे शासक अकसर कहते हैं हमें अपने देशपर गर्व है।'

कविता की अंतिम पंक्ति व्यंग्य की चरमसीमा लाँघ जाती है।

समकालीन कविता की और एक विशेषता है नारी विमर्श। नारी विमर्श से संबंधित कई समस्याएँ कवि ने अपनी कविता के द्वारा प्रस्तुत की है और उनका उचित परामर्श भी लिया है। भूमंडलीकरण इस दौर में लगता है कि रीतिकाल ही भेस बदलकर वापस आया है और रीतिकाल में जो सामाजिक स्थिति थी वहीं स्थिति आज भी है। केवल वर्ष बदले हैं, हालात वहीं है। मंगलेश का नारी संबंधी दृष्टिकोन प्रगतिशील कवियों की नारी-दृष्टि से मिलता है। वे नारी के नजदीक जाकर नारी को कुछ नहीं कहते किन्तु नारी की दशा और दिशा के संदर्भ में सवाल उपस्थित करते हैं। दुनिया की नजर में आज भी नारी भोग्या है, उपभोग की वस्तु है -

हमारे शासक आदिवासियों की जमीन पर निगाह गडाए रहते हैं

उनकी मुर्गियों पर उनकी कलाकृतियों पर, उनकी औरतों पर

'वह अकसर कहती थी औरतों के दो घर दो जन्म होते हैं

दोनों में साथ-साथ रहना होता है इन अभागियों को मृत्यु तक

और सब का सुख चाहने के लिए अगले जन्मों में भी

ईश्वर उन्हें बना देता है औरत।'

'कितनी जल्दी उसे एक स्मृति में बदल जाना था

एक पूर्वज की तरह एक कर्मकाण्ड में याद आना था।'

'इस विराट शहर में होती होंगी कॉलगर्ल

शायद उनका एक पूरा तंत्र हो किसी तहखाने में उनका एक बहनपा हो

स्त्रियों का शत्रु एक समाज अपने लिए एक कॉलगर्ल ढूंढता फिरता है।'

इस प्रकार नारी विमर्श के माध्यम से कवि ने नारी जीवन की विविध समस्याओं को यहाँ चित्रित करते हुए नारी जीवन की असलियत और सच्चाई को उजागर किया है।

दलित विमर्श भी समकालीन कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। दलितों से भी आदिवासी एवं नारी अधिक दलित है इसलिए आदिवासी समुह की उत्पीडन की गाथा को कवि ने स्पष्ट करते हुए लिखा है। आदिवासी जब बगावत पर उतर आता है -

'तब जो लोग उसपर शासन करते हैं

वे तुरंत अपनी बंदूके निकालकर ले आते हैं।'

एक आदिवासी के उसके जंगल से खदेडना का खाका बन चुका है

विस्थापतों के एक भीड

अपनी बची खुची गृहस्थी को पोटलियों में बांध रही है

उसे किसी अज्ञात भविष्य की ओर ढकेलने की योजना तैयार है।

समकालीन कविता का ग्राफ एकदम समतल है। जब कि इसे काफी टेढा मेढा ऊँचाईयों और गहराइयों के साथ होना चाहिए था। एक संकट यह भी दिखाई देता है कि कविता या पूरे साहित्य का विपक्ष धर्म का मूल्य कम हो गया है। एक समय हिन्दी कविता स्थीयी विपक्ष की कविता थी। अंततः हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि कवि मंगलेश डबराल समकालीन हिन्दी कविता की दिशा और दशा से संतुष्ट नहीं है। इतना होने के बावजूद भी समकालीन कविता की विषयवस्तु में सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, दलित और नारी विषयक समस्याओं को मंगलेश डबराल ने उठया है और अपनी कविता के माध्यम से कवि ने

समस्याओं पर विचार उठते हुए कवि मंगलेश डबराल ने अनेक समस्याओं को उठाकर युगबोध का परिचय दिया है और अपने लेखन कर्म को सार्थकता प्रदान की है इसके प्रति कोई संदेह नहीं है।

3.3.14 मंगलेश डबराल की कविता में यथार्थ बोध :-

आधुनिक कविता की सबसे बडी विशेषता है यथार्थ बोध। मंगलेश डबराल समकालीन कवियों में से एक माने जाते हैं। मूलतः कोई भी रचना समकालीन होती ही है क्योंकि उसमें समकालीन संदर्भ अनायास जुड जाते हैं। इसलिए इन कविताओं में यथार्थ बोध का होना लाजमी भी है। यथार्थ अर्थात जो सामने घटित हो रहा है, जिसे हम केवल देखते ही नहीं अपितु अनुभूत भी करते हैं उसे यथार्थ माना जाता है।

कवि की कविताओं की एक मुख्य विशेषता यथार्थ का यह पहलू है जो उनकी पैदाइशी पहाडी परिवेश से भिन्न है लेकिन दृष्टि से उसका विस्तार है। पहाडी परिवेश, जिनमें शहर, महानगर और जीवन के अन्य पक्ष भी शामिल हैं, उनकी कविताओं का महत्वपूर्ण विस्तार है। इसने कवि की संवेदना और दृष्टि दोनों को विस्तार दिया है। चूँकि यह बात सोचने के लिए आवश्यक है कि कवि मंगलेश ने जितनी भी कविताएँ लिखी हैं उनमें यथार्थता का प्रमुख स्वर रहा है। मंगलेश की कविताओं में सच्चाई की आवाज है और कवि अपनी कविताओं में स्वार्थ के लिए की स्पेस नहीं ढूंढता बल्कि वह कविता का एक अटूट हिस्सा बनकर अनायास उपस्थित होती है।

'नए युग में शत्रु' कविता में इसी तरह यथार्थ के स्वर उभर जाते हैं। कवि की अवधारणा के अनुसार भूमंडलीकरण से मानव जाति का कुछ भी भला नहीं होगा और यह एक अन्तर्राष्ट्रीय षडयंत्र है इसलिए कवि इसका यथार्थ इन शब्दों मे प्रकट करते हुए लिखता है।

> 'हमारा शत्रु कभी हम से नहीं मिलता सामने नहीं आता
> हमें ललकारता नहीं
> हालांकि उसके आने जाने की आहट हमेशा बनी रहती है
> कभी-कभी उसका संदेश आता है कि अब कहीं शत्रु नहीं है
> हम सब एक दूसरे के मित्र हैं
> आपसी मतभेद भूलाकर आइए हम सब एक ही प्याले से पिए
> वसुधैव कुटुंबकम हमारा विश्वास है।'

इन पंक्तियों के द्वारा यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति होती है क्योंकि भूमंडलीकरण की सच्चाई और उसके यथार्थ को हम सब अच्छी तरह से जानते हैं और यही वजह है कि शत्रु दोस्त होने का दावा कर रहा है लेकिन वह शत्रु ही है यहीं यथार्थ बोध यहाँ पर उजागर होता है।

बस्तर के आदिवासी लोगों की दयनीय हालत को कवि ने अंकित किया है। युगीन बदलावों के कारण आज आदिवासी समुह अपनी अस्मिता और मिल्कियत पर दोबारा सोचविचार कर रहे हैं और इसके कारण

उन्हे जीवन में विस्थापन का सामना करना पड रहा है। उनके जीवन के तहस–नहस किया जा रहा है। जल, जंगल और जमीन को उनसे छीना जा रहा है यह यथार्थ है जिसे कवि ने 'आदिवासी' कविता के द्वारा स्पष्ट किया है। आदिवासी समुहों के संदर्भ में एक अखबारी रिपोर्ट यह कहती है कि देश के 636 में से 230 जिलों में उनका उससे मनुष्यों जैसा कोई स्वीकार नहीं रह गया। इसलिए आदिवासी समुह क्रोधित होकर बगावत का बिगुल जब बजाता है तब –

'अपने कोयले लोहे कोयले और अभ्रक को बुला लाता है
अपने मांदर तुरही और बासूरी को जोरों से बजाने लगता है
तब जो लोग उसपर शासन करते हैं
वे तुरंत अपनी बंदूके निकालकर ले आते हैं।'

इन सभी आदिवासियों का अंजाम क्या होता होगा वह बताने की जरूरत ही नहीं है।

यथार्थ या सच्चाई अक्सर कडवी ही होती है। जिदगी की कडवाहट यथार्थ के माध्यम से ही उभरती है। कहा तो यह जाता है कि आदमी को यथार्थ का सच्चाई का दामन छोडना नहीं चाहिए किन्तु वर्तमान परिवेश में यथार्थ ही आदमी का पीछा करता हुआ नजर आता है और आदमी यथार्थ से दूर भागता रहता है। यथार्थ की रोशनी इतनी बढ चुकी है कि आदमी दिग्भ्रमित हो रहा है और उससे आँख मिलाना भी मुश्किल है और वह किसी पशु की भाँति अपना आचरण करता है इसलिए कवि लिखता है–

'मैं उसे पकडने के लिए आगे बढता हूँ
तो वह एक हिंस्त्र जानवर की तरह हमला करके निकल जाता है
सिर्फ कहीं–कहीं उसके निशान दिखाई देते हैं
किसी सडक पर जंगल में पेड के नीचे।'

और इसके बाद का वह माहौल –

'एक झोंपडी के भीतर एक उजडा हुआ चूल्हा एक ढली हुई छत
छोडकर चले गए लोगों का एक सुनसान'

एक आदिवासी को उसके जंगल से हटाने की योजना तैया हुई है और विस्थापितों की भीड अपनी जीवनाश्यक चीजों को लेकर दूसरे स्थान पर जाने के लिए तैयार हो रही है और उनका भविष्य अज्ञात है जिसकी उन्हें कोई कल्पना नहीं है इसलिए कवि यथार्थ के संदर्भ में यहीं कहता है–

'यथार्थ इन दिनों में बहुत ज्यादा यथार्थ है
उसके शरीर से ज्यादा दिखाई दे रहा है उसका रक्त।'

जीवन की समस्याएँ जितनी तीव्रतर हैं उतना ही यथार्थ भयावह और भयानक भी होता है। इस कारण इन समस्याओं का भय में परिवर्तन होना लाजमी हो जाता है। जीवन का सच इतनी निर्मम है कि लोगों को कभी-कभी अपनी जिन्दगी गँवानी पडती है.

'हमारे शासक' कविता में यथार्थ बोध विकराल रूप लेकर हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। हमारे शासक गरीब और गरीबी के बारे में चूप रहते हैं। शोषण के बारे में कुछ कहना उन्हें अच्छा नहीं लगता। उन्हें अन्याय जब दिखाई देता है वो फौरन अपनी दृष्टि घुमा लेते हैं। उन्हें दुर्बल प्रजा अच्छी नहीं लगती और वे अमीरों को गले लगाते हैं। इससे भी कडवी सच्चाई कवि ने हमारे शासकों के बारे में लिखी हैं -

'हमारे शासक अक्सर ताकतवरों की अगवानी करने जाते हैं
वे अक्सर आधुनिक भगवानों के चरणों में झुके रहते हैं
हमारे शासक आदिवासियों की जमीनों पर निगाह गडाये रहते हैं
उनकी मुर्गियों पर उनकी कलाकृतियों पर उनकी औरतों पर
उनकी मिट्टी के नीचे दबी हुई बहुत-सी चमकदार चीजों पर।'

शासकों के मुँह में एक वाक्य रहता है जिसे कवि ने व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है -

'हमारे शासक अक्सर कहते हैं हमें अपने देश पर गर्व है।'

'यह नंबर मौजुद नहीं' कविता में यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है किंतु इसका ढंग निराला है। कवि ने एक मोबाईल नंबर का उदाहरण देकर अपनी बात को स्पष्ट किया है। कवि के पास एक मोबाइल नंबर था, जिसपर फोन मिलाते हुए वह बातें किया करते थे। अब कवि जब यह नंबर डायल करता है तो दूसरी ओर से आवाज आती है यह नंबर मौजूद नहीं है। यह सूचना बेगानी आवाज में सुनाई देती है। जब पहले वह नंबर डायल किया जाता था तब -

'कुछ समय पहले इस पर मिला करते थे बहुत-से लोग
कहते आ जाओ हम तुम्हें पहचानते हैं
इस अंतरिक्ष में तुम्हारे लिए भी बना दी गई है एक जगह।'

आज आदमी को दूसरे आदमी के पास जाने के लिए न समय है और न उसके पास फूरसत है। आदमी बात करने की तो दूर नजर मिलाने से भी कतराता रहा है। वर्तमान मानव की इसी त्रासदी को कवि ने चित्रित किया है। कवि चाहता है -

'जहाँ भी जाता हूँ हताशा में कोई नंबर मिलाता हूँ
उस आवाज के बारे में पूछा हूँ तो कहती थी
दरवाजे खुले हुए हैं तुम यहाँ रह सकते हो

चले आओ थोडी देर के लिए यों ही कभी भी इस अंतरिक्ष में।'

'भूमंडलीकरण' कविता में पूरा यथार्थ का ब्योरा प्रस्तुत करती है। कोई मानो या न मानो भूमंडलीकरण वर्तमान का सबसे बडा यथार्थ है जिसे हम जीवन के हर एक पक्ष में अनुभूत करते है। यथार्थ का अर्थ यथास्थिति नहीं है। कविता के माध्यम से जो यथार्थ उभरता है वह गतिशील यथार्थ होता है। स्वप्न और स्वाभिमान का पक्षधर कवि यथार्थ का पक्षधर होता है। निराशा और हताशा का वातावरण होकर भी कवि यथार्थ को प्रस्तुत करता है क्योंकि –

'इन लोगों को परवाह नहीं है, उनके साथ क्या हो रहा है
कोई अन्याय को महसूस नहीं करता
लोग अत्याचार को धूल की तरह झाड देते हैं
सहसा चिल्ला उठते हैं नहीं नहीं
कहीं से तुरंत की खुशी खोजकर ले आते हैं
उसे जमा कर लेते हैं अपने पास जैसे वह सिर्फ उनके लिए बनी हो।'

'माँ की स्मृति' में भी यथार्थ अलग रंग एवं रूप में साकार होता है। जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो इसके बाद जो भी कुछ किया जाता है जेसे अंत्यविधि और क्रिया कर्म आदि केवल एक दिखावा होता है और इसकी वजह यह है कि अब लोगों को जिंदा लोगों कि प्रति कोई सहानुभूति नहीं रहती। मृत व्यक्ति के संदर्भ में उनके मन में जो विचार होंगे वे दुनिया के लिए ही किये जाते हैं और इसमें दिखावा ही अधिक होता है। मृत व्यक्ति को सद्गति मिलना तो दूर की बात है, सिर्फ दुनिया को दिखाना की मरे हुए व्यक्ति से उसके अंतरंग संबंध किस तरह थे? इसी यथार्थ की भावना से अनुप्राणित होकर कवि ने लिखा है –

'कमरे में उसका कोई सामान नहीं बचा
अगर कुछ बचा था तो वह मैं था
जिसने एक कर्मकांड में एक बदबूदार नदी के तट पर ले जाकर
उसे जलाया और बडा दिया
कितनी जल्दी उसे एक स्मृति में बदल जाना था
एक पूर्वज की तरह एक कर्मकांड में याद आना था।'

यथार्थ का एक कठोर स्वरूप यहाँ हमें दिखाई देता है। जिस माता से हम इतना प्रेम करते है वह माता भी अब हमारे लिए कुछ भी नहीं रही तो अन्य लोगों की बात को छोड दीजिए। लोग अपनी माँ को भी कितनी जल्दी भूल जाते हैं इसे कवि ने यहाँ स्पष्ट किया है।

‘कॉलगर्ल’ कविता में यथार्थ भीषण और कराल रूप लेकर उपस्थित हो जाता है। कॉलगर्ल का उपभोग लेने के बाद उसे पुलिस के हवाले करते हुए वहाँ से लंपट लोग फरार हो जाते हैं इस बात की पुष्टि के लिए कवि ने लिखा है –

‘लडकियों में कॉलगर्ल होने की संभावना खोजते हुए
उनके अभियान शायद सफल होते होंगे
उनका उपभोग करने के बाद उन्हें अपने लिए बेकार जानकर
वे उन्हें पुलिस के हाथों सौंप देते होंगे
और खुद सुर्खियों में आने से पहले
अपने गाडियों में चंपत हो जाते होंगे नई शिकारगाहों की ओर।’

अपने लिए नई लडकी ढूंढना समाज के इन शत्रुओं का सबसे बडा शगल, उनकी हॉबी होती है। मन को बहलाने के लिए वे यह काम हर रोज करते रहते हैं।

प्रकृति ने हमें जो देह दी है उसका हमारे लिए कोई मूल्य नहीं होता। जो आदमी ‘प्रेम करना छोड देता है वे चीजें हमें छोडकर जाती है’ यह प्रत्यक्ष कवि का ही कथन है। हमने भी अपनी देह से प्रेम करना छोड दिया है इसलिए शरीर भी हमारा साथ छोड देता है यह हकीकत है। इसलिए ऐसे लोगों की आलोचना करते हुए कवि लिखता है –

‘हम अपने शरीरों से मनमाना व्यवहार करते रहें
जैसे वे हमें कुछ ही समय के लिए मिले हो
मुफ्त में मिले माल की तरह लूटाते हुए
हमने कभी उनके स्पंदन नहीं सुने उनके दर्द को नहीं छूआ
कभी उन्हें उनकी निबिड एकांकी सुंदरता में देखा नहीं।’

कवि अंतरात्मा की बात कहते हुए आगे दिखता है –

‘कभी सोचा नहीं इनके भीतर भी एक आत्मा रहती है
शरीर के उपभोक्ता हम जान नहीं जाए कैसे करें उससे प्रेम?’

कवि ने अंत में जो प्रश्न पूछा है वह भीषण यथार्थ का नजारा हमारी आँखों के सामने साकार कर देता है।

धन के पीछे दौडनेवाले लोगों को हम सब देखते हैं। कभी-कभी हम भी उस होड में शामिल होते हैं। यह जानलेवा होड कभी खत्म होने का नाम ही नहीं लेती। दूसरी बात उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि

हम चाहकर भी इस रेस से अलग नहीं हो सकते और यहीं हमारी सबसे बडी त्रासदी है। इसी त्रासदी को कवि ने स्पष्ट करते हुए लिखा है –

'इन दिनों लोग पैसे का शिकार करते दिखते हैं
यह हमारे युग का प्रमुख व्यवसाय है
ज्यादा पैसे की खोज में
दिनभर लूटकर झपटकर जो लौटता है
वही खिलखिलाता है सुनाता चुटकले
पैसों के ढेर पर बैठकर खिंचाता अपनी सबसे अच्छी तस्वीर।'

मंगलेश डबराल की कविताओं के अनुशीलता से पता चलता है कि विवेच्य कवि की काव्यधारा यथार्थ से सम्पृक्त है। कवि अपनी कविता के द्वारा समाज के अंतर्विरोधों को उघाडते हुए, समाज के खिलाफ जो शक्तियाँ कार्यरत है उनका विरोध करता है। कवि की काव्यधारा में वह क्षमता निश्चित ही है और इसलिए कवि नए समाज, नए मानव के निर्माण की बात करते हुए लिखता है। इससे समाज और अंत में राष्ट्र का यथार्थ प्रकट होता है जो हमें कवि की कविताओं में नजर आता है। इसलिए कवि मंगलेश डबराल अपनी कविता के द्वारा यथार्थ का चित्रण करने में निश्चित ही सफल हुए हैं।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1. मंगलेश डबराल का जन्म गाँव .... में हुआ था।

   अ) काफलपानी   ब) देहरादून   क) हरिद्वार   ड) चमेली

2. .... 'काव्य संकलन के लिए मंगलेश डबराल को साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था।

   अ) नये युग में शत्रु   ब) पहाड पर लालटेन   क) घर का रास्ता   ड) हम जो देखते हैं

3. मंगलेश डबराल की 'एक बार आयोवा' .... विधा की रचना है।

   अ) उपन्यास   ब) कहानी   क) कविता   ड) यात्रा वृत्तांत

4. हमारा शत्रु .... का दरवाजा खटखटाता है।

   अ) घर   ब) सदी   क) महल   ड) दफ्तर

5. आदिवासी .... का एक आदिम गीत गाता है।

   अ) प्रेम   ब) शोक   क) अमर्ष   ड) विरह

6. यथार्थ के शरीर से उसका .... अधिक दिखाई देता है।

   अ) रक्त   ब) पानी   क) पसीना   ड) प्रेम

7. हमारे शासक .... के बारे में चुप रहते हैं।

अ) गरीब ब) अमीर क) स्त्री ड) पुरूष

8. हमारे शासक अकसर कहते हैं हमें अपने .... पर गर्व है।

अ) देश ब) प्रान्त क) राज्य ड) वतन

9. .... में पडी हुई पुरानी डायरियाँ मिलती है।

अ) नाबदानों ब) मैदानों क) तहखानों ड) दफ्तरों

10. दंगे में मारे गये लोगों के घर से .... लोग उठाकर ले आते हैं।

अ) टेलीविजन ब) मोबाइल क) संगणक ड) पुस्तकें

11. कोई हमें लगातार .... के मैदान की तरफ ले जा रहा है।

अ) युद्ध ब) खेल क) सभा ड) नाटक

12. सब का सुख चाहने के लिए ईश्वर उनको .... बना देता है।

अ) औरत ब) पुरूष क) माता ड) बहन

13. .... अकेले नहीं हमेशा समुह में पकडी जाती है।

अ) कॉलगर्ल ब) औरतें क) लडकियाँ ड) वैस्याएँ

14. स्त्रियों का शत्रु एक समाज अपने लिए एक .... ढूंढता फिरता है।

अ) वैश्या ब) औरत क) कॉलगर्ल ड) लडकी

15. जिनसे हम.............. करना छोड देते हैं, वे चीजें हमें छोडकर चली जाती है।

अ) प्रेम ब) स्नेह क) मोह ड) मत्सर

16. शरीर की मृत्यु छिपाने के लिए लगातार बढते जाते हैं उसके .... के उत्सव।

अ) जन्म ब) मृत्यु क) आनंद ड) उल्लास

17. .... इन दिनों लोग का शिकार करते दिखते हैं।

अ) जानवर ब) पैसे क) नारी ड) मूल्य

18. वही खिलाखिलाता है, सुनाता चुटकले, ... के ढेर पर बैठकर खिंचता अपनी सबसे अच्छी तस्वीर।

अ) पैसों ब) लाशों क) पत्थरों ड) गोलियों

19. मंगलेश डबराल अपनी आजीविका के लिए .... करते रहें।

अ) नौकरी ब) खेती क) पत्रकारिता ड) लेखन

20. मंगलेश डबराल की मृत्यु .... से हुई।

अ) कोरोना ब) रक्तचाप क) डायबेटिज ड) कैंसर

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :-

1. हरसूद – मध्यप्रदेश में स्थित शहर
2. टिहरी – उत्तराखंड स्थित झील
3. अमर्ष – असहिष्णुता, आदेश, क्रोध, क्षोभ
4. तुरही – एक वाद्य यंत्र
5. मांदर – एक वाद्य यंत्र
6. कारिंदे – कर्मचारी
7. वसुधैव कुटुंबकम – धरती ही परिवार है
8. नाबदान – पनाला, नाली
9. मुजरिम – गुनाहगार
10. बहनपा – महिला संघ
11. खाका – ढाँचा
12. शोहदे – गुंडे, बदमाश, लंपट
13. अन्यमनस्क – अनमना, जिनका चित्त कहीं और हो।
14. खूराक – आहार
15. तहखाना – जमीन के नीचे बना घर, तलघर
16. अभियान – आन्दोलन, कार्यक्रम, आक्रमण
17. सूर्खियाँ – समाचार की शीर्षक पंक्ति, हेडलाइन
18. चंपत – गायब, फरार
19. शिकारगाह – आखेट का स्थल
20. बेगाना – पराया

21. खटखट – झमेला, झंझट, लडाई

22. निबिड – सुनसान

23. उपभोक्ता – ग्राहक

3.6 स्वंय अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1. अ – काफलपानी
2. ड – हम जो देखते हैं
3. ड – यात्रा वृत्तांत
4. ब – सदी
5. क – अमर्ष
6. अ – रक्त
7. अ – गरीब
8. अ – देश
9. अ – नाबदानों
10. अ – टेलीविजन
11. अ – युद्ध
12. अ – औरत
13. अ – कॉलगर्ल
14. क – कॉलगर्ल
15. अ – प्रेम
16. अ – जन्म
17. ब – पैसे
18. अ – पैसों
19. क – पत्रकारिता
20. अ – कोरोना

3.7 सारांश :-

समकालीन कवि मंगलेश डबराल की रचना 'नए युग में शत्रु' काव्यसंकलन की दस कविताएँ पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित की गई हैं। इन दस कविताओं का सारांश निम्न तरह से उद्घाटित होना है जो इन कविताओं का कथ्य एवं तथ्य दोनों है।

1. 'नए युग में शत्रु' कविता बाजारवाद के भयावह परिणाम एवं प्रभाव की अभिव्यक्ति करती है। बाजारवाद मानव जाति का एक प्रबल शत्रु है जो भेस बदल-बदल कर ने रूपों एवं रंगों में हमारे जीवन में दखल अंदाजी करता रहता है जिसे कवि ने स्पष्ट किया है। भारतीय दार्शनिक अवधारणा उसे शत्रु नहीं मानती यह कवि का कथन है।

2. 'आदिवासी' कविता आदिवासी विमर्श की पहल करती है। आदिवासी विमर्श केवल बातचीत का विषय रहा हैं और आदिवासियों को किस तरह से प्रताडित किया जाता है इसका लेखा-जोखा रचनाकार ने इस कविता के द्वारा प्रस्तुत किया है।

3. 'यथार्थ' कविता मानवी जीवन में यथार्थ के स्थान को प्रकट करती है। यथार्थ किसी जानवर के समान मानव पर हमला करता है और उसके हाथ धरती को ध्वस्त करने के लिए आगे बढ रहे हैं। कवि के अनुसार यथार्थ आज कल बहुत ही यथार्थ बन चुका है और उसके शरीर से खून निकल रहा है और सारा शरीर खून से सना हुआ है।

4. 'हमारे शासक' कविता राजनीति का घिनौना चित्रण कहती है। हमारे राजनेताओं को सर्वसाधारण जनता के सुख-दुःख से कोई सरोकार नहीं होता। ताकतवर और आधुनिक भगवानों की हिमायत करनेवाले शासक आदिवासी और गरीबों की ओर ध्यान भी नहीं देते। राजनेता सदैव कहते रहते हैं कि 'हमें अपने देशपर गर्व है।'

5. 'यह नंबर मौजूद नहीं' कविता बाजारवाद और आदमी के व्यवहार का चित्रण करती है। आज आदमी दूसरे आदमी के पास जाने के लिए कतराता रहता है और जीवन के व्यवहार व्यापार में बदल गए हैं। फोन पर केवल और केवल व्यापार की बात होती है, कोई भी आत्मीयता से बात नहीं करता।

6. 'भूमंडलीकरण' के कारण दुनिया एक बडे गाँव में बदल चुकी है और दुर्गुणों को खोजने के लिए अब कहीं भी जाने की जरूरत नहीं रही क्योंकि सारी चीजे अब यहाँ मिल रही हैं और मानव-मानव के बीच के रिश्ते बहुत कमजोर हुए हैं। मानवजाति अब युद्ध की कगार पर जा पहुँची है और उसे बताया जा रहा है कि युद्ध के बाद एक पुरस्कार से उसे सम्मानित किया जाएगा।

7. 'माँ की स्मृति' कविता में कवि ने माता की अहमियत को स्पष्ट किया है। हर औरत के दो जन्म और दो घर होते हैं और सब का सुख चाहने के लिए ईश्वर उन्हें औरत बना देता है। माँ एक न दिन यादों में बदल जाती है और उसकी याद कर्मकांड की तरह बन जाती है यह कवि का अभिमत है।

8. 'कॉलगर्ल' कविता कॉलगर्ल की हकीकत को वाणी देती है। वह आम औरतों की तरह ही होती है इसलिए अन्य महिलाओं की उसे भी पुरूषों की जहर भरी नजर का सामना करना पडता है। कॉलगर्ल का उपभोग करने के पश्चात उन्हें पुलिस के हाथों सौप दिया जाता है और नई शिकार ढूंढने के लिए लोग अपनी गाडियों के साथ निकल जाते हैं।

9. 'शरीर' कविता शरीर के मूल्य को स्पष्ट करती है। हमें अपने शरीर का कोई मूल्य नहीं होता और हम शरीर के साथ मनमाना व्यवहार करते हैं। शरीर के दुखों को दबाने के लिए हम खुशबु में नहाते हैं और शरीर की मृत्यु छिपाने के लिए शरीर के जन्मोत्सव बढाते रहते हैं।

10. 'पैसा' यह कविता पैसे की महत्ता को स्पष्ट करती है। पहले लोग जानवरों का शिकार करते थे अब पैसे का शिकार करते हुए नजर आ रहे हैं।

3.8 स्वाध्याय :-

अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :-

1. मंगलेश डबराल की पठित कविताओं का सामान्य परिचय लिखिए।
2. मंगलेश डबराल की पठित कविताओं का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
3. मंगलेश डबराल की कविताओं में बाजारवाद का आशय स्पष्ट कीजिए।
4. समकालीन कविता की प्रवृत्तियों के आधार पर मंगलेश डबराल की कविताओं का मूल्यांकन कीजिए।
5. मंगलेश डबराल की कविताओं में यथार्थ बोध स्पष्ट कीजिए।
6. मंगलेश डबराल की कविताओं में उत्तर आधुनिकता का विश्लेषण कीजिए।

ब) ससंदर्भ व्याख्या

1. 'हमारे शासक गरीबों के बारे में चुप रहते हैं / शोषण के बारे में कुछ नहीं बोलते / अन्याय को देखते ही मुँह फेर लेते हैं।'
2. 'हमारे शासक अकसर ताकतवरों की अगवानी करते जाते हैं / वे अकसर आधुनिक भगवानों के चरणों में झुके रहते हैं / हमारे शासक आदिवासियों की जमीनों पर निगाह गडाए रहते हैं।'
3. 'हमारे शासक अक्सर कहते हैं हमें अपने देश पर गर्व है।'

4. 'जहाँ भी जाता हूँ हताशा में कोई नंबर मिलता हूँ / उस आवाज के बारे में पूछता हूँ जो कहती थी / दरवाजे खुले हे हैं तुम यहाँ रह सकते हो / चले आओ थोडी देर के लिए यों ही कभी भी इस अंतरिक्ष में।'
5. 'अब दूसरे ही नंबर मौजूद हैं पहले से कहीं ज्यादा तार-बेतार / उन पर कुछ दूसरी तरह के वार्तालाप / महज व्यापार महज लेन देन खरीद-फरोख्त की आवाजें / लगातार अजनबी होती हुई।'
6. 'बडी तेजी से दुनिया बनती जा रही है एक बडा गाँव / लोभ क्रोध ईर्ष्या व्दवेष के लिए अब कहीं जाना पडता / हर चीज समान रूप से मिलने लगी है हर जगह / मनुष्यों के सम्बन्ध बहुत पतले तारों से बाँध दिये गये हैं / जो बात-बात मे टूट जात हैं / उन्हें जोडने के लिए फिर से जाना होता है बाजार।'
7. 'कोई हमें लगातार युद्ध के मैदान की तरफ ले जा रहा है / और कह रहा है धीरे-धीरे जब तुम बहुत कम मनुष्य रह जाओगे / तो इस खेल के अंत में तुम्हें मिलेगा एक बडा-सा पुरस्कार।'

3.9 क्षेत्रीय कार्य

1. मंगलेश डबराल की कविताओं का सामुहिक रूप से वाचन कीजिए।
2. मंगलेश डबराल के अन्य काव्य संकलनों का अध्ययन कीजिए।
3. मंगलेश डबराल के बाजारवाद से संबोधित कविताओं का संकलन कीजिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1. मंगलेश डबराल व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ. विद्यावती जी राजपुत
2. समकालीन हिंदी कविता - ए. अरविन्दाक्षन
3. हम जो देखते हैं - मंगलेश डबराल
4. लेखक की रोटी - मंगलेश डबराल
5. समकालीन हिंदी कविता का परिप्रेक्ष्य - डॉ. जगन्नाथ पंडित
6. नए युग में शत्रु - मंगलेश डबराल

❑❑❑

इकाई 4

ओमप्रकाश वाल्मीकि : बस्स! बहुत हो चुका

(शायद आप जानते हैं, मुट्ठीभर चावल, बाहर जाएंगे एक दिन, घृणा तुम्हे मार सकती है, पण्डित का चेहरा, घृणा और प्रेम कहाँ से शुरू होता हैं, कभी सोचा था, कविता सिर्फ कविता होती है, आदिम रुप, बस्स! बहुत हो चुका)

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय विवेचन

- 4.3.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि का जीवन परिचय
- 4.3.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व
- 4.3.3 ओमप्रकाश वाल्मीकि का कृतित्व
- 4.3.4 कविताओं का आशय एवं परिचय
  - 4.3.4.1 शायद आप जानते हैं
  - 4.3.4.2 मुट्ठीभर चावल
  - 4.3.4.3 बाहर जाएंगे एक दिन
  - 4.3.4.4 घृणा तुम्हे मार सकती है
  - 4.3.4.5 पण्डित का चेहरा
  - 4.3.4.6 घृणा और प्रेम कहाँ से शुरू होता हैं
  - 4.3.4.7 कभी सोचा था
  - 4.3.4.8 कविता सिर्फ कविता होती है
  - 4.3.4.9 आदिम रुप
  - 4.3.4.10 बस्स! बहुत हो चुका
  - 4.3.4.11 कविताओं में चित्रित समस्याएँ

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वंयअध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.8.1 ससंदर्भ उदाहरण

4.8.2 दीर्घोत्तरी प्रश्नावली

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :-

इस इकाई को पड़ने के बाद आप

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन एवं साहित्य से परिचित होंगे।
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं से परिचित हो जाएंगे।
3. 'बस्स! बहुत हो चुका' संग्रह की कविताओं में चित्रित दलित जीवन से परिचित हो जाएंगे।
4. दलित जीवन की समस्याओं से परिचित हो जाएंगे।
5. दलित कविता के शिल्प पक्ष से परिचित हो जाएंगे।

4.2 प्रस्तावना :-

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी सृजनात्मक शक्ति हिन्दी दलित साहित्य में विशेष महत्व रखती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि स्वयं दलित थे। उन्होंने जो भोगा है, जीया है और देखा है वही अभिव्यक्त किया है। वे दलित होने के कारण जीवन के हर मोड़ पर उन्हें दु:ख-दर्द, पीड़ा-वेदना, प्रताड़ना तथा अपमानित होना पड़ा। उसी को बड़े प्रमाणिक ढंग से कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। हजारों वर्षों से दलितों को सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। दलित इस व्यवस्था का विरोध न करें इसलिए कहा गया कि यह व्यवस्था ईश्वर द्वारा बनाई है। उसे तोड़ने से वह सीधा नरक में जाएगा। यह अज्ञानी दलित लोग पाखंडियों के वचन का शिकार हो गए। समस्त दलित विषम व्यवस्था के गुलाम बने रहे। इस गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने का प्रयास पहले महात्मा फुले, छत्रपति शाहू महाराज तथा बाबासाहब अम्बेडकर आदि के सामाजिक कार्य के माध्यम से किया है। साथ ही विभिन्न दलित साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से किया हैं। उन दलित साहित्यकारों की पंक्तियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का स्थान अग्रणी हैं। हिन्दी दलित साहित्यों में मूलत: सामाजिक विषम व्यवस्था को उजागर करने का प्रयास ओमप्रकाश वाल्मीकि ने किया हैं। भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था में छुआछूत, जातिभेद तथा सामाजिक विषमता के उदाहरण उनकी कविताओं में प्रस्तुत हैं। जाति और वर्णव्यवस्था मानव को इंन्सानियत के एहसास से वंचित कर रही है। वाल्मीकि की कविताएँ दलितों के जीवन संघर्ष और उनकी बचैनी का जीवंत दस्तावेज़ हैं। उनकी कविताओं में दलित जीवन की व्यथा; छटपटाहट और सरोकार साफ़-साफ़ दिखाई पड़तें हैं।

‘बस्स! बहुत हो चुकाफ ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का दूसरा कवितासंग्रह सन् 1997 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल 50 कविताएँ हैं। वाल्मीकि जी ने इस संग्रह को दलित चेतना के प्रखर हीरा डोम को सादर समर्पित किया हैं। इस संग्रह की कविताओं में दलित जीवन से जूझते हुए मनुष्य का विपन्न दु:ख, यातना, दुर्बलता तथा जातिवाद की समस्या का चित्रण हुआ हैं।

4.3 विषय विवेचन

4.3.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि का जीवन परिचय :

मन्युष्य जिस धार्मिक, सामाजिक परिवेश में जन्म लेता हैं उस परिवेश का प्रभाव स्वाभाविक रूप से उसके व्यक्तित्व पर रहता हैं। ओमप्रकाश वल्मिकी का जीवन परिचय प्रस्तुत हैं–

4.3.1.1 जन्म :–

महान हिंदी दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म उस समय हुआ, जिस समय अपने देश को आजादी मिलकर कूछ साल बीत गए थे। देश को अंग्रेजों से आजादी मिली थी, लेकिन इस देश में रहनेवाले दलित समाज के व्यक्ति को वर्णव्यवस्था से आजादी नहीं मिली थी। उसी पाखण्ड वर्णव्यवस्था में 30 जुन 1950 को ‘बरला’ नामक छोटे गाँव में, एक गरीब परिवार के ‘चूहड़े’ जाति में जन्म हुआ। ये ‘बरला’ गाँव उत्तर–प्रदेश के ‘मुजफ्फरनगर’ जिले में स्थित हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का जन्म जिस परिवार में हुआ था वह दलित परिवार शिक्षा से पूरी तरह वंचित था, उनके परिवार में शिक्षा प्राप्त करनेवाले सिर्फ ओमप्रकाश वाल्मीकि ही थे। इसलिए परिवार में शिक्षा का अभाव होने के कारण या अन्य समस्याओं के कारण उनकी सही जन्मतिथि के बारे में पता नहीं हैं।

4.3.1.2 मातापिता :–

सुप्रसिद्ध दलित साहित्यकार ओमप्रकाशा वाल्मीकि जी के माता का नाम श्रीमती ‘मुकुंदी’ और पिताजी का नाम ‘छोटनलाल’ हैं। माताजी घर में ही अपने परिवार के सभी लोगों की देखभाल करती थी। बल्कि उन्हें पढ़ा–लिखाकर एक अच्छा इंसान बनाना चाहती थी। इसलिए ओमप्रकाश को घर के काम में इतना व्यस्त रहने नहीं देती थी।

ओमप्रकाश जी के पिताजी ‘छोटनलाल’ अपनी जातिप्रथा के आधार पर मरे हुए जानवरों की खाल उतारने का काम करते थे। छोटनलाल को पाँच लड़के थे, पाँच में से तीन लड़कों को उन्होंने शिक्षा नहीं दी थी। इसलिए ओमप्रकाश जी को शिक्षा का महत्त्व बताकर अधिक–से–अधिक शिक्षा की ओर आकर्षित किया। इतना ही नहीं उन्होंने अच्छी शिक्षा देने के लिए अनेक बार स्कूल के अध्यापक से झगड़ा भी मोल लिया। ओमप्रकाश जी के पिताजी पर म फुले, अम्बेडकर के विचारों का प्रभाव था। इसलिए वे कभी–कभी सामाजिक बुराइयों पर तथा उच्चनीचता के भेदभाव पर आवाज भी उठाते थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के पिताजी एक कर्तव्यपरायण, ईमानदार एवं संघर्षशील व्यक्ति थे। उन्होंने अपने संघर्ष के कारण ही ओमप्रकाश

जी को उच्च से उच्च शिक्षा दिलाने में सबसे बड़ी भूमिका निभाई हैं। एक श्रेष्ठ महान पिताजी का दायित्व छोटनलाल जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में दिखाई देता है।

4.3.1.3 पत्नी :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि के पत्नी का नाम 'चंद्रकला उर्फ चंदा खैरवाल' है। 'चंद्रकला' वाल्मीकि जी की 'स्वर्णलता' भाभी की छोटी बहन है। पिताजी के द्वारा शादी करने की जिद्द के कारण ओमप्रकाश तंग आकर 27 दिसंबर 1973 में चंदा से शादी कर ली।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने मूलत: अपने शादी के बारे में कभी जल्दबाज़ी नहीं की। क्योंकि वे शादी से बढ़कर अपनी शिक्षा, नौकरी तथा नेक विचारों को अधिक महत्त्व देते थे। अनेक बार शिक्षा लेते समय सिर्फ जाति के नाम पर उन्हें अपमानित, लांछित होना पड़ा, स्कूल में हर दिन झाड़ू लगाना पड़ा तथा शिक्षा न लेने के कारण अपने हक एवं अधिकार से वंचित रहना पड़ा, ऐसे अनेक प्रसंग उन्होंने स्वयं अनुभव किए हैं तथा अपने ही परिवार में देखे हैं। इसलिए अनेक बार परिवार के लोग शादी करने के लिए कहने के बाद भी वे हमेशा मना ही करते थे। क्योंकि उन्हें शादी पसंद नहीं थी। शादी से भी बढ़कर एक उच्च शिक्षा तथा नौकरी प्राप्त कर, अच्छा इन्सान बनाने की उम्मीद उनमें थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने नौकरी मिलने के पश्चात इंटर में पढ़ रहीं 'स्वर्णलता' भाभी की बहनफ चंद्रकला उर्फ चंदा से शादी की। ऐसा उन्हें कोई संन्तान प्राप्त नहीं हुई थी लेकिन परिवार का पूरा सहयोग उनके साथ में रहता था।

4.3.1.4 परिवार का चित्रण :–

हिंदी दलित कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का परिवार अनेक सदस्यों से भरा हुआ हैं। उनके परदादा का नाम 'जहरीया' था। उनके दो पूत्र थे। बड़े का नाम था 'बुद्ध' और छोटे का नाम था 'कुंदन'। बुद्ध के भी दो बेटे थे, बड़े का नाम 'सुगमचंद' और छोटे का नाम 'छोटनलाल' था। छोटनलाल ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के पिताजी थे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के पिताजी को पाँच संताने थी। सबसे चोटी लड़की 'सोमति' दो–तीन साल कि थी तभी वह गुजर गयी। 'सुखबीर' सबसे बड़े पुत्र, उसके बाद 'जगदीश' जो अठारह वर्ष की आयु में ही गुजर गए थे। उससे छोटे 'जसबीर' और जनसेर थे। सबसे छोटा लड़का ओमप्रकाश ही था। ओमप्रकाश वाल्मीकि के बाद एक छोटी बहन 'माया' थी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के बड़े भाई 'सुखबीर' सुचेत तागा के घर पर सालाना नौकर थे। उनकी शादी भी हुई थी। लेकिन किसी बीमारी के कारण ही वह गुजर गए थे। सुखबीर को एक बडा डेढ़ साल का 'देवेन्द्र' नाम का लड़का था और पत्नी छहसात माह कि दूसरे बच्चे की गर्भवती भी थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का परिवार विधवा विवाह को स्वीकार करने वाला परिवार था। इसलिए सुखबीर से छोटे भाई 'जसबीर' के साथ विधवा भाभी की शादी कर दी थी। जसबीर के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण वह पंजाब में 'तीरथ राम एंड कंपनी' में कम करने के लिए चले गए। 'जनसेर' की शादी 'स्वर्णलता'

से हुई। जनसेर की पत्नी स्वर्णलता अपने मैके में ही रहती थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की सबसे छोटा बहन माया की भी शादी हुयी थी। सिर्फ अकेले ओमप्रकाश ही उनके परिवार में रहें थे। कई सालों के बाद उनकी भी शादी 'चंदा' से हुई। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का परिवार एक प्रकार से अपने जीवन के प्रति हमेशा संघर्ष ही करता रहा।

4.3.1.5 शिक्षा :–

इस देश में जो दलित या निम्न समाज में पैदा हुआ है, उसके साथ शिक्षा को लेकर सदैव संघर्ष ही रहा है। संघर्ष विभिन्न प्रकार का होता है, कभी जाति के नाम पर तो कभी परिवार की कठिनाई के नाम पर तथा गरीबी के नाम पर। पहले शिक्षा किसी विशिष्ट जाति समुदाय तक ही सीमित थी। उस समय दलित समाज को शिक्षा प्राप्त करना जैसे जलती अग्नि में हाथ डालने जैसा होता था। अगर कोई दलित समाज का व्यक्ति किसी पाठशाला में पढ़ने के लिए जाता, तो उसे जाति के नाम पर अनेक बार अपमानित होना पड़ता। पानी पीने से लेकर कक्षा में बैठने तक उसके साथ अनेक बार बुरे व्यवहार किये जाते। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का तो परिवार ऐसा था, जिसमें किसी ने भी शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। सिर्फ ओमप्रकाश जी ने ही शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने ही 'बरला' गाँव की पाठशाला में प्रवेश लिया। ओमप्रकाश वाल्मीकि शिक्षा प्राप्त करने वाले परिवार के पहले व्यक्ति थे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शिक्षा की शुरूवात 'मास्टर सेवक राम मसीही' के खुले बना कमरो, बिना चटाईवाले स्कूल में हुई। आगे चलकर वाल्मीकि जी के पिताजी ने 'बेसिक प्रायमरी विद्यालय' में उन्हें भरती किया, वो विद्यालय, 'पाँचवी' कक्षा तक था। उस स्कूल में जमीन पर बैठना पड़ता था। त्यागियों के बच्चे 'चूहड़े का' कहकर ओमप्रकाश जी को अक्सर चिढ़ाते थे। स्कूल में प्यास लगे तो हैडपंप के पास खड़े रहकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था। हैंडपंप को छूना मना था। इस स्कूल में झीवर त्यागी और मुसलमान त्यागी के बच्चे भी पढ़ते थे। लेकिन इनके साथ कभी सवर्ण के बच्चे इतनी गैर हरक्ते नहीं करते तथा जाति का नाम लेकर कभी नहीं चिढ़ाते थे। सिर्फ ओमप्रकाश जी को ही जाति के नाम पर अपमानित, लांछित करते थे। कभी कोई अच्छा साफसुधरा कपड़ा पहनकर स्कूल में जाए तो सवर्ण के लड़के उन्हें कहते थे ''अब चूहड़े का, नए कपड़े पहनकर आया है। मैले पुराने कपड़े पहनकर स्कूल जाओं तो कहते, 'अबे चूहड़े के, दूर हट, बदबू आ रही है।'' फिर भी ओमप्रकाश इन्हीं परिस्थितियों का सामना करते हुए शिक्षा से कभी दूर नहीं गए। अपने पिताजी के श्रम एवं जाति के हालत को देखकर ओमप्रकाश एक लगन के साथ शिक्षा की ओर आकर्षित होते गए। पाँचवी पास करने के बाद वाल्मीकि जी ने आगे की शिक्षा 'बरला' इन्टर कॉलेज से पूरी की। लेकिन 'छटीं' कक्षा में उन्हें प्रवेश लेने के लिए भाभी ने पाजेब जेवर गिरवी रखकर ओमप्रकाश जी को पढ़ाया। उसी कॉलेज में 'श्रवनकुमार और चंद्रपाल सिंह' दो अच्छे मित्र मिले। इन तीनों की आगे अच्छी मित्रता बनती गई। आठवीं कक्षा में पहूँचते पहुँचते शरदचंद्र, प्रेमचंद्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर को उन्होंने पढ़ लिया था। लेकिन उन्हें सबसे आकर्षित 'शरदचंद्र' जी के साहित्यिक पात्रों ने किया। उसी कॉलेज में 'बाबूराव त्यागी' नाम के अध्यापक थे। वे स्वभाव और आचरण से बड़े नेक थे। उन्होंने ही ओमप्रकाश जी को अक्सर वादविवाद में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया था। आगे उन्होंने ही हिंदी साहित्य के प्रति

रुचि बढ़ाई। ओमप्रकाश अपने बस्ती में ही नहीं बल्कि आसपास के गाँव में भी वे वाल्मीकि जाति के पहले छात्र थे जो हाईस्कूल की परीक्षा दे रहें थे और उत्तीर्ण भी हो चुके थे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दसवी कक्षा सन् 1964 में 58 प्रतिशत अंको से उत्तीर्ण की। 'त्यागी इन्टर कॉलेज' बरला से इन्होंने 1966 में बारहवी की परीक्षा दी पर वे उस समय जाति-भेद के शिकार हो गए। क्योंकि उन्हें कई महीनों तक रसायनशास्त्र के अध्यापक ने प्रेक्टिकल नहीं करने दिया था। वे इसी एक विषय में अनुत्तीर्ण हो गए। बड़े भाई जसवीर ने 'देहारादून' के डी.ए.वी. कॉलेज में उनका प्रवेश करवा दिया। सन् 1967 में 65 प्रतिशत अंक से बारहवी की परीक्षा उत्तीर्ण की। 'देहारादून' में आना ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के भविष्य का एक अच्छा रास्ता रहा। सन् 1990 में उन्होंने बीए की परीक्षा हेमवंतिनंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्व विद्यालय श्रीनगर से 57 प्रतिशत अंक से उत्तीर्ण की। सन् 1992 में स्नातकोत्तर की उपाधि एम.ए. हिंदी उसी महाविद्यालय से स्वाध्यायी छात्र के रूप में 57 प्रतिशत अंक से उत्तीर्ण किया।

ओमप्रकाश वाल्मीकि आगे चलकर अपने घर की गरीबी हालत के कारण शिक्षा बीच में ही छोड़कर नौकरी की ओर चले गए।

4.3.1.6 नौकरी :-

दलित समाज में जिस व्यक्ति का जन्म हुआ, उस परिवार की आर्थिक हालत बड़ी सोचनीय और चिंतनीय होती है। जब वह शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, तभी उसके सामने शिक्षा से संबंधित या परिवार से सबंधित अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लेकिन जब दसवी बारहवी तक शिक्षा लेते हैं, या उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं तब उनके मन में अनगिनत सवाल निर्माण होने लगते हैं कि अब नौकरी प्राप्त करके परिवार को आर्थिक कठिनाइयों से बचना है। विडंबना यह है कि मन में भले ही उच्चा शिक्षा प्राप्त करने कि जिज्ञासा होती है लेकिन घर कि गरीबी के हालत देखकर अपनेआप ही हमारा मन किसी आम नौकरी कि ओर चला जाता है। ऐसी ही परिस्थिति ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के साथ हुई।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी जब हायस्कूल पास करने के पश्चात रायपुर के बम फैक्टरीफ में नौकरी के लिए आवेदनपत्र भर दिया था और इसका परिणाम कुछ दिनों में नौकरी के रूप में ही मिला। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने नौकरी कि शुरुवात 'रायपुर' की बम फैक्टरी से की। उसके पश्चात उन्हें अनेक जगह नौकरी भी अपने प्रतिभा के आधार पर मिलने लगी। 'आर्डिनेस फैक्टरी' जबलपुर में 'दो' वर्ष तक, महाराष्ट्र में 'आर्डिनेस फैक्टरी' अंबरनाथ मुंबई में एक वर्ष तक, 'आर्डिनेस फैक्टरी' चंद्रपुर में तेरह वर्ष तक और २२ जून 1985 को 'आर्डिनेस फैक्टरी' चंद्रपूर से देहारादून स्थलांतर हो गया। आगे चलकर भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय में उत्पादक विभाग के अधीनस्थ संस्थान में कुछ साल तक सेवा की। नौकरी करतेकरते उन्होंने सामाजिक दलित उत्थान के साथ दलित साहित्य का सृजन भी किया।

4.3.1.7 संतान :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कोई संतान नहीं है। यदि उनके पास कुछ है तो वृद्ध सास और ससूर हैं। वाल्मीकि जी अपने पाठक एवं छात्रों में संतान का स्नेह पाते हैं। इसलिए संतान का अभाव उन्हें खटकता नहीं।

4.3.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि व्यक्तित्व:–

4.3.2.1 साहसी एवं सत्यप्रिय

ओमप्रकाश वाल्मीकि चूहड़े जाति से होने के कारण बचपन से उन्हें बहुत सारे जातिय दंश झेलने पड़े थे। लेकिन ऐसी स्थिति में भी वे डगमगाते नहीं थे। कोई व्यक्ति नाम या जाति पूछे तो वे बेहिचक बताते 'चूहड़ा' या 'भंगी'। एक दिन मास्टरजी ने ओमप्रकाश और भिक्खुराम को गेहु लाने अपने गाँव भेजा। मास्टरजी के घरवालों ने उन दोनों को खाना खिलाया। कूछ देर बाद ओमप्रकाश को घर के बुजुर्ग ने जाति पूछी, तो उन्होंने सीधा बता दिया 'चूहड़ा'। तो गुस्से से उस बुजुर्ग ने लाठी भिक्खुराम के पीठ पर मारी और वहाँ से भागा दिया। भिक्खुराम ओमप्रकाश वाल्मीकि जी पर गुस्सा करता और कहता– ''झूठ बोलकर अच्छा खाना मिला, इज्जत मिली और सच बोलकर लाठी खाई, बेइज्जती हुई।'' सत्य से सामना करना ही ओमप्रकाश वाल्मीकि की का धर्म है। जाति छिपाकर झूठ बोलकर झूठा मान–सम्मान प्राप्त करना उन्हें पाप लगता हैं।

4.3.2.2 पढने में विशेष अभिरुचि :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को पढ़ने का शौक था। उन्होंने अपने स्कूली जीवन में ही अनेक किताबे पड़ी थी। जब वे आठवी कक्षा में थे तब रवींद्रनाथ टैगोर, शरदचंद्र, प्रेमचंद्र आदि को पढ़ डाला था। शरदचंद्र के पात्रों से वे बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने अपनी अन–पढ़ माँ को यह साहित्य पढ़कर सुनाया। 'रामायण', 'महाभारत' से लेकर 'सुरसागर', 'प्रेमसागर', 'सुरसागर', प्रेमचंद्र की कहानियाँ, 'तोता मैना' के किस्से जो भी मिला सुना दिया।'' पढ़ने की आदत चुप नहीं बैठने देती थी। उनका मराठी साहित्य के प्रति गहरा लगाव रहा। दलित साहित्य मराठी साहित्य को नई पहचान दे रहा था, तब दया पवार, नामदेव ढ़साल, गंगाधर पानतावने, बाबुराव बागुल, केशव मेश्राम, नारायण सुर्वे, यशवंत मनोहर आदि के साहित्य ने ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ दिया। अत: बचपन से ही व्यापक वाचन क्षमता आप में रही।

4.3.2.3 अनेक भाषाओं क ज्ञान :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी उत्तरप्रदेश से होने के कारण वहाँ की पंजाबी और हरियाणी भाषा से मेल खानेवाले कौरवी भाषा तो बोलते ही हैं। साथ ही हिंदी, मराठी, पंजाबी आदि भाषाओं पर भी उनका अधिकार है।

अंधश्रद्धा के विरोधी :-

ओमप्रकाश जी की बस्ती के लोग अंधश्रद्धा पर बहुत विश्वास रखते थे। कोई बीमार पड़ता तो इलाज दवा-दारू के बदले बुवा द्वारा मारपीट होती थी। एक बार वे खुद बीमार हुए थे, तब दवा दारू चल रही थी। लेकिन ठीक उसी समय एक रिश्तेदार आए और कहने लगे इसे तो ओवरा (भूत की लपेट) है। वह बुवाबाजी थोड़ी देर जमीन पर बैठा रहा और अचानक हिलने लगा। कपड़ों का कोडा बनाकर वह उन्हें पीटने लगा। पहले से कमजोर और ऊपर से मार बहुत गुस्सा आया और चिल्लाकर बोले ''मुझे जान से मार डालेगा यह। इसे रोको। मुझे भूत-बुत कुछ नहीं चिपटा है।'' वह चुप चाप बैठ गया। लेखक लिखते हैं ''मेरा विश्वास और पूर्वता हो गया था कि यह सब ढोंगबाजी है, जहाँ आस्था के सामने तर्क कोई माने नहीं रखता था। न जाने कितने लोग इन भगतों ने मार डालें।'' उनके दो भाई सही दवा-दारू न मिलने से ही चल बसे थे। घर में शादी में सूअरों को बलि चढ़ने की प्रथा थी, उन्होंने खुद अपनी शादी में बलि प्रथा का विरोध किया था। इससे स्पष्ट है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अंधश्रद्धा से कितनी नफरत और विरोध करते थे।

4.3.2.4 नाटक प्रिय :-

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने चंद्रपुर (महाराष्ट्र) में 'मेघदूत' नाम की नाट्य संस्था निकाली। अपनी पत्नी के साथ कई नाटकों का मंचन भी किया था। 'आधे-अधूरे', 'दुलारीबाई', 'हिमालय की छाया', 'सिंहासन खाली है' आदि नाटकों का सफल मंचन किया। कई बार उन्हें सर्वोत्तम निर्देशक का पुरस्कार भी मिला है। 'हिमालय की छाया', 'आधे-अधूरे' नाटक की केंद्रीय भूमिका के लिए पत्नी जी को भी सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिल गया था। वाल्मीकि जी को नाटक से अंततक लगाव रहा।

4.3.2.5 अभिनय में रुचि :-

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को निर्देशक करने के साथ साथ अभिनय करने कि चाहत भी थी। मराठी नाटक 'मोरुचि मावशी' के अनूदित हिंदी नाटक में मूल भूमिका के कारण लोग रंगकर्मी के रूप में पहचानने लगे थे। चर्चित निर्देशकों के साथ काम करने का अवसर उन्हें मिला। मराठी नाटक 'सखाराम बाइंडर', 'खामोश अदालत जारी है', 'हयवदन', आदि में अमरीश पूरी, अमोल पालेकर, सुलभा देशपांडे आदि के अभिनय से वाल्मीकि जी बहुत प्रभावित थे।

4.3.2.6 शिक्षा के लालसी :-

ओमप्रकाश वाल्मीकिजी को स्कूली शिक्षा के मियांन बहुत कुछ सहना पड़ा था। तभी देश को आझादी मिली थी। लड़कों द्वारा अपमान और मास्टरों द्वारा मार, मास्टरों के आदर्श से ज्यादा दहशत में वाल्मीकि जी ने अपनी पढ़ाई पूरी की। मास्टर जी की दहशत मन पर इतनी छाई है कि अगर कोई सामने आदर्श गुरु की बात करता हैं तो उन्हें ''ये तमाम शिक्षक याद आते हैं जो माँ बहन कि गलियाँ देते थे। सुंदर लडकियों के गाल सहलातें थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहियापन करते थे।'' लेकिन उन्होंने शिक्षा के प्रति अपनत्व कि भावना कभी नहीं छोडी। तमाम कष्ट एवं यतनाओं को झेलते हुए शिक्षा हासिल कि क्योंकि

अपने माता–पिता के तमाम कष्टों को न्याय देना था। इसलिए विपरीत स्थिति में भी उनके मन में शिक्षा कि लालसा थी।

4.3.2.7 वाल्मीकि नाम से लगाव :–

ओमप्रकाश जी को 'वाल्मीकि' शुभनाम के कारण बहुत पीड़ाएँ दु:ख, दर्द साहना पड़ा। इस शुभनाम के कारण जाति का बोधा होता है। उनके एक मित्र का कहना था 'वाल्मीकि' शुभ नाम के कारण लेखक जानबुझकर ब्राम्हनवादी दलदल में फंसे हैं, 'वाल्मीकि' शुभनाम छोड़ देना चाहिए। उनकी पत्नी चंदा भी यही चाहती थी। ओमप्रकाश जी की भतीजी सीमा को कॉलेज में पूछा गया कि आप ओमप्रकाश वाल्मीकि को जानती हैं? तब सीमा ने कक्षा में नजर डाली और इंन्कार कर दिया। उसने सफाई में कहाँ ''सभी के सामने अगर में मान लेती कि आप मेरे चाचा हैं तो सहपाठियों को मालूम हो जाता हैं कि मैं वाल्मीकि हूँ.......आप फेस कर सकते हैं मैं नहीं कर सकती.......गलें में जाति का ढ़ोल बाँधकर फिरना ये कहाँ की बुद्धिमानी है।'' वाल्मीकि नाम से बहुत कुछ सहा, फिर भी कहते हैं अब तो यह 'सरनेम' मेरे नाम का एक जरूरी हिस्सा बन गया हैं, जिसे छोड़कर 'ओमप्रकाश' की कोई पहचान नहीं। सब के विरोध के बावजूद भी ओमप्रकाश जी को नाम से बहुत लगाव है।

4.3.3 कृतित्व :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित साहित्य के एक प्रतिभासंपन्न, प्रबुद्ध तथा बहुमुखी विचारधारा के दलित साहित्यकार हैं। दलित साहित्य को विश्व तक पहुंचाने का काम अनेक साहित्यकारों ने किया, उनमे ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का नाम शीर्ष स्थान पर है। उनका समग्र साहित्य अपने अनुभूति की आग हैं। बचपन से लेकर जीवन की अंतिम साँस तक जातिभेद के कारण अनेक बार उन्हें अपमानित, प्रताड़ित होना पड़ा। इसलिए उन्होंने कविता, कहानी, आत्मकथा, नाटक, आलोचना, अनुवाद आदि विधाओं के माध्यम से दलित जीवन की दासता को अभिव्यक्त किया है। उनका साहित्य परिचय निम्नानुसार प्रस्तुत है–

4.3.3.1 कविता संग्रह :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के चार कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं वे इस प्रकार हैं–

4.3.3.1.1 सदियों का संताप :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का यह पहला कविता संग्रह है। जिसका प्रकाशन सन् 1989 में हुआ है। यह कविता संग्रह दलित उद्धारक युगपुरुष महमानव डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी को समर्पित करते हैं। प्रस्तुत संग्रह में वाल्मीकि जी ने दलित मानव का दर्द व्यक्त करते हुए दलित समाज को अपने अधिकार एवं हक के प्रति जागृत होने की प्रेरणा भी व्यक्त की है। इस संग्रह की अनेक कविताएँ आक्रोश और विद्रोह की भावना से भरी हुई हैं। परंपरागत रूढ़ि, परम्पराओं, अंधश्रद्धा, जातिभेद, नैतिकताओं के प्रति विद्रोह करती हुई दिखाई देती हैं। अन्याय, अत्याचार और शोषण की संस्कृति सभ्यता को नकारती हैं। हिंदू पौराणिक ग्रंथ,

मान्यताएँ, मिथक, कथाओं को व्यंग्य के रूप में कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इन कवितों में पूंजीवादी व्यवस्था की विदुवता तथा उससे मुक्ति पाने की ललक दिखाई देती है।

4.3.3.1.2 बस्स! बहुत हो चुका :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह दूसरा कविता संग्रह है। जिसका प्रकाशन सन 1997 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा हुआ है। प्रस्तुत कविता संग्रह में 'पेड़', 'वह मैं हूँ', 'उत्पोपाद', 'बाहर आएंगे एक दिन', 'खेत उदास है', 'घृणा तुम्हें मार सकती ह', 'यातना', 'पत्थर', 'हिंसा का अर्थ', 'अकाल', 'वे भयभीत है', 'कभी सोचा है', 'लाशों के बाद भी', 'कर्फ्यू के बावजूद', 'दंगों के बाद', 'पोस्टर', 'चुप्प रहना', 'जाति', 'वे भूखे ह', 'बस्स! बहुत हो चुका', 'भय', 'वंशज', 'सत्य की परिभाषा' आदि कवितायें संकलित हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में जहाँ एक ओर वर्णव्यवस्था के प्रति विद्रोह हैं वहीं दूसरी ओर दलित वर्ग की महत्ता को स्थापित करने की ललक भी है। प्रस्तुत संग्रह की कविता निजता से ज्यादा सामाजिकता को महत्ता देती है। इसीलिए दलित कविता का समूचा संघर्ष सामाजिकता के लिए है। दलित कविता का सामाजिक यथार्थ, जीवन संघर्ष, उसकी चेतना पारंपरिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह एवं नकार के रूप में दिखाई देती है।

4.3.3.1.3 अब और नहीं :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का यह तीसरा कविता संग्रह है। इस संग्रह मेन कुल 51 कविताएँ हैं। इस संग्रह को राधाकृष्ण प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली से सन् 2009 में प्रकाशित किया है। इस संग्रह में 'लेखा जोखा', 'आस्थि विसर्जन', 'आईना', 'जूता', 'जाति', 'किष्कीधा', 'दीवार के आरपार', 'काले दिनों में', 'कोई खतरा नहीं', 'कोलाहल', 'हमलावर', 'विस्फोट', 'मौत का चेहरा', 'एक और युद्ध', 'शब्द झूठ नहीं बोलते', 'प्रतिबंध', 'दहशत', 'लावा', 'इतिहास', 'असहमति', 'आंदोलन', 'रोशन के उस पार', 'रंगो का बोझ', 'विध्वंस बनकर खड़ी होगी नफरत', 'विरासत', 'बयान', 'अपने हिस्से की रोटी' आदि कविताएँ संकलित हैं।

प्रस्तुत कविता संग्रह की कविताओं में यथार्थ गहरे भावबोध के साथ सामाजिक शोषण का यथार्थ है। कविताओं का मूल भाव मानवीय मूल्यों की पक्षधरता को लेकर चलता हैं। वे अपनी कविताओं में मनुष्य को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। यह भाव समस्त कविताओं में आक्रोशजनित गंभीर अभिव्यक्ति से व्यक्त हुआ है। इन कविताओं में पौराणिक संदर्भ को वर्तमान स्थिति से जोड़कर मिथकों को नए अर्थों में प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि जी की कविता किसी न किसी ऐतिहासिक प्राचीन घटना को लेकर ही निर्माण होती है और उस सीमा तक पहुँच जाति है दलित, शोषित, पीड़ित व्यक्ति को सामाजिक तौर पर न्याय देना चाहती है। इस संग्रह की सभी कविताओ में मानव मुक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। 'किष्कीधा' कविता में 'बाली' का आक्रोश इस प्रकार व्यक्त हुआ है–

''मेरा अंधेरा तब्दील हो रहा है

कविताओं में

याद आ रही है मुझे

बल्कि की गुफा

और उसका क्रोध

4.3.3.1.4 शब्द कभी झूठ नहीं बोलते :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का यह चौथा कविता संग्रह हैं। इसका प्रकाशन सन् 2012 में अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है। प्रस्तुत कविता संग्रह में 'अंधेरे में शब्द', 'उन्हें दर हैं', 'तुम्हारी जात', 'वसुधैव कुटुंबकम', 'बंधुमा शब्द', 'जाति अहंकार', 'उस्ताव', 'भाग्यविधता', 'मुक्ति संघर्ष', 'जूता', 'आस्थि विसर्जन', 'ख़ानाबदोश', 'काला सूरज', 'शब्द कभी झूठ नहीं बोलते' आदि कविताएँ संकलित हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ डॉ. अम्बेडकर जीवन दर्शन एवं जीवन संघर्ष से प्रभावित है। यह कविताएँ सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, आर्थिक छदमों से सावधान करती हैं। यह कविताएँ संघर्षरत दलित जीवन के उस अंधेरे से बाहर आने की चेतना हैं जो हजारों साल से दलित को मनुष्य होने से दूर करते रहने में ही अपनी श्रेष्ठता मानता रहा है। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में आक्रोश, संघर्ष, नकार, विद्रोह, अतीत की स्थापित मान्यताओं से हैं, वर्तमान के छद्म से हैं लेकिन मुख्य लक्ष जीवन में घृणा की जगह प्रेम, समता, बंधुता, मानवीय मूल्यों का संचार करना ही लक्ष्य है।

4.3.3.2 कहानी संग्रह :–

वाल्मीकि जी ने तीन कहानी संग्रह लिखे हैं। वह निम्नलिखित हैं–

4.3.3.2.1 सलाम :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'सलाम' बहुचर्चित कहानी संग्रह हैं। इसका प्रकाशन सन् 2000 में राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से हुआ हैं। यह कहानी संग्रह हिंदी के महान कथाकार तथा समीक्षक राजेंद्र यादव को समर्पित किया है। इस संग्रह में 'सलाम' 'बैल की खाल', 'सपना', 'भय', 'कहाँ जाए सतीश', 'जिनावर', 'कुचक्र', 'अम्मा', 'ख़ानाबदोश', 'गोहत्या', 'ग्रहण', 'बिरमा की बहू', 'अधड़ आदि कहानियाँ संकलित हैं। यह संग्रह दलितों के जीवन संघर्ष और बैचेनी का जीवंत दस्तावेज़ हैं। दलित जीवन की व्यथा, छटपटाहट इन कहानियों स्पष्ट दिखाई देती हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ सहनुभूति की, मनोरंजन की कहानियाँ नहीं हैं बल्कि स्वानुभूति की कहनियाँ हैं। इन कहनियों की विशेषता यह हैं कि जहाँ एक और समाज के अन्तर्विरोधो को दिखती है वही वे दलितों में आत्मसम्मान से जीने कि लालसा उत्पन्न करती हैं। इन कहनियों के माध्यम से वर्चस्व की सत्ता को चुनौती

दी हैं, वही दबे कुचले शोषित, पीड़ित जनसमूह को प्रेरणा देकर उनके आस-पास में फैली सामाजिक, धार्मिक, विसंगतियों पर प्रहार किया हैं।

4.3.3.2.2 घुसपैठिये :-

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का यह दूसरा कहानी संग्रह हैं। इस संग्रह का प्रकाशन सन २००३ को राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ हैं। इस संग्रह में 'घुसपैठिये', 'यह अन्न नहीं', 'मुंबई कांड', 'शवयात्रा', 'प्रमोशन', 'कुडाघर', 'मैं ब्रामहण नहीं हूँ', 'रिहाई', 'ब्रह्मस्त्र', 'जंगल की रानी' आदि कहनियाँ संकलित हैं।

इस संग्रह की कहानियाँ दलित संदर्भो से जुड़ी हुई हैं। यह दलित जीवन का यथार्थ हैं। इन कहानियों में वाल्मीकि जी हमारा साक्षात्कार उन अमानुषिक स्थितियों, घटनाओं और प्रसंगों से करवाता हैं जो नि:संदेह मानवता के नाम कलंक हैं। इस संग्रह की सभी कहनियाँ दलित जीवन के सभी पहलुओं को उजागर करने में सशक्त रही हैं। एक तरह से ये सभी कहानियाँ दलित जीवन का यथार्थ हैं। इन कहानियों में तत्कालीन जाति-व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश है। अत: इस संग्रह की सभी कहानियाँ अनुभवजन्य होने के साथ साथ दलितों के सुख-दुख और उनकी मुखरता और संघर्ष को प्रस्तुत करती हैं।

4.3.3.3 आत्मकथा: 'जूठन'

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को प्रसिद्धि उनकी 'जूठन' आत्मकथा के कारण मिली। इस आत्मकथा का प्रकाशन सन् 1997 मे राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वारा हुआ। इसमें लेखक ने जन्म 1950 से लेकर 35 वर्ष (1985) तक की घटनाओं के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया है।

'जूठन' आत्मकथा में उन्होंने समाज में होनेवाले अपने जाति के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। उनके प्रति भद्द गलियाँ होती थी साथ ही निचले जाति के साथ होनेवाले सवर्ण समाज द्वारा अन्याय अत्याचार को प्रस्तुत किया है। 'जूठन' परंपरागत ब्राम्हणवादी मूल्यों की नए समतवादी मूल्यों की टकराहट से ध्वस्त करती है। एक नए सामाजिक ही नहीं, नए साहित्यिक मूल्यों को भी स्थापना करती है। 'जूठन' ऐसे ही उदाहरणों की शृंखला है, जिन्हें वाल्मीकि जी ने अपने पूरी संवेदनशीलता के साथ खुद भोगा है। इस आत्मकथा में लेखक ने स्वाभाविक ही अपने उस 'आत्म' की तलाश करने की कोशिश की हैं जिसे भारत का वर्णतंत्र सदियों से कुचलता आ रहा है, कभी परोक्ष रूप में कभी प्रत्यक्षत:।

वास्तव में 'जूठन' भारतीय समाज की दलित समाज के जीवन की विसंगतियों, समस्याओं और खूबियों और खामियों का खुलासा करता है। सारांशत: यह आत्मकथा भंगी चूहड़े जन जाति के दु:ख, दर्द, व्यथा, वेदना, रूढ़ि, परंपरा, रीति-रिवाज, अंधश्रद्धा, अशिक्षा और अमानवीय जीवन का जीवंत दस्तावेज़ है।

४.३.३.४ दलित साहित्य का सौंदर्य :-

ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह आलोचनात्मक ग्रंथ है। इसका प्रकाशन सन २००१ में राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली में हुआ। यह पुस्तक दलित साहित्य आंदोलन के कमी को पूरी करती है।

4.3.3.5 दो चेहरे (नाटक):–

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी द्वारा 'दो चेहरे' सन 1987 में लिखित एक लघुनाटक है। इस नाटक में छ दृश्य हैं। कुल 'तेरह' पात्र इस नाटक में प्रमुख रूप से विदूयमान हैं। जिसमें सवर्ण पात्र, दलित पात्र, नारी पात्र के जीवन का संघर्ष मजदूर वर्ग की आर्थिक विपन्नता, सुरक्षा, विद्रोह, मैनेजमेंट, मिल–मालिक, फैक्टरी, मालिकों द्वारा किया शोषण का चित्र प्रस्तुत है।

4.3.3.6 पुरस्कार एवं सम्मान :–

व्यक्ति अपने जीवन में ऐसा कुछ महान कार्य करते हुए आगे बढ़ता है, तब समाज, राष्ट्र उस अच्छे कार्य की सराहना हमेशा करता है। जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व महान एवं आदर्शवादी होता है, उस व्यक्ति को समाज, राष्ट्र हमेशा सलाम करता रहता हैं। अक्सर उसके गुणों का सम्मान किसी विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता है। ऐसा ही महान व्यक्तित्व इस दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का है। जिनके कार्य की परख कर अनेक सामाजिक संस्था, समाज, शासन तथा राष्ट्र ने उन्हें अनेक सम्मानों से विभूषित भी किया है। वह इस प्रकार हैं।

1. सन 1993 में डॉ. अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
2. सन 1995 में परिवेश सन्मान से सम्मानित किया गया।
3. सन 1996 में जयश्री सन्मान से सम्मानित किया गया।
4. सन 2001 में कथाक्रम सन्मान से सम्मानित किया गया।
5. सन 2004 में न्यू इण्डिया बुक पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
6. सन 2008 में साहित्याभूषण सम्मान द्वारा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने सम्मानित किया।

4.3.4 कविताओं का आशय एवं परिचय :–

ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'बस्स! बहुत हो चूका' काव्यसंग्रह में समाज में व्याप्त विषमता एवं जातिभेद का चित्रण किया है। उपेक्षित एवं दलित वर्ग के दु:ख दर्द को काव्य रूप दिया है। प्रस्तुत संग्रह की प्रमुख कविताओं का सक्षेप में परिचय इस प्रकार हैं–

4.3.4.1 शायद आप जानते हैं :–

प्रस्तुत कविता में कवि ने उच्च जाति के अहम दंभ को स्पष्ट किया है। भारतीय संस्कृति प्राचीन संस्कृति है। इस संस्कृति को आदर्शवादी संस्कृति मानी जाती है। इस संस्कृति के समर्थकों का कहना है कि उनके धर्म में मानवतावादी विचारधारा है लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि भारतीय संस्कृति के उच्च जातियों कि स्वार्थाधता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

''यज्ञों में पशुओं कि बलि चढ़ाना
किस संस्कृति के प्रतीक हैं

मैं नहीं जानता

शायद आप जानते हो।''

भारतीय संस्कृति के आक्षेप हैं कि यज्ञों में पशुओं कि बली चढाना किस संस्कृति का प्रतीक है हमें नहीं पता। शायद ये उच्च वर्ग जो उच्च वर्ग का दंभ भरता है उसे पता हो। लेकिन वर्तमानकालीन कवि बचपन कि उस स्मृति का सामना रचनात्मक स्तर पर करते हुए पशु बली प्रथा को अस्वीकार करता है।

कवि कहता है कि तुम्हारा रचा षड्यंत्र एक दिन तुम्हें साँप बनकर डसेगा। गंगा किनारे किसी वटवृक्ष के नीचे बैठकर आत्मतुष्टि के लिए तुम भागवत पाठ करलो ताकि कोई आत्मा भटकते भटकते किसी कुत्ते या सूअर के मरुत देह में प्रवेश न कर पाये। या फिर पुनर्जन्म कि लालसा में किसी चूहड़े या डोम के घर न पैदा हो जाये। कवि हिदुत्ववादियों से उनके द्वारा प्रस्थापित अद्वैतवाद का उदाहरण देकर पुछता है–

चूहड़े या डोम की आत्मा

ब्रम्ह का अंश क्यों नहीं है

मैं नहीं जानता

शायद आप जानते हो

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि एक व्यापक प्रश्न उठाता है कि 'चूहड़े' या 'डोम' की आत्मा में ब्रम्हा का अंश क्यों नहीं है? इस कविता में कवि ने वर्णवादी समाज से प्रश्नवाचक संवाद की पहल की है। अवतारवादी चिंतकों को सूअर के शरीर में ईश्वर की आत्मा का प्रवेश चलता है परंतु इंसान के रूप में दलित पुज्यनीय नहीं हो सकता। कवि ने प्रस्तुत कविता में संस्कृति के खोखलेपन को स्पष्ट किया है।

4.3.4.2 मुट्ठी भर चावल :–

प्रस्तुत कविता में परंपरागत दलित जीवन को प्रस्तुत किया है। दलित समाज सदियों से प्रताड़ित, अपमानित, शोषित एवं अमानवीय जीवन जी रहा है। दलितों की स्मृतियाँ अभी जिंदा हैं। दलितों को अपने पुरखों के कष्टमय, यातनभरे दिन याद आते है। उच्चावर्ग द्वारा किये अन्याय–अत्याचार, यातनाएँ, अपमान आदि को याद दिलाकर कवि उनमे चेतना जागृत करने का काम करता है।

''ओ मेरे अज्ञान, अनाम पुरखों

तुम्हारे मूक शब्द

जल रहें हैं

दहकती राख की तरह

राख जो लगातार काँप रही हैं

रोष में भरी हुई''

4.3.4.3 बाहर जाएंगे एक दिन :–

प्रस्तुत कविता में कवि ने दलितों की समस्याओं को उजागर किया है साथ ही दलित समाज में स्वाभिमान जगाने का प्रयास किया है। कवि कहता है की दलितों के बच्चों को न कभी दूध पीने को मिला न कभी दही और मखखन खाने को मिला है। उन्हें कभी सोने के लिए गद्देदार बिस्तर नहीं मिला। वह परंपरा से बेहया मौसम से लगातार लढ रहे हैं। दलितों ने अपने बच्चों को भूका प्यासा रखकर पाला–पोसा है। उन्हें बहला फुसलाकर इंतजार करने के लिए कहा है कि एक दिन तुम्हारे ये दःखमय, यातनभरे और संघर्ष भरे दिन निकल जायेंगे। उन्हें भरोसा या विश्वास है कि एक दिन शोषकों में बदलाव आएगा। मनुष्य जीवन जीता है आशा पर। दलित भी इस आशा पर जी रहा है कि आज नहीं तो कल उसे मानव समझा जाएगा।

यह भूके प्यासे बच्चे एक दिन तुम्हारे इस स्वार्थी षड्यंत्र को समझ जायेंगे। ये बच्चे अपने पुरखों की तरह गुलामी नहीं करेंगे। वे अपने अधिकार एवं सम्मान के लिए विद्रोह करेंगे।

4.3.4.4 घृणा तुम्हें मार सकती हैं :–

प्रस्तुत कविता में कवि ने भारत में दिखाई देनेवाली विषमता का वर्णन किया हैं और इसे दूर करने के लिए लोगों की दिलों को जोड़ने का संदेश दिया है। प्रस्तुत कविता में कवि ने दलित और सवर्ण समाज की जीवनशैली को दर्शाया हैं। सदियों से दलितों पर सवर्ण समाज अन्याय, अत्याचार करता आया हैं। परम्परा से दलित अमानुष यातनाओं को सहते आ रहे हैं। कवि सवर्ण समाज को चेतावनी देते हैं कि दलितों कि यतनाओं, दुःख–दर्द को एक दिन के लिए सहो या उनकी यतनाओं को महसूस करों, तब तुम्हें उनके दुःख–दर्द, वेदना एवं यातनाओं का पता चलेगा

''रोटी कि महक
जानती है आग का स्वाद
और
पहुँचती है नासिका रंध्र तक
हड्डियों के रस में डूब कर''

कवि दलित समाज को संदेश देते हैं कि अपने जीवन को सुंदर बनाना हैं तो तुम्हें भी इस कायरता को छोड़कर बाहर आना होगा। उच्चा वर्ग की घृणा तुम्हें न जिंदा रख सकती है, न प्रेम दे सकती हैं। कवि दलित समाज को जागरूक एवं सतर्क रहने का आवाहन करते हैं।

4.3.4.5 पण्डित का चेहरा–

प्रस्तुत कविता में वर्णव्यवस्था के कारण पीड़ित एवं परंपरागत रूढ़ियों के कारण शोषित दलित समाज का वास्तविक चित्रण किया है। वास्तव में दलित समाज अज्ञानी, अशिक्षित होने के कारण इन रूढ़ियों का शिकार हुआ है। कवि गाँव के पण्डित का वर्णन करता है कि गाँव का पंडित पुरानी पोथियों में शब्दों को

देखकर भविष्य बता देता था। दक्षिणा की राशि देखकर गाँव का पंडित उन शब्दों के अर्थों को बदल देता था। आगे कवि कहता है कि गाँव के पंडित के पास मेरा भविष्य पूंछने गयी मेरी अनपढ़, देहातिन माँ को भगा दिया था। कवि उस पंडित का चेहरा याद करना चाहता है, उस पोथी को पुस्तकालयों, दुकानों में ढूँढना चाहता है कि उसमें देखना चाहता है कवि का नाम उस पोथी में लिखा था या नहीं। यथा;

''पंडित का चेहरा
याद करना चाहता हूँ
पुस्तकों कि दुकान में
पुस्तकालयों में तलाशता हूँ
उस तुड़ी-मुड़ी पीले रंग कि पोथी को
जो दुर्लभ अप्राप्य वस्तु कि तरह
कहीं दिखाई नहीं देती
मैं जानना चाहता हूँ
उस पोथी में
मेरा नाम लिखा था या नहीं''

प्रस्तुत कविता में कवि ने अशिक्षित, अज्ञानी दलित समाज के शोषण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। शिक्षा के द्वारा ही दलितों का विकास संभव है। कवि दलित समाज को शिक्षित होने का संदेश देता है।

4.3.4.6 घृणा और प्रेम कहाँ से शुरू होते हैं :-

प्रस्तुत कविता में दलितों के शोषण का चित्रण किया हैं सवर्ण समाज ने सदियों से दलित वर्ग को प्रेम की बजाय घृणा और तिरस्कार ही मिला है। सवर्ण समाज ने दलित मजदूर वर्ग का शोषण किया है। अंधविश्वास एवं अज्ञान के कारण दलितों को सत्य से दूर रखा। धर्म कि दुहाई देकर उनपर अमानवीय जुल्म ढाये हैं। अस्पृश्यता एवं छुआछूत कि समस्या को बरकरार रखने का प्रयास किया हैं-

''याद करों
उस सरकारी क्लर्क का चेहरा
जिसे पानी पिलाने से कतराता है
चपरासी।''

कवि ने दलित समाज के प्रति उच्चवर्ग की मानसिकता का पर्दाफाश किया है। दलित समाज शिक्षित होकर सरकारी नौकर तो बना लेकिन उच्च पद पर आसीन दलित अधिकारी को निचले स्तर का सवर्ण

चपरासी अपनी जातिगत उच्चता, दंभ के कारण मान–सम्मान नहीं दे रहा है। प्रस्तुत कविता में जातीयता का चित्र प्रस्तुत किया है।

दलित वर्ग में जो अज्ञान, अंधविश्वास, उनका होनेवाला शोषण, नारी की दयनीय स्थिति आदि का चित्रण 'बस्स! बहुत हो चुका' काव्य संग्रह में किया है समाज में आज भी दलित वर्ग परंपरागत ढंग से जीवनयापन कर रहा है। अर्थभाव, अशिक्षा, अंधविश्वास, जातीयता आदि के कारण दलित वर्ग अपना जीवन दुर्बलता एवं दरिद्रता से जी रहे हैं। दलित वर्ग की जी तोड़ मेहनत करके भी खाली पेट रहते हैं। इन्हें पेट भर खाना भी नहीं मिलता। हर समय इन्हें दर–दर की ठोंकरे खानी पड़ती हैं, समाज में उन्हें कोई जगह नहीं हैं। मानव होने के बावजूद इनका कोई वजूद नहीं है। प्राचीन काल से ही दलित समाज सवर्णों के अन्याय–अत्याचार का शिकार बनते आए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने 'बस्स! बहुत हो चुका' काव्य–संग्रह में दलित समाज का यथार्थ चित्रण किया है।

4.3.4.7 कभी सोचा था :–

प्रस्तुत कविता में कवि ने समाज में व्याप्त वर्णव्यवस्था का चित्रण किया है। समाज में उच्चवर्ग अपने अहम, दंभ एवं स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण वर्णव्यवस्था को बनाए रखने का भरसक प्रयास करता है। उच्चवर्ग वर्णव्यवस्था को आदर्श मानते हैं। परंतु मार्क्सवादी विचारकों ने वर्णव्यवस्था का विरोध किया है। कवि कहता है कि जब किसी दंगो में कोई अब्दुल, कासिम, कल्लू, या बिरजू मारे जाते हैं। तब तुम स्वयं को सहिष्णु बताकर सत्यनारायन की कथा सुनाते हो। और भूल जाते हो अखबार पढ़ना। इन घटनाओं के प्रति आँख मोड लेते हो। कवि कहता है की उच्चवर्ग साहिष्णुता की बाते जरूर करता है परंतु वास्तव में जब किसी दंगे में दलित व्यक्ति मारे जाते हैं तो उसे दु:ख नहीं होता। क्योंकि ये अभी भी मानवता को समझ नहीं सके हैं।

> ''कभी सोचा हैं
> गंधे नाले के किनारे बसे
> वर्णव्यवस्था के मारे लोग
> इस तरह क्यों जीते हैं
> तुम पराये क्यों लगते हो उन्हें
> कभी सोचा हैं''

भारतीय समाज में आज भी वर्णव्यवस्था स्थायी रूप से पाई जाती है। निम्नवर्ग और उच्चवर्ग के बीच खाई बढ़ती जा रही है। गरीब गरीब बनाता जा रहा है, अमीर अधिक अमीर बनता जा रहा हैं। कवि इस बढ़ती असमानता का विरोध करता हैं। कवि समताधिष्ठित समाज स्थापित करना चाहते हैं।

4.3.4.8 कविता सिर्फ कविता होती है–

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि एक समर्थ साहित्यकार है, लेकिन उससे कई अधिक विचार चिंतक। उनकी हर रचना ही नहीं देती बल्कि दिशा भी देकर जाती है। उनकी कविता भी इसके लिए अपवाद नहीं है। उनकी मान्यता है कि कवि सिर्फ कविता नहीं लिखता बल्कि वह अनेक दिशाओं की ओर संकेत करता है। यह भी सूचित करता है कि हमें उनमें से किस ओर जाना है और किस ओर नहीं।

'कविता सिर्फ कविता नहीं होती' में कवि ने एक ऐसा श्रोता प्रस्तुत किया है, जो कवि से ही सवाल करता है कि ये कविता किसके बारे में है? उसका सवाल कवि को चिंतन के लिए बाध्य करता है। वह निरुत्तर ही नहीं बल्कि परेशान भी होता है कि कविता में उसे क्या कहना है? क्या कविता का सुनिश्चित अर्थ भी है। असल में कवि इस कविता में कोई एक नहीं बल्कि उसके विविध आयाम सूचित करता है। इसीलिए कविता की विविधता तथा विशेषता को रेखांकित करने के लिए वह कहता है–

''कविता कि जगह लड़की
लड़की कि जगह सन्नाटा
सन्नाटे कि जगह चीख
चीख कि जगह गाली
गाली कि जगह डंडा
डंडे कि जगह गोली...''

शब्द रख के इसी कविता के आशय और विषय को समझ लेने का सुझाव देता है। शब्दों के साथ, कविता भले ही मौन हो लेकिन उसका आशय वैविध्य मुखर हो जाता है।

इसीलिए कवि की मान्यता है कि कविता भले ही नाम एक हो लेकिन काम अनेक करती है, अनेक अर्थ देते हुए। तभी तो कवि ने कविता का शीर्षक 'कविता सिर्फ कविता नहीं होती' देकर उसकी बहुआयामी, बहुविध विशेषता प्रस्तुत की है, प्रासंगिकता के साथ। कवि का मानना सार्थक है कि कविता भले दिखने में चुप हो लेकिन वह सर्द अर्थात मुखर होती है। उतनी ही मुखर, जितनी कि एक जागरूक चौकीदार कि बजती हुई सिटी। उस सिटी कि आवाज जितनी प्रखर और मुखर होती है, कविता उतनी ही सराबोर होती है– अपने समय और समाज से।

4.3.4.9 आदिम रूप :–

प्रस्तुत कविता में दलितों के आशावाद का भाव स्पष्ट झलकता है। आज अनेक कवि परिस्थितियों की मार से विपरीत दिशा की ओर जाते हुए नजर आ रहें हैं। परंतु दलित कवि दलित, पीड़ित, शोषित, प्रताड़ित मनुष्य में व्याप्त उदासिनता एवं निराशा का स्वर बदलने के लिए एक नई चेतना की गर्जना करता है। कवि को आशा है कि शब्दों का खोखलापन एक न एक दिन उजागर होगा। ये शब्द एक दिन अपने आदिम रूप

में प्रकट होकर दलितों के संघर्ष को अभिव्यक्त करेगा। आज जो भी तर्क छद्म बुद्धिजीवी दलितों के खिलाफ देते हैं। वह एक दिन समाप्त हो जाएंगें। कवि कहता है.......

बचा रहा विश्वास
कि एक न एक दिन
सारे तर्क
लम्पट बौद्धिकता में लिपटे साबित होंगे
और,
उजाड़ साँझ के बाद का अंधेरा
छिन्न-भिन्न होकर
उजली धूप का आभास होगा

कवि के अनुसार दलितों के विरोध में समाज के अन्य सारे वर्ग के लोग एकजुट हो जाते हैं, लेकिन इस स्थिति के बीच भी कवि को यह विश्वास है कि एक दिन शब्द अवश्य ही धूप कि तरह ऊर्जावान हो जाएगा-

शब्द! तुम्हें कसम है
एक न एक दिन तुम
उतरोगे पृथ्वी पर
धूप बन कर !

दलितों के जीवन में सुधार होगा, खुशहाली आएगी। शोषकों की मानसिकता परिवर्तित हो जाएगी। कवि को आशा है कि एक न एक दिन दलितों के जीवन में जरूर परिवर्तन आएगा।

4.3.4.10 बस्स! बहुत हो चुका :-

प्रस्तुत कविता में दलित जीवन के अमानवीय दाहक अनुभवों को अभिव्यक्त किया है। सदियों से दलितों पर हुए शोषण की मार्मिकता को स्पष्ट किया है। कवि कहता हैं की जब भी में झाड़ू, गंदगी से भरी बाल्टी कनस्तर किसी के हाँथ में देखता हूँ। मेरे रगों में अंगारे दहकने लगते हैं। मेरी आँखों में इतिहास का स्थाहपन उतर जाता है। दलितों के साथ हुई कुटिलता मेरे स्मरण में आ जाती है। भीड़ के बीच भी झाड़ू की आवाज साफ सुनाई देती है। कवि दलितों के प्रति अन्याय अत्याचार के प्रति आक्रोश अभिव्यक्त करता है।

''गहरी पथरीली नदी में
असंख्य मुख पीड़ाएँ

कसमसा रहीं हैं

मुखर होने के लिए शेष ए भरी हुई

बस्स!

बहुत हो चुका चुप रहना

निरर्थक पड़े पत्थर

अब काम आएगें संतप्त जनों के''

प्रस्तुत कविता में दु:खाद त्रासदीपूर्ण जीवन को प्रकट करती हैं। उसके पश्चात दलितों में उठानेवाला आक्रोश व्यक्त होता है। कवि चूँकि उस जाति से सबंधित हैं इसलिए अनुभव करता है और उसकी आँखों में इतिहास कि क्रूरता एवं अन्याय प्रतिबिंबित होने लगता है। वास्तव में कवि मानवीय समाज या भीड़ के बीच रहते हुए भी इन ऐतिहासिक अनुभाओं से मुक्त नहीं हो पता। अतीत से वर्तमान के बीच बिखरी समस्त त्रासदीपूर्ण जीवन स्थितियाँ उसे लगातार बैचेन करती है। इसलिए उसके भीतर संवेदनाओं की गहरी पथरीली नदी बहती है, जो फुट पड़ने के लिए व्याकुल है।

4.3.4.11 कविताओं में चित्रित समस्याएँ :–

वर्तमान युग में मानव प्रगति कर रहा है, लेकिन इस प्रगति के साथ–साथ वह अनेक जटिल समस्याओं को जन्म दे रहा है। परिणांमत: आज का मानव बहुत सी समस्याओं में घिरा हुआ नजर आता है। मानव आज नए नए आविष्कार कर रहा है। वही विकास के साथ समस्याएँ भी निर्माण होती है।

प्राचीन काल से लेकर आज तक दलित जीवन में विभिन्न समस्याएँ रहीं हैं, इसमें कई समस्याओं का समाधान हो चुका है, तो कई समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी रही है। हिंदू धर्म में जन्म के आधार पर वर्ण–व्यवस्था निश्चित की गई है। परिणामत: समाज में चारों वर्ण बन गए, जिसके सबसे निचले स्तर पर दलित हैं। इसी कारण वह हीन वर्ण माना गया। अछूत समझा गया। इन्हें सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, अधिकारों से वंचित रखा गया। जिस कारण जातीयता निर्माण हो गई। इस तरह दलित जीवन में समस्याओं का निर्माण हुआ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने कविता संग्रह 'बस्स! बहुत हो चुका' में दलित जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। जातियता, आर्थिक शोषण, नारी समस्या, भूक, अंधश्रद्धा, अज्ञान आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। जिनका विस्तार से विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

जातियता की समस्या :–

प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था वर्णव्यवस्था के आधार पर आधारित थी। आज तक भारतीय समाज व्यवस्था में जाति का विशेष महत्व रहा हैं। ग्रामीण भागों के लोग दंभ एवं उच्चता के कारण जातिव्यवस्था को सुरक्षित रखना चाहते हैं, इसी कारण जातिय भेदाभेद की समस्या निर्माण हो गई।

स्वाधीनता आंदोलनों में लोग जात-पात भूलकर एक होकर अंगर्जों के विरुद्ध लढ़े थे। परंतु स्वाधिनता के बाद यही भारतीय समाज जातिय भेदाभेद की समस्या ने जन्म ले लिया। जातीयता मिटाने के लिए समाज सुधार होना आवश्यक है। महात्मा फुले, राजर्षि शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों ने जातीयता को हराने के लिए प्रयास किए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जाति' नमक कविता में समाज में व्याप्त जातीयता का चित्र इस प्रकार व्यक्त हुआ है।

''स्वीकार्य नहीं मुझे
जाना
मृत्यु के बाद
तुम्हारे स्वर्ग में
वहाँ भी तुम
पहचानोंगे मुझे
मेरी जाति से ही।''

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि बताता हैं कि जातीयता की जड़े समाज इस कदर बैठ गई हैं कि मनुष्य के मृत्यु के बाद भी उसे उसकी जाति से ही पहचाना जाता है। प्रस्तुत कविता के माध्यम से जातिव्यवस्था के विरोध में संघर्ष एवं विद्रोह को अभिव्यक्त किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने 'पेड़' कविता में समाज में व्यक्त वर्णव्यवस्था एवं वर्णभेद का चित्रण किया है। भारतीय समाज व्यवस्था वर्णव्यवस्था पर आधारित है। समाज वर्गो में विभाजित है ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। प्रस्तुत कविता में वर्णाश्रम आधारित समाज व्यवस्था पर जातीयता का चित्रण किया है।

''पेड़
तुम उसी वक्त तक
पेड़ हो
जब तक ये हरे पत्ते
हिल रहें हैं
तुम्हारी टहनियों पर

प्रस्तुत कविताओं के माध्यम से समाज में व्याप्त जातियता का यथार्थ अंकन किया है।

शोषण की समस्या :-

भारतीय समाज व्यवस्था वर्णव्यवस्था पर आधारित है। इस वर्णव्यवस्था में उच्च वर्ग का हर एक व्यक्ति अपने स्वार्थ एवं हितों के लिए अपने से निचले वर्ग का शोषण करता है। इसी वर्ण व्यवस्था के कारण दलितों का शोषण हो रहा हैं। नए नए हथकंडे अपनाकर दलितों का शोषण कर रहे हैं।

अज्ञान, अशिक्षा एवं अंधश्रद्धा के द्वारा दलित वर्ग का जमीदार, सरकारी अफसर, धार्मिक व्यक्ति, महाजन, साहूकार आदि के द्वारा शोषण हो रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविताओं में शोषण की समस्याओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

आज दलितों में शिक्षा के कारण जागरूकता आ चुकी हैं। परंतु अनेक गाँवों में दलितों की स्थिति में कुछ भी सुधार नजर नहीं आता। कवि सवाल करता है कि दलित कारीगर अपने कौशल्य से मूर्तियाँ गढ़ता है। उन्हीं मूर्तियों को आप मंदिर में पूजते हो परंतु उस दलित मजदूर को अपनाने के लिए घबराते हो। कवि कहता है–

क्यों नहीं जगाती आस्था
दवों कि पाषाण मूर्तियाँ
जो गढ़ी हैं मैंने ही
छैनि–हथौड़े के साढ़े वार से

कवि ने प्रस्तुत कविता में पाखंडी समाज व्यवस्था का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए दलित समाज का हो रहा शोषण प्रस्तुत किया है।

कवि पंडितों की पाखंडी प्रहरियों का विरोध करता है। दलित स्त्रियों की अज्ञानता के कारण होनेवाले शोषण को व्यक्त किया है–

''माँ भी अनपढ़ देहातन
जिसकी उँगलियों में बसी थी गंध
उसे विश्वास था
पण्डित की पोथी पर
उसी तरह जैसे विश्वास था।
मिट्ठी की गंध पर''

दलित वर्ग सदियों से यातनाओं को सह रहा है। लेकिन दलित वर्ग अब उस कठोर दासता को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। वह अब इन यतनाओं के विरोध में आक्रोश कर रहा है। कवि दलितों की यातनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहता है–

''गहरी पथरीली नदी में
असंख्य मुक मीड़ाए
कसमसा रही हैं
मुखर होने के लिए

शेष से भरी हुई

बस्स!

बहुत हो रहा चुप रहना।''

दलितों ने जिस दुःख पीड़ाओं को भोगा हैं उसी की यथार्थ अभिव्यक्ति वाल्मीकि जी ने प्रस्तुत कविताओं के माध्यम से की है। दलितों का शोषण यह रोज की बात हो गई है। यह तो शोषणकर्ताओं की नीति बन गई है। इससे स्पष्ट होता हैं कि सवर्ण मानसिकता केवल दलितों का शोषण करना चाहती है। उन्हें अपने पैरो तले की जुटी बनाना चाहते है।

अंधश्रद्धा एवं धार्मिक पाखंडता की समस्या :-

भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म के नाम पर अज्ञानी अशिक्षित लोगों द्वारा शोषण किया जाता है। आम जनता के अज्ञान का लाभ उठाकर धर्म की आड़ में आर्थिक, बौद्धिक, मानसिक शोषण किया जाता है। ईश्वर के प्रतिनिधि कहे जानेवाले पंडित पुरोहितों का वर्ग हमारे समाज में अधिक मात्रा में हैं। निम्न वर्ग अज्ञानत के कारण धर्म की पाखंडता के जाल में फसता जा रहा है। सभी लोगों के मन में धर्म के प्रति श्रद्धा होती है। धर्म की इसी शक्ति के कारण लोग पुरानी रूढ़ि परंपरा का पालन करते है। इसी कारण समाज में अंधविश्वास निर्माण हुआ। प्रस्तुत कविता संग्रह ङबस्स बहुत हो चुकाफ में धर्मान्धता को स्पष्ट करते हुए कवि कहता हैं---

''क्यों नहीं आती बाढ़ गंगा में

क्यों नहीं उठकर बैठ गया अधजला मुर्दा

काशी के मणिकर्णिका घाट पर

क्यों नहीं उंमाडा चक्रवात

महासागर की विस्तृत लहरों पर

जब पुष्पवर्षा की थी देवताओं ने तपस्वी की हत्यापर''

तपस्वी शंबूक की हत्या पर देवताओं ने पुष्पवर्षा की थी गंगा में क्यों नहीं आई बाढ़, महासागर में चक्रवात क्यों नहीं हुआ? इन धर्मग्रथों का उपयोग अवसरवादी सावर्णों के मतलब के लिए किया जाता है। दलितों के शोषण का मूल धर्मग्रंथ हैं उसे ही कवि नष्ट करना चाहते हैं, जो संस्कृति की आड़ में हमारा शोषण कर रहे हैं।

ब्रामहणवादी विचारधारा को प्रस्तुत करते हुए कवि दलितों के अज्ञान का फायदा किस प्रकार उठाया जा रहा हैं इसे स्पष्ट करते हैं---

''शब्द कभी झूठ नहीं बोलते

झूठ बोलते हैं उनके अर्थ

अर्थ जिसे बदल लेता था

गाँव का पंडित

दक्षिणा की राशि देखकर''

कवि ने पंडितो को पाखंडी प्रवृत्ति को प्रस्तुत करते हुए उनपर तीखा प्रहार किया है। यह समाज व्यवस्था उच्च वर्ग के इशारों पर चल रहीं है। उनकी पाखंडी बुद्धि के कारण समाज में असमानता, अंधश्रद्धा व्याप्त है। कवि ने इसी पाखंडी प्रवृत्ति की समस्या का चित्रण किया है।

दलित नारी जीवन की समस्या :–

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। प्राचीन काल से नारी पुरुषों के हाथों का खिलोना बन चुकी है। उच्च वर्ग दलित नारी को सिर्फ सुख चैन का साधन मानकर उसका शारीरिक शोषण करते आए है। आज भारतीय नारी भारतीय संस्कृति की विचारधारा को त्यागने की सोच रही हैं। भारतीय नारी परंपरागत धारणाओं को न पूरी तरह ठुकरा पाती है न पाश्चात्य धारणाओं को पूरी तरह अपना पाती है। वह अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए समस्त नीतिमूल्यों को ठुकराना चाहती है। शोषकों से मुक्ति पाना चाहती हैं। नारी अपने पर हुए अन्याय का बड़े ही पुरज़ोर से विरोध कर रही है।

प्रस्तुत संग्रह की कविताओ में स्त्री जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति संवेदना के साथ व्यक्त हुई है।

''रात की साथों में

वह तलाशती है

अपने हीस्से का उजाला

धीरे से दुलारती है

गहरी नींद में सोये बच्चों को''

दलित स्त्री का जीवन नरक के समान है। वह अपना घर चलाने के लिए उच्च वर्ग के घर में बर्तन माँजना, कपड़े धोना आदि काम करती हैं। परंतु उसने एक दिन काम नहीं किया तो उसे भूख से लड़ना पड़ता हैं। इसका यथार्थ चित्र कवि प्रस्तुत करता है–

''लकड़ी की पाटी पर बैठकर

वह कूटती हैं कपड़े

माँजती हैं बर्तन

डाँटती हैं बच्चो को

कुढ़ती हैं

चिल्लाती हैं

उस समय जब उसे होना चाहिए शांत''

दलित नारी की पीड़ा का प्रस्तुत कविता में व्यक्त किया हैं। भूक मिटाने के लिए उसे हर दिन संघर्ष करना पड़ता हैं। कवि ने हमारे देश में नारी विपरीत स्थिति का चित्रण किया है। कवि कहते हैं–

''सुबह घर से निकलती माँ

और शाम को निढाल थकी

अंधेरे में घर लौटी स्त्री

एक सी दिखाई पड़ती हैं।''

सुबह काम पर जाती हुई स्त्री और शाम को वापस आती हुई स्त्री एक जैसी दिखाई पड़ती है। कवि ने यहाँ नारी शोषण की दाहकता का चित्रण किया है। दलित नारी आज शिक्षित हो रहीं हैं फिर भी आज भी उच्च वर्ग का दलित स्त्रियों के प्रति देखने का रवैया नहीं बदला है। उच्च वर्ग की मानसिकता में परिवर्तन होना आवश्यक है। वाल्मीकि जी दलित नारी को आत्मनिर्भर एवं सजग बनाने के लिए प्रेरित करते हैं।

'पंडित का चेहरा' कविता में कवि ने परंपरागत रुढीयों से ग्रस्त दलित जीवन के दाहक अनुभवों को अभिव्यक्त किया है। उच्चवर्गीय पंडित बाम्हण की मानसिकता को यथार्थ रूप उजागर किया है। कवि कहता हैं कि मैं पंडित की पोथी में लिखे हुए शब्द और उनके अर्थ जानना चाहता हूँ जिसे गाँव का पंडित दक्षिणा की राशि देखकर उसका अर्थ बदल देता था। मेरी माँ अनपढ़ गँवार थी। उसे पंडित की पोथी पर विश्वास था। मेरा भविष्य पुंछने गई माँ को पंडित ने डांटकर भागा दिया था। कवि उस पोथियों को पुस्तकों की दुकानों में, पुस्तकालयों में ढूँढने की कोशिश करता हैं। कवि देखना चाहता हैं कि उस पोथी में कवि नाम लिखा था या नहीं। कवि कहता हैं---

पंडित का चेहरा

याद करना चाहता हूँ

पुस्तकों कि दुकान में

पुस्तकालयों में तलाशता हूँ

उस तुड़ी मुड़ी पीले रंग की पोथी को

जो दुर्लभ अप्राप्य वस्तु की तरह

काही दिखायी नहीं देती

मैं जानना चाहता हूँ

उस पोथी में

मेरा नाम लिखा था या नहीं

दलितों की अर्थीक, शैक्षिक स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कविता में हुआ है। कवि ने दलित वर्ग में व्याप्त अंधविश्वास, अशिक्षा एवं अज्ञानता को उजागर किया है।

इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में जातीयता की समस्या, अन्याय अत्याचार की समस्या, शोषण की समस्या, धार्मिक पाखंडता की समस्या, दलित नारी जीवन की समस्या आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म .... को हुआ है।

   अ) 30 जून 1950 ब) 30 जुलाई 1950

   क) 30 अगस्त 1950 ड) 31 मई 1951

2. ओमप्रकाश वाल्मीकि के माता का नाम .... था।

   अ) मुकुंदी ब) लक्ष्मी क) विमला ड) चंदा

3. ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिता का नाम............था।

   अ) छोटनलाल ब) मगनलाल क) शामलाल ड) रामकिशन

4. ओमप्रकाश वाल्मीकि के पत्नी का नाम ....था।

   अ) विमला ब) चंदा क) लक्ष्मी ड) मुकुंदी

5. ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित .... आत्मकथा है।

   अ) अपने अपने पिंजरे आ) मेरा बचपन मेरे खंदो पर

   ई) शिकंजे का दर्द इ) जूठन

6. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का पहला कविता संग्रह .... है।

   अ) अब और नहीं आ) बस्स बहुत हो चुका

   इ) सदियों का संताप ई) शब्द कभी झूठ नहीं बोलते

7. 'अकाल' नामक कविता .... संग्रह में संकलित है।

   अ) अब और नहीं आ) बस्स बहुत हो चुका

   इ) सदियों का संताप ई) शब्द कभी झूठ नहीं बोलते

8. ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'अब और नहीं' कविता संग्रह का प्रकाशन सन .... में हुआ है।

   अ) 2009 आ) 2010 ई) 2011 इ) 2012

9. ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'बस्स बहुत हो चुका' कविता संग्रह का प्रकाशन सन .... में हुआ है।

अ) 2009 आ) 1997 क) 1998 ड) 2000

10. ओमप्रकाश वाल्मीकि का प्रथम कहानी संग्रह ....है।

अ) घुसपैठिए आ) सलाम क) छतरी स) खरौच

11. ओमप्रकाश वाल्मीकि के लघु नाटक .... है।

अ) रंग और व्यंग आ) दो चेहरे क) अदालतनामा ड) अछूत का बेटा

12. ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'जूठन' कविता संग्रह का प्रकाशन सन .... में हुआ है।

अ) 2001 आ) 1997 क) 1998 ड) 2000

13. ओमप्रकाश वाल्मीकि का आलोचनात्मक ग्रंथ दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र सन .... प्रकाशित हुआ है।

अ) 2001 आ) 2002 क) 2003 ड) 2004

14. ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'मुट्ठी भर चावल' नामक कविता .... में संकलित है।

अ)अब और नहीं आ) बस्स बहुत हो चुका

इ) सदियों का संताप ई) शब्द कभी झूठ नहीं बोलते

15. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को सन......... में कथाक्रम सन्मान से सम्मानित किया गया।

अ) 2001 आ) 2002 क) 2003 ड) 2004

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

तहखाना– वह कोठरी या घर जो मजीन के नीचे बना हो, **मरघट–** बहुत ही कुरूप और विकराल आकृति का रूप, **दक्षिणा**– वह धन जो बामन या पुरोहितों को यज्ञादि कर्म कराने के पीछे दिया जाता है।, **देहातिन**– गाँव में निवास करनेवाली नासिका **रंध्र–** नासिका छिद्र, **कापुरूष–** कायर, नीच, कुत्सित, **बियाबान**– ऐसा उजाड़ स्थान या जंगल जहां कोसों तक पनि ना मिले, **वृत्ताकार**– वृत्त के आकार का, **निरर्थक**–अर्थरहित।

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1. 30 जून 1950 2. अ) मुकुंदी 3. अ) छोटनलाल 4. ब) चंदा

5. इ) जूठन 6. इ) सदियों का संताप 7.आ) बस्स बहुत हो चुका

8. अ 2009 9. आ) 1997 10. आ) सलाम 11. आ) दो चेहरे

12. आ) 1997 13. 14. आ) बस्स बहुत हो चुका 15. अ) 2001

4.7 सारांश

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने दलित जीवन का यथार्थ वर्णन करके दलितों में आत्मभान एवं आत्मसम्मान जगाने का प्रयास किया है।
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों की पीड़ा एवं वेदना को वाणी दी है।
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने कविताओं के माध्यम से दलित जीवन की समस्याओं को अभिव्यक्त किया है।
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कवितायें मानो भारतीय वर्णव्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करती है जो पाठकों को सजग एवं सचेत करती है।
5. वाल्मीकि जी कविता निजता से ज्यादा सामाजिकता को महत्ता देती है, इसीलिए दलित कविता का समूचा संघर्ष सामाजिकता के लिए है। दलित कविता का सामाजिक यथार्थ, जीवन संघर्ष और उसकी चेतना की आंच पर तपकर पारंपरिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह एवं नकार के रूप में अभिव्यक्त होता है।
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कविताओं में आक्रोश, संघर्ष, नकार, विद्रोह, अतीत की स्थापित मान्यताओं से है, वर्तमान के छदम से है, लेकिन मुख्य लक्ष्य जीवन में घृणा की जगह प्रेम, समता, बंधुता, मानवीय मूल्यों का संचार करना ही प्रधान लक्ष्य है।
7. दलित कविता को डॉ.अम्बेडकर जीवन दर्शन ने वैचारिक ऊर्जा दी है और तथागत बुद्ध की दर्शनिकता ने उसे सामाजिक दृष्टि दी है।
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं पूंजीवाद, समाजवाद और वर्णव्यवस्था की पोल खोल कर रख देता है।
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविता सामाजिक न्याय, मानवता, भाईचारा, समता और स्वतंत्रता की वकालत करती है। साथ ही सामाजिक बदलाव की आकांक्षा करती है।
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कविता विभिन्न सामाजिक विकृतियों और बुराइयों को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करती है तथा पाठकों को सोचने के लिए मजबूर कर देती है।

4.8 स्वाध्याय:

4.8.1 ससंदर्भ उदाहरण

1. चूहड़े या डोम की आत्मा
   ब्रम्ह का अंश क्यों नहीं है
   मैं नहीं जानता
   शायद आप जानते हों!
2. मेरे और तुम्हारे बीच
   एक रेतीला ढूह है
   जो किसी अधड़ का इंतजार करने से पहले
   किसी भी वक्त फट सकता है
   जिसके गर्भ से निकलेंगे
   घृणा में लिपटे कुटिल शब्द
   जिन्हें जलना होगा
   दहकती भट्टी में
   रोटी की महक में बदलने के लिए
3. पंडित का चेहरा
   याद करना चाहता हूँ
   पुस्तकों की दुकान में
   पुस्तकालयों में तलाशता हूँ
   उस तुड़ी-मुड़ी पीले रंग की पोथी को
   जो दुर्लभ अप्राप्य वस्तु की तरह
   कहीं दिखाई नहीं देती
   मैं जानना चाहता हूँ
   उस पोथी में
   मेरा नाम लिखा था या नहीं।
4. गहरी पथरीली नदी में
   असंख्य मुक पीडाएँ
   कसमसा रही हैं

मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई
बस्स!
बहुत हो चुका
चुप रहना
निरर्थक पड़े पत्थर
अब कम आएंगे संतप्त जनों के

4.8.2 दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्यिक परिचय लिखिए।
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में चित्रित दलित संवेदना को स्पष्ट कीजिए।
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में चित्रित समस्याओं को स्पष्ट कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्यिक कृतियों एवं लेखों का संग्रह कीजिए।
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं को मराठी में अनुवाद करने का प्रयास करें।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1999
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2001
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत: 'बस्स! बहुत हो चुका' संवेदना एवं शिल्प का अध्ययन- रमेश कुमार, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, प्र.सं. 2007
5. दलित साहित्य में अभिव्यक्त समस्याएँ- डॉ. अमरा सूर्य चन्द्र रावु, शुभम प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2019

❑❑❑